श्रीगणेशाय नमः　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　श्रीकृष्णाय नमः



गृहस्थ सन्त

पं. श्रीदुर्गाप्रसाद जी चतुर्वेदी का

जीवन चरित

जीवन-चरित लेखक : बाबा श्रीनवेलीशरण जी

ISBN : 978-93-92149-22-1

प्रकाशक
भक्त मण्डल

सम्पादक मण्डल
श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग
श्रीअम्बिका दास शुक्ल
श्रीप्रभात दीक्षित
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ
महाशिवरात्रि, संवत् 2082
दिनांक : 15 फरवरी, सन् 2026

प्राप्ति स्थान
हर्षित मित्तल
बी-6, श्रीकृष्णशरणम् सोसाइटी
रमणरेती, छटीकरा रोड, वृन्दावन-281121, उ.प्र.
मो. 9517060000

मुद्रण-संयोजन : श्रीहरिनाम प्रेस
बाग बुन्देला, लोई बाजार, वृन्दावन-281121
मो. : 7500987654, 9837031415

आशीर्वाद



जगद्गुरु द्वाराचार्य श्रीनाभापीठाधीश्वर
श्रीसुतीक्ष्णदास देवाचार्य जी महाराज
श्रीसुदामा कुटी, श्रीधाम वृन्दावन

इस परिवर्तनशील संसार में जो भी प्राणी जन्म लेते हैं वे आजीवन सुख की तलाश में भटकते रहते हैं। सुख वहाँ ढूँढते हैं, जहाँ सुख नहीं, सुखाभास है। अत: जीवन सुखाभास समेटने में ही व्यतीत हो जाता है। प्रात: स्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज इसका कारण विनय पत्रिका में बताते हैं कि—

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो, तबतें देह गेह निज जान्यो।
मायाबस स्वरूप बिसरायो, तेहि भ्रमतें नाना दुख पायो॥

— पद 136

स्व-स्वरूप की विस्मृति और नाशवान् पदार्थों में आसक्ति ही भवबन्धन का कारण है। इसकी निवृत्ति के लिए शास्त्रों तथा सद्ग्रन्थों में अनेकों प्रकार के साधनों का वर्णन मिलता है—जैसे कर्मकाण्ड पद्धति, ज्ञान मार्ग, उपासना पद्धति तथा भक्ति पद्धति। सभी साधनों में भक्ति को ही सर्व सुलभ एवं सर्वश्रेष्ठ माना है **"साधनेषु सर्वेषु भक्तिरेव गरीयसी"** यह भक्ति नौ प्रकार की बतलाई गयी है। श्रीप्रह्लाद जी कहते हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

तथा श्रीरामचरितमानस में भी भगवान् श्रीराम भक्तिमती शबरी जी से भक्ति का ही वर्णन करते हैं और कहते हैं कि नौ प्रकार की भक्ति (नवधा

भक्ति) में से जिस किसी में एक भी प्रकार की भक्ति होगी वह प्राणी मुझे अतिशय प्रिय है–

नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥

भक्ति की महिमा के विषय में और भी कहते हैं कि–

भगतिवन्त अति नीचऊ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥
भगति हीन विरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥

इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् को भक्ति प्रिय है तथा भक्तिमान् व्यक्ति अतिशय प्रिय है। ऐसी अद्भुत विलक्षण भक्ति के विषय में श्रीनारदजी महाराज **"नारद भक्ति सूत्र"** में कहते हैं कि **सा त्वस्मिन् परम-प्रेमरूपा**। वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है। **"अमृतरूपा च"** वह भक्ति अमृत स्वरूपा भी है जिसे पाकर साधक सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है। उसकी समस्त इच्छायें समाप्त हो जाती हैं, न वह शोक करता है, न किसी से द्वेष करता है और न ही किसी वस्तु में आसक्त होता है। वह उन्मत्त की तरह रहता है। अपनी आत्मा में ही रमण करता है। आत्माराम हो जाता है। ऐसे भक्तों के पीछे-पीछे भगवान् स्वयं डोलते हैं, उनकी चरणरज पाने के लिए। प्रभु स्वयं श्रीमद्भागवतजी में कहते हैं–

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

जिनकी चरणरज पाने के लिए परमात्मा पीछे-पीछे डोलता है, वे सन्त एक क्षण के लिए भी प्रभु चिन्तन से विरत नहीं होते हैं, यदि कदाचित् क्षण भर की विस्मृति हो गयी तो कहते हैं– **"तद् विस्मरणे परं-व्याकुलेति।"** (पा.यो)।

ऐसे ही भक्ति साधना के अन्तर्गत सहजयोग, राजयोग एवं सुरत-साधना योग भी आते हैं। प्रस्तुत पुस्तिका में नादब्रह्म को लक्ष्य करके सुरत-साधना का वर्णन करने का सफल प्रयास किया गया है, जो वर्णन का विषय नहीं है। इस साधना में भक्ति, प्रेम एवं योग का बड़ा सुन्दर समन्वय है, जो अन्तरंग साधना के लिए प्रत्येक साधक को अपेक्षित है। इसके बिना साधना अधूरी-सी है, हम अपने को खाली-सा महसूस करते हैं। इस खालीपन को भरने के लिए सुरत-साधना करनी चाहिए और उससे भी अनिवार्य है ऐसे सद्गुरु की खोज, जो इस साधना का ज्ञाता हो। जिसके जीवन में यह साधना हो तो उसका जीवन कृत-कृत्य हो जाता है। श्रीचरणदास जी महाराज अपने भक्तिसागर ग्रन्थ में कहते हैं कि–

ध्याता बिसरे ध्यान में रहे सुरति नहि नाद।
लीन होय किरिया रहित लागे सहज समाध॥

ऐसा है पावन चरित्र **परमपूज्य सन्त पं. श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी जी महाराज** का, जिसका चिन्तन-मनन कर भगवद्भक्त लाभान्वित होंगे तथा प्रभु चरणों में अनुराग होगा।

इति शुभम्

आशीर्वचन



जगद्गुरु द्वाराचार्य
श्रीअग्रपीठाधीश्वर एवं श्रीमलूकपीठाधीश्वर
श्रीराजेन्द्रदास देवाचार्य जी महाराज
श्रीमलूक पीठ, श्रीधाम वृन्दावन

अनन्त जन्मों से जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे हुए जीवों के ऊपर अहैतुकी करुणा बरसाने वाले दीनबन्धु, दयासिन्धु, कृपा-सिन्धु, करुणा-वरुणालय प्रभु कई बार स्वयं अवतार लेकर जीव-जगत् को कृतार्थ करते हैं तथा कई बार जीवों को अपनी प्राप्ति सहजता-सरलतापूर्वक कराकर उनके आत्यन्तिक कल्याण के लिए आत्म विग्रह संतों को अपने परिकर में से पृथ्वी पर भेजते हैं।

इसी शृंखला में गोलोक बिहारी, मदन-मोहन-श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के परिकर के एक नित्य सखा ही इस धराधाम पर जीवों को सत्संग के माध्यम से भगवत् प्राप्ति कराने हेतु प्रातः स्मरणीय पूज्य पंडित श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी जी महाराज के रूप में प्रकट हुए।

पाठकों के मन में आ रहा होगा कि आप ऐसी घोषणा किस आधार पर कर सकते हैं, तो दासानुदास का विनम्र निवेदन है कि श्रीनाभा गोस्वामी जी की समाधि-सिद्ध वाणी ही इसका आधार है—

भक्तदाम संग्रह करे, कथन श्रवण अनुमोद।
सो प्रभु प्यारो पुत्र ज्यों, बैठे श्रीहरि की गोद॥

इस दासानुदास को सद्गुरुदेव अनन्तश्री समलंकृत भक्तमाली श्रीगणेशदास जी महाराज एवं पूज्य श्रीपरमहंस जी की कृपा से अनेक बार पूज्य श्रीमहाराज जी (पूज्य पं. श्रीदुर्गाप्रसाद जी) का दर्शन एवं सत्संग प्राप्त करने का अवसर मिला।

पूज्य महाराज जी का जन्म चतुर्वेदी विप्रकुल में तथा वशिष्ठ गोत्र में नन्दपुरवास (रेवाड़ी) हरियाणा तथा माताजी (श्रीमती कमलादेवी) का जन्म राजस्थान में हुआ।

श्रीमहाराज जी एवं श्रीमाताजी का दर्शन कर ऐसा प्रतीत होता था मानो इस कराल कलिकाल में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ एवं महासती अरुन्धती का दर्शन हो रहा हो।

श्रीमहाराज जी की वाणी सीधे अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाती थी। उनके मन-वाणी-क्रिया में एकरूपता थी। सत्य एवं सदाचार का दृढ़तापूर्वक पालन था। उनके निकट दम्भ, असत्य, दुर्गुण आदि दोष टिकते ही नहीं थे। कई बार दम्भी पुरुषों को वे इस प्रकार बोलते थे कि वे दुबारा उनके समक्ष आने का साहस नहीं जुटा पाते थे। निश्छल एवं सर्वथा समर्पित, आज्ञाकारी साधकों को आपने भगवत् साक्षात्कार कराया। दास को श्रीमहाराज जी ने विशेष रूप से एक ही आज्ञा दी—**"पांडे तुम्हें द्वारिका जानो है"**। तुम्हें इसी जीवन में, इसी शरीर से तथा इन्हीं नेत्रों से भगवत् साक्षात्कार प्राप्त करना है। ऐसा भीतर से संकल्प कर लो, फिर वैसा ही जीवन अपने आप बन जायगा।

हम जब कभी श्रीचरणों में पहुँचते, श्रीमहाराज जी एवं श्रीमाता जी अति प्रसन्न होते थे। लेख विस्तार भय से हम अनेक संस्मरणों को प्रणाम कर रहे हैं। फिर भी श्रीमहाराज जी के भगवत् धाम प्रयाण के आठ-नौ दिन पूर्व जो महाराज जी ने कहा, वह दास के लिए अंतिम उपदेश बन गया। मेरे द्वारा

श्रीमहाराज जी के स्वास्थ्य सम्बन्ध में तीन बार पूछे जाने पर भी श्रीमहाराज जी ने शरीर सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर न देते हुए कहा, स्वामी जी **"सम्पूर्ण भजन का मार्ग तथा भगवत्-प्राप्ति तीन सूत्रों में ही समाहित है, श्रीकृष्ण के बनकर, श्रीकृष्ण के लिए, श्रीकृष्ण का भजन करो"**। इसी वाक्य को श्रीमहाराज जी ने सुस्पष्ट व्याख्यायित करते हुए तीन बार दुहराया, मानो श्रीमहाराज जी ने भगवत् प्राप्ति के पथिकों के लिए अन्तिम महावाक्य प्रदान कर दिया।

ऐसी लोकोत्तर भगवत्-स्वरूप दिव्यतम विभूति का परिचय एवं उपदेशामृत साधक-जगत् के लिए परम हितकारी है। हमारे मन में भी इस बात की पीड़ा थी कि श्रीमहाराज जी के संस्मरण एवं सत्संग आदि में दिये गये वचनामृत अवश्य ही प्रकाशित होने चाहिए।

यह सभी संस्मरण एवं अंतरंग क्षणों के प्रामाणिक अनुभव तथा श्रीमहाराज जी द्वारा स्वहस्तलिखित उपदेश तथा समय-समय पर दिए गये वचनामृत जिनका संकलन उनके निकटस्थ कृपापात्र भक्त चरणरज (दास) श्रीदिनेशचन्द्र गर्ग, मथुरा के पास था, जिसे साधकों के कल्याणार्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

भगवान् ने कृपापूर्वक श्रीमहाराज जी के प्रवचनों, स्वअनुभवों तथा जीवनदर्शन से द्रवीभूत होकर परिकर श्रीशंकर सरोलिया (रिटायर्ड) जयपुर द्वारा इस महनीय कार्य का अर्द्ध सम्पादन करवा कर अपने नित्य गोलोक में बुला लिया। सम्पूर्ण सामग्री संकलित कर, प्रकाशन से पूर्व ही भगत श्रीशंकर सरोलिया जी तथा श्रीमहाराज जी श्रीकन्हैया दादा की सेवा में पहुँच गये। जिसे अब भगवत् भक्त प्रेमी श्रीविनोद हिसारियाजी; हनुमान गढ़ (राजस्थान) द्वारा पूर्ण कराकर भक्तजनों के कल्याणार्थ सम्पादित कराया है, जो बधाई के पात्र हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में दो पुस्तकें 1. समत्व योग और 2. मंगलीय सुमन, जो महाराज जी के जीवन काल में ही प्रकाशित हो चुकी थीं, को समाहित किये जाने से ग्रन्थ के कलेवर में प्रगति हुई साथ ही महाराज जी से सम्बन्धित साहित्य का रख-रखाव (संरक्षण) एक साथ सदैव के लिए सुरक्षित हो गया है।

यह ग्रन्थ महाराज जी की हस्तलिखित अनुभव वाणी, पत्रावली तथा संस्मरण आदि के समावेश के फलस्वरूप साधकों के लिए अत्यन्त परमोपयोगी सिद्ध होगा।

पूज्य बाबा श्रीनवेलीशरण जी द्वारा अपने जीवन काल में अनेकानेक ग्रन्थों का सृजन किया गया। यह ग्रन्थ उनके जीवन की अंतिम कृति है। पूज्य बाबा जी ने दि. 22 अप्रैल 2023 ई. अपने निकुंज गमन के कुछ घंटे पूर्व मेरे गुरुभ्राता अम्बिका दास शुक्ल को यह अधूरा कार्य पूर्ण करने के लिये कहा कि इसका प्रकाशन परमहंस जी के संरक्षण में आपको करना है। श्रीशुक्ल जी ने बाबा के आदेश का श्रद्धा व भावपूर्वक पालन करते हुए अथक परिश्रम कर अपना कर्त्तव्य निभाया, फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाश में आ सका।

दास का ऐसा विश्वास है कि इस ग्रन्थ को पढ़कर लोगों का परम हित होगा। इस पवित्र कार्य में जिन भाग्यशाली साधकों का तनिक भी योगदान हुआ है उन सबका सादर वन्दन करते हुए श्रीमहाराज जी, श्रीमाता जी एवं उनके सेव्य ठाकुर जी को अनन्त प्रणाम निवेदित करते हुए हम अपनी लेखनी को विराम देते हैं।

शुभम् भूयात्।

विनम्र निवेदन



श्रीगुरुचरणरज (दास)
दिनेश चन्द्र गर्ग
मथुरा

यह बड़े हर्ष का विषय है कि ब्रह्मलीन पूज्य गुरु महाराजजी ने इस चरणरज (दास) पर अपनी अहैतुकी कृपा बरसाकर कुछ सेवा का सुअवसर दिया है। पूज्य गुरुदेव के विषय में संक्षेप में इस नासमझ दास को बस इतना ही कहना है कि सामने समुद्र में क्या-क्या भरा पड़ा है? किनारे पर खड़ा एक निरीह व्यक्ति इस रहस्य को कैसे जान सकता है, कैसे बता सकता है? उजाले के लिए बस यह कहा जा सकता है कि सूर्य को दीपक दिखाने से दीपक की ही निन्दा होगी।

पूज्य गुरुदेव महाराज के श्रीचरणों में इस दास को उनकी अहैतुकी कृपा से जब-जब उनके द्वारा दिए वचनामृत तथा अंतरंग क्षणों में उनके स्वअनुभवीय आध्यात्मिक परम गोपनीय रहस्यों को देखने तथा अनुभव का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन्हें संकलन करके उन्हीं के पावन चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। श्रद्धालु भक्तजनों की पावन झोली में बड़ी विनम्रता के साथ यह कृपा प्रसाद डाला जा रहा है। भाववश संस्मरणों, घटनाओं का तिथिवार, क्रमबद्ध उल्लेख न होने के कारण इस बालविनय पर श्रद्धालुजन ज्यादा ध्यान नहीं देंगे तथा सार-सार को ही ग्रहण करेंगे।

इस असीम भगवदीय कृपा प्रसाद को परम पूज्य श्रीपरमहंस बाबा जी महाराज मलूकपीठ, सुदामाकुटी, वृन्दावन जो कि ब्रह्मलीन गुरुदेव महाराज

के बहुत ही अंतरंग भक्त रहे, की प्रेरणा तथा तन, मन, धन से सहयोग करने वाले गृहस्थ भगवद्-भक्त परलोकवासी श्रीशंकर सरोलिया जी तथा उनकी धर्मपरायणा-धर्मपत्नी श्रीमती पमपोज सरोलिया जी, राजस्थान का अपार सहयोग रहा। यद्यपि स्वर्गीय श्रीसरोलिया जी एक बहुत उच्च पदस्थीय राज्यस्तर के पुलिस पदाधिकारी (आई.जी.) रहे तथापि उनकी विनम्रता तथा निरभिमानता के समक्ष यह दास नतमस्तक है। उनके असामयिक परलोकगमन के बाद इस समस्त संकलन को प्रकाशित कराने हेतु प्रभु प्रेरणा से भगवद्-भक्त श्रीविनोद हिसारिया जी, निवासी हनुमानगढ़ (राजस्थान) ने तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। प्रभु कृपा से वह साधुवाद के पूर्ण अधिकारी हैं तथा प्रभु से प्रार्थना है कि उन पर इस पुनीत कार्य-सम्पादन हेतु सर्वात्मा प्रभु की असीम कृपा अनवरत बरसती रहे।

पूज्य गुरुदेव महाराज लोकैषणा से बहुत दूर रहे। कई भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी उन्होंने लोक प्रसिद्धि को दर-किनार कर स्वहस्त लिखित पुस्तक तक नहीं छपवाई। तथापि ब्रह्मलीन परम श्रद्धालु माँ द्रौपदी जी (बावली) ने उनके द्वारा सत्संग में समय-समय पर दिए गए अमूल्य वचनामृतों को संकलित करके दो पुस्तकें क्रमशः **"मंगलीय सुमन"** का प्रकाशन **श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग, मथुरा** द्वारा तथा **"समत्वयोग"** **(जिसका प्रकाशन गुरुमहाराज जी के स्वर्गीय सुपुत्र श्रीभगवतशरण चतुर्वेदी जी द्वारा जयपुर से कराया गया)** के रूप में श्रद्धालुओं को समर्पित की। पूज्य गुरुदेव का यह तीसरा अद्भुत भगवदीय कृपा प्रसाद भी प्रभु अनुरागी भक्तजनों की झोली में पारमार्थिक जन कल्याण हेतु डाला जा रहा है। आशा है संतजन श्रद्धालु इससे लाभान्वित होंगे। यह दास अपने परमपूज्य गुरु महाराज के पावन श्रीचरणों में श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए प्रार्थना कर रहा है कि—

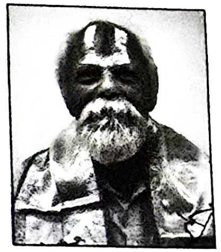
यह आपका करम है कि मुझे अपना बना लिया।
मैं खुद से बहुत दूर था क्या से क्या बना दिया॥

श्रीविनोद हिसारिया जी इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु बहुत ही इच्छुक तथा भावग्राही थे, अतः पुस्तक की समस्त सामग्री को अपने साथ हनुमानगढ़ (राजस्थान) ले गये। मगर किन्हीं अपरिहार्य कारणों से यह वहाँ पर भी प्रकाशित नहीं हो सकी। अतः इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु बाबा श्रीनवेलीशरण जी, भक्ति विहार, वृन्दावन ने उत्सुकता दिखाई। अतः कुछ समय यह लेखन सामग्री उन्हीं के संरक्षण में रही।

परम पूज्य बाबा श्रीनवेलीशरण जी ने अपने निकुंजगमन से पूर्व ही महाराजश्री का जीवन चरित्र लिखकर श्रीअम्बिका दास शुक्ल को, आदरणीय परमहंस जी के नियंत्रण में रहकर पूर्ण करने की आज्ञा प्रदान की। कहते हैं— **समय से पूर्व और भाग्य से अधिक कभी कुछ नहीं होता।** अतः यह समस्त प्रकाशन सामग्री लखनऊ निवासी अम्बिका दास शुक्ल जी (जोकि श्रीमलूकपीठ के समस्त धार्मिक साहित्यों के प्रकाशन में अपना अमूल्य योगदान देते हैं), ने प्रकाशित करने में अपनी अभिरुचि दिखाई तथा उन्हीं के अंतरंग श्रीप्रभात दीक्षित जी, निवासी दिल्ली ने भी कदम से कदम मिलाकर इस पुस्तक के प्रकाशन में श्रद्धालुओं, भक्तजनों के लाभार्थ अपना पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया है। मैं हृदय से इन सभी महानुभावों का आभारी तथा ऋणी हूँ जिन्होंने पारमार्थिक पथयात्रा में जन कल्याणार्थ मेरे सद्गुरु भगवान् के पावन चरित्र तथा उनके अमूल्य विचारों की सामग्री के प्रकाशन में अपना योगदान दिया है।

शुभम् करोति कल्याणम्।

सम्पादकीय



दासानुदास
अम्बिका दास शुक्ल
श्रीमलूकपीठ, वृन्दावन

विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्मा विष्णु महेश्वरान्।
सरस्वती प्रणम्यादौ सर्वकार्यार्थ सिद्धये॥

मधुसूदन! चरणों में मेरा है नमस्कार स्वीकार करो।
मन वृन्दावन में वेणु बजा अन्तर का कलुष विकार हरो॥
दे दो मुझको भी हे विराट्! अपनी करुणा का स्वल्प दान।
लिख सकूँ जिसे पाकर अबोध 'दुर्गाप्रसाद' का यशोगान॥

परम पिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से दिनांक 22 अप्रैल 2023 ई. को अक्षय तृतीया के एक दिन पूर्व ही बाबा नवेली शरण जी द्वारा प्रतिपादित तीन ग्रन्थों के प्रकाशन का उत्तरदायित्व दास को सौंपा गया था।

प्रथम ग्रन्थ— श्रीराधावल्लभ शरण 'दण्डवती बाबा' का चरित्र लेखन। बाबा जी की आज्ञा में वह क्षमता व सामर्थ्य भी निहित थी जिसके फलस्वरूप इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्रीराधाष्टमी सम्वत् 2081 तदनुसार दिनांक 23 सितम्बर 2023 ई. को लगभग 5 महीने के अन्तराल में परिपूर्ण हुआ। दिनांक 25 सितम्बर 2023 ई. को ठाकुर रासविहारी-विहारिणी जी के करकमलों द्वारा पुस्तक का विमोचन किया गया।

द्वितीय ग्रन्थ— ओरछा राज्य व उसकी धर्म संस्कृति— 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' का प्रकाशन कार्य ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी तदनुसार 11 जून 2024

को 9 माह के अन्तराल में परिपूर्ण हुआ। ग्रन्थ का विमोचन रैवासा धाम के प्रांगण में भारत के उपराष्ट्रपति माननीय श्रीजगदीप धनखड़ जी के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

तृतीय ग्रन्थ— गृहस्थ सन्त पण्डित श्रीदुर्गाप्रसाद जी का जीवन चरित बाबा जी द्वारा प्रदत्त यह अंतिम ग्रन्थ है जिसे लिखने का सुअवसर अब प्राप्त हुआ है। उल्लेखनीय है कि इस ग्रन्थ से सम्बंधित व्यक्ति का कुछ अता-पता ही नहीं था। अत: इस ग्रन्थ के लेखन के प्रेरणास्रोत परमहंस जी से सम्पर्क किया गया। वह भी इस समस्या का समाधान करने में असमर्थ रहे। वह केवल इतना ही बता सके कि जिन्होंने विषय सामग्री श्रीनवेलीशरण बाबा को सौंपी थी वह मथुरा के निवासी हैं। उनका नाम श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग है। पूरा पता नहीं मालूम है। इसी बीच एक दिन एक अपरिचित व्यक्ति का फोन आया। उन्होंने अपना नाम 'प्रभात दीक्षित' बताया। उन्होंने विचाराधीन ग्रन्थ की प्रगति के बारे में जानकारी चाही। मैंने वास्तविकता स्पष्ट कर दी। अब वह गर्ग जी की खोज में सक्रिय हुये।

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥

श्रीदीक्षित जी की प्रार्थना तथा परमहंस जी के अथक प्रयास के फलस्वरूप खोज में सफलता मिली, श्रीगर्ग जी का पता मालूम हो गया। तदोपरान्त विषय सामग्री का अवलोकन, निरीक्षण एवं चयन किया गया। दीक्षित जी द्वारा प्रकाशित होने वाले अभिलेखों को चिह्नित भी किया गया।

दि. 10 जून 2024 ई. को परम आदरणीय परमहंस जी की अध्यक्षता में एक सभा हुई जिसमें श्रीविनोद जी हिसारिया, श्रीप्रभात जी दीक्षित, श्रीदिनेश चन्द्र जी गर्ग, श्रीगोपाल जी चतुर्वेदी तथा अन्य सहयोगियों के साथ दास भी उपस्थित रहा। तदोपरांत श्रीहरिनाम प्रेस पहुँचकर श्रीभागवत कृष्ण नांगिया जी को प्रकाशन हेतु उपलब्ध सामग्री सौंप दी गई।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

इसके साथ ही यह कहावत भी चरितार्थ हुई—"**भाग्य से अधिक तथा समय से पहले कुछ होता ही नहीं।**"

उक्त ग्रन्थ के लेखन में हुए विलम्ब के कारणों पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि कुछ दैवी, कुछ सामाजिक तथा कुछ व्यक्तिगत परिस्थितियों का समागम रहा।

1. इस ग्रन्थ के लेखन का श्रीगणेश सर्वप्रथम श्रीशंकर सरोलिया, आई. जी., राजस्थान द्वारा किया गया। जीवन चरित के अतिरिक्त अन्य समस्त विषय सामग्री का टंकण (टाइप) कार्य उनके द्वारा सम्पन्न किया जा चुका था। सरोलिया जी के आकस्मिक निधन के कारण एकाएक यह कार्य बाधित हुआ।

2. वर्ष 2019 में श्रीगर्ग जी ने परमहंस जी के साथ श्रीबाबा नवेली शरण जी के घर भक्ति विहार कालोनी, वृन्दावन आकर चरित्र लेखन हेतु समस्त सामग्री हस्तगत करा दी। उल्लेखनीय है उस समय बुन्देलखण्ड के इतिहास के लेखन में बाबा जी व्यस्त थे। इसके अलावा अन्य कार्यों की भी बाहुल्यता थी। व्यस्तता के कारण वे कोई कार्य स्वीकार नहीं करते थे। **केवल परमहंस जी की गरिमा व प्रभुतावश उनके सम्मान में इस शर्त पर स्वीकार किया कि कार्य में समय लगेगा। परमहंस जी ने कहा- जब तुमको फुरसत हो तब करना।**

3. कोविड 19 ने भी ग्रन्थ को दो वर्ष अपने प्रकोप में रखा।

4. अप्रैल वर्ष 2023 तक **बाबा जी द्वारा महाराज जी का जीवन चरित्र अपने हाथ से लिखा गया।** जब कि सभी ग्रन्थ उनके बोलने पर लिखे जाते रहे। **ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा जी ने इसे अन्तिम ग्रन्थ समझकर अपने करकमलों के माध्यम से लिपिबद्ध करना यथोचित**

समझा हो, बाबा त्रिकालदर्शी संत तो थे ही। दिनांक 22 अप्रैल 2023 ई. को 'बाबा' का निकुंजगमन हो गया।

5. श्रीविनोद हिसारिया जी अब इस ग्रन्थ को अन्तिम रूप देने के लिए तन, मन, धन से उत्साहित हैं। उनकी यह हार्दिक कामना है कि ग्रन्थ अविलम्ब परमहंस जी व गर्ग जी के करकमलों में उपस्थित कर सकूँ। ईश्वर आपकी मदद करे।

प्रस्तुत ग्रन्थ की त्रुटियाँ निकालकर संशोधित करने का कार्य श्रीराजेश कुमार मिश्र, लखनऊ (जो मलूकपीठ के समस्त प्रकाशनीय कार्यों को यू-ट्यूब के माध्यम से लिपिबद्ध करते हैं) तथा सुरेन्द्र शुक्ल "फौजी चाचा" लखनऊ द्वारा सम्पन्न किया गया है। हम इन दोनों साधकों के चरणों में प्रणिपात करते हुए आभार व्यक्त करते हैं।

पूर्व प्रकाशित 'समत्वयोग' तथा 'मंगलीय सुमन' दोनों पुस्तकों को समाहित किए जाने के कारण ग्रन्थ का कलेवर काफी विस्तृत हो गया है। फलतः ग्रन्थ का वर्गीकरण करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

मंगलाचरण, मंगलाशासन, आशीर्वचन तथा सूचीपत्र के अतिरिक्त ग्रन्थ को चार भागों में विभाजित किया गया है— **प्रथम भाग** में बाबा नवेलीशरण जी द्वारा लिखित जीवन चरित, महाराज जी के वचनामृत तथा पत्रांश। **द्वितीय भाग** में श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग जी द्वारा संकलित प्रवचन, संस्मरण तथा वचनामृत। **तृतीय भाग** में पूर्व प्रकाशित पुस्तक 'समत्व योग' तथा **चतुर्थ भाग** में पूर्व प्रकाशित पुस्तक 'मंगलीय सुमन' को प्रकाशित किया गया है।

परम आदरणीय, प्रातः स्मरणीय बाबा नवेलीशरण जी के चरणों में सादर दण्डवत् प्रणाम निवेदित करता हूँ जिन्होंने इस दासानुदास को वर्ष 2009 से आजीवन अर्थात् 22 अप्रैल 2023 तक अपनी शरण में रखकर

सद्ग्रन्थ लिखवाने का प्रत्यक्ष सुअवसर प्रदान किया। विगत 2 वर्षों तक अप्रत्यक्ष (ग्रन्थों के रूप में उपस्थित रहकर) सम्पादन कार्य स्वयं परिपूर्ण कराया। विगत 2 वर्षों में तीनों ग्रन्थों का प्रकाशन सम्पन्न करा देना एक मात्र उनकी ही क्षमता व प्रभुता का परिणाम है। दास तो निमित्त मात्र है। बाबा दास पर सदैव की भाँति अपना वरदहस्त बनाये रखें जिससे लेखन कार्य अबाध गति से सुचारु रूप से चलता रहे।

आभार प्रदर्शन

ब्रज वसुन्धरा को प्रथम नमन है।
मातु-पिता का पुनि वन्दन है॥
गुरु माथे रोली चन्दन है।
सहयोगियों का अभिनन्दन है॥
शंकर सरोलिया को श्रद्धांजलि है।
नवेली शरण को भावांजलि है॥

दोहा

'परमहंस' जी संरक्षक हैं, रामशरण के दास।
सबके प्रिय सबके हितकारी, गुरु 'मंगल' के खास॥
'श्रीविनोद हिसारिया' जी ने निज कर्त्तव्य निभाया।
तन मन धन से हुए समर्पित दिव्य ग्रन्थ छपवाया॥
'दिनेश चन्द्र' जी मथुरा वाले महाराज के दास।
ग्रन्थ लेखन की उत्सुकतावश आते मेरे पास॥
शंका मिटी कटे सब बन्धन हुये आप उत्तीर्ण।
हुआ मनोरथ सफल आपका ग्रन्थ हुआ परिपूर्ण॥
'दीक्षित' जी लेकर के आये, स्वर्णिम 'प्रभात' की बेला।
लगा रहे अपने जीवन में सद्ग्रन्थों का मेला॥

रही व्यस्तता, फिर भी आकर अपना फर्ज निभाये।
सरल, सौम्य कर्त्तव्यपरायण सबके मन को भाये॥

खोज खोज कर करें निवारण त्रुटियों का 'राजेश'।
'फौजी चाचा' करें समापन जो रह जातीं शेष॥

'भागवतकृष्ण नांगिया' जी ने अनुपम किया प्रदर्शन।
'श्रीहरिनाम' की अनुकम्पा से मिला ग्रन्थ का दर्शन॥

लेखन कार्य में पूर्ण सतर्कता बरती गई है फिर भी त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। **इस सन्दर्भ में बाबा नवेली शरण जी कहा करते थे, शुक्लाजी त्रुटियाँ निवारण का कार्य (प्रूफ रीडिंग) करना नाई की दुकान में झाड़ू लगाने जैसा है, जितनी बार झाड़ू लगाई जायगी हर बार कुछ न कुछ बाल अवश्य निकलेंगे।**

प्रस्तुत ग्रन्थ साधकों के लिए कल्याणकारी एवं उपयोगी है। इसके माध्यम से ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की त्रिवेणी में अवगाहन करने का सुअवसर पाठकों व सुधीजनों को अनायास ही प्राप्त होगा।

"बहुजन हिताय बहुजन सुखाय"

की भावना का समादर करते हुए 'श्रीराधामाधव' के करकमलों में ग्रन्थ समर्पित कर लेखनी को विश्राम देते हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

इति शुभम्।

भक्तमाल भाष्यकार
श्रीगणेशदासजी भक्तमाली
सद्गुरुदेव के कृपापात्र शिष्य दासानुदास
अम्बिका दास शुक्ल
श्रीमलूक पीठ, वृन्दावन

वैशाख शुक्ल
अक्षय तृतीया, सम्वत् 2082
दि. 30 अप्रैल 2025, बुधवार

मंगलाचरण

वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥1॥

सीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्य मध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥2॥

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक,
व्यासाम्बरीष शुक शौनक भीष्म दाल्भ्यान।
रुक्माङ्गदार्जुन वशिष्ठ विभीषणादीनु,
एतानहं परम भागवतान्नमामि॥3॥

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीति राम माधवयोर्नृप॥4॥

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥5॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥6॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥7॥

परमपूज्य अनन्तश्रीविभूषित श्रीरामशरण दास जी
(श्रीपरमहंस जी महाराज)
के पावन हस्ताक्षर
इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त.

रामशरणदास

माँ यशोदा जयन्ती
फाल्गुन कृष्ण पंचमी, संवत् 2082
दिनांक 6 फरवरी 2026

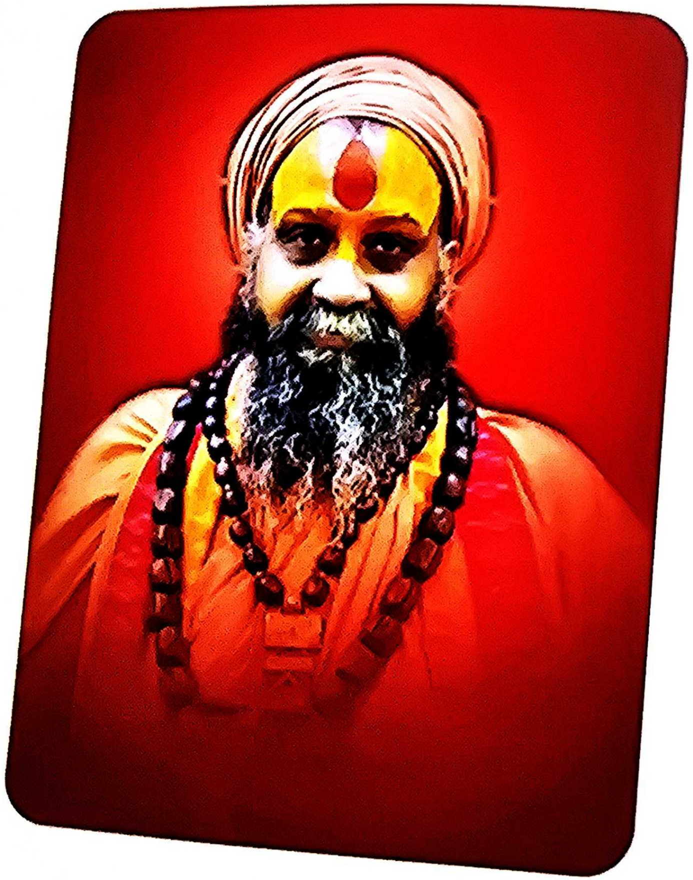
• श्रीकृष्णाय नमः •



पं. श्रीदुर्गाप्रसाद जी चतुर्वेदी

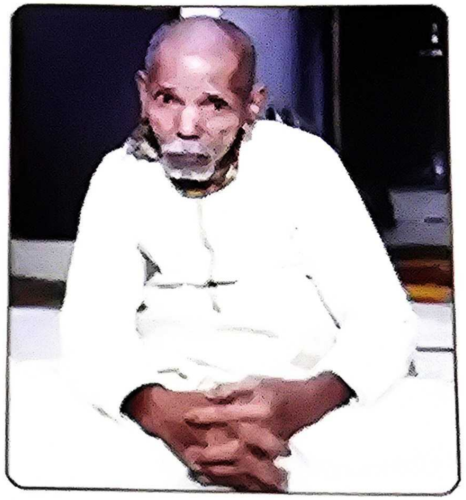
आविर्भाव
ज्येष्ठ शु. निर्जला एकादशी
वि. सम्वत् 1964, सन् 1907

तिरोभाव
ज्येष्ठ शु. पूर्णिमा
वि. सम्वत् 2060, 15 जून 2003

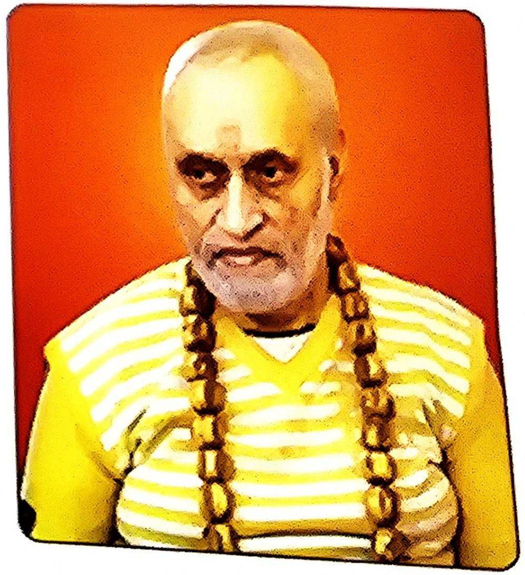


अनन्त श्रीविभूषित श्रीमज्जगद्‌गुरु द्वाराचार्य
श्रीअग्रपीठाधीश्वर एवं श्रीमलूकपीठाधीश्वर परम पूज्य
स्वामी श्रीराजेन्द्रदास देवाचार्य जी महाराज

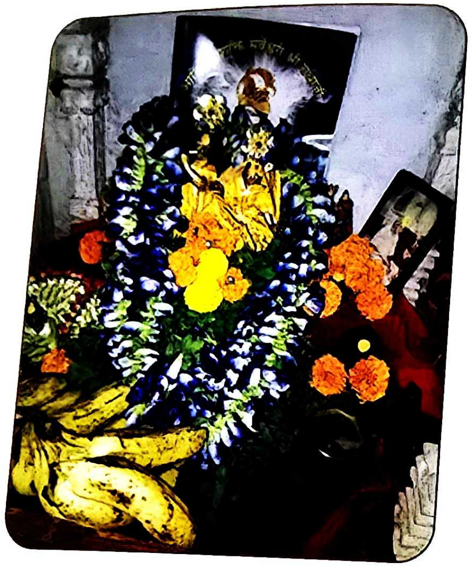
• श्रीकृष्णाय नमः •



परमपूज्य
श्रीरामशरण दास-
श्रीपरमहंस जी
महाराज
(संरक्षक)



श्रीनवेलीशरण जी महाराज
(जीवन चरित के लेखक)





पूज्य श्रीमहाराजजी के सेव्य ठाकुर जी



भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा महाराज जी को प्रदत्त पाञ्चजन्य शंख

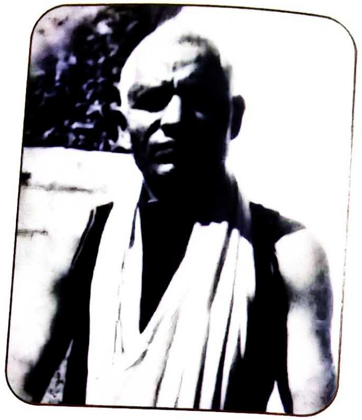


श्रीउड़िया बाबा जी महाराज द्वारा श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी जी को तथा
उनके द्वारा श्रीपरमहंस जी को प्रदत्त कमण्डलु

श्रीमहाराजजी
अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कमला के साथ



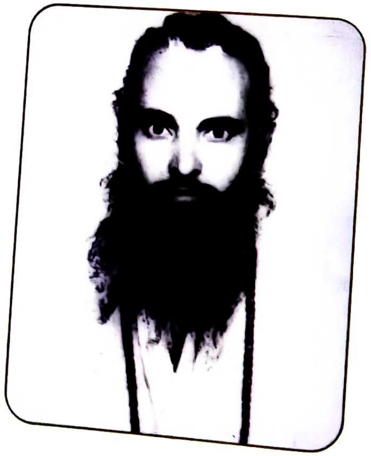
श्रीमहाराजजी के
परम आराध्य गुरुदेव श्रीआनन्दशरणजी



साधनावस्था में
पं. श्रीदुर्गाप्रसाद जी चतुर्वेदी



पूज्य महाराजश्री की अनन्य भक्ता
पूजनीय माता श्रीद्रौपदी जी 'बाबली'
मंगलीय सुमन तथा समत्व योग की संकलनकर्त्री



बाबा श्रीसीताराम दासजी
जिन्हें महाराजश्री द्वारा प्रभु साक्षात्कार कराया गया था
(संस्मरण-11, पृष्ठ सं. 232)



श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी जी की धर्मपत्नी
पूजनीय माता श्रीमती कमला देवी



पूज्य महाराजश्री के अन्तरंग भक्त
श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मिथिलेश गर्ग



श्रीपरमहंसजी   परमपूज्य पं. श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी अपने सुपौत्र गोपाल के साथ



परमपूज्य पं. श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी अपने सुपौत्र श्याम के साथ



परमपूज्य पं. श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी के सुपौत्र गोपाल और श्याम

विषय क्रम

(2)

श्रीदिनेशचन्द्र गर्ग द्वारा समय-समय पर पूज्य सद्गुरुदेव द्वारा दिए गए प्रवचनों का अद्भुत संग्रह

श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग द्वारा संग्रहीत 15 घटनाऐं

★★★

1

गृहस्थ सन्त
पं. श्रीदुर्गाप्रसाद जी चतुर्वेदी
का
जीवन चरित

साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥

पूर्व पीठिका

"भैया रे! मुझे भगवान् ने भूतल पर भेजा ही ऐसे दिन है जिस दिन जल ग्रहण करना भी निषेध है। इससे संकेत मिलता है कि यहाँ की कोई वस्तु हमारे लिये ग्राह्य नहीं है। तो आये क्यों हैं? श्रीकृष्ण को खोजने के लिये।" (महाराज जी)

ये वाक्य है परम वीतराग, गृहस्थ सन्त श्री दुर्गाप्रसाद चतुर्वेदीजी के। उनका यह कथन ही संक्षेप में उनकी आत्मकथा है। उनके जीवनादर्श की सम्पूर्ण झाँकी तथा लक्ष्य के प्रति एकान्त समर्पण इन वाक्यों द्वारा ध्वनित होता है। उनका अध्यात्म चिन्तन एवं तदनुरूप जीवन शैली अपने बीज रूप में इनमें निहित है। जिज्ञासुओं को दिये गये समस्त उपदेशों का सार भी सूत्र रूप में इनमें विद्यमान है।

वस्तुत: ये वाक्य अध्यात्म जगत् के सभी महान् पुरुषों की जीवन-गाथा का अति संक्षिप्त परिचय है। ये महज्जन संसार के भोग और ऐश्वर्य को अपने लिये निषिद्ध ही मानते हैं। यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे वे अपने लिये उपयोगी मानकर उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें अथवा स्वत: प्राप्त होने पर उसे ग्रहण करें। उनका आगमन इस मृत्यु लोक में केवल अमरत्व की प्राप्ति के लिये होता है। निरन्तर परिवर्तनशील और विनाशी इस संसार में आकर वे सदा एक रस रहने वाले अविनाशी तत्त्व को खोजने में तत्परता से जुट जाते हैं तथा उसकी चरम उपलब्धि करके कृतार्थ हो जाते हैं। इसे ही अध्यात्म शास्त्रों में मुक्ति, मोक्ष, भक्ति, ज्ञान, अपुनर्भव आदि अनेक नामों से कहा गया है और यही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है।

ऐसे महापुरुषों का जीवनचरित्र लिखना एक दुष्कर कार्य है जबकि साहित्य, कला, राजनीति आदि क्षेत्रों से जुड़े व्यक्तियों के विषय में लिखना अपेक्षाकृत सुगम है। इसका कारण यह है कि सामान्यत: व्यक्ति अपनी जीवनयात्रा में स्वयं की विशेषताओं और उपलब्धियों को सबके सामने प्रकाशित करने का इच्छुक होता है। वह चाहता है कि हमको अधिक से अधिक लोग जानें तथा इसके आधार पर वे परोक्ष और अपरोक्ष रूप में मेरी प्रशंसा करें, मेरा गुणगान करें। शास्त्र की भाषा में इसे ही लोकैषणा कहा गया है। यह इच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि व्यक्ति अपने जीवनकाल में ही नहीं अपितु उसके पश्चात् भी अपनी कीर्ति के इन स्तम्भों को प्रयासपूर्वक स्थापित कर जाता है ताकि उसकी मृत्यु के बाद भी उसका यशोगान होता रहे। मानव संरचना की यह दुर्बलता प्राय: सभी में विद्यमान होती है किन्तु परमार्थ जगत् के महापुरुषों की प्रवृत्ति ठीक इसके विपरीत होती है। ये महज्जन लोकैषणा से सर्वथा मुक्त होते हैं। वे चाहते हैं कि हमारी विशेषताओं और उपलब्धियों का आभास भी किसी को न हो सके। जहाँ सामान्य व्यक्ति अपने गुणों को प्रयासपूर्वक प्रकाशित करता है वहीं ये महत् पुरुष इस प्रयास में रहते हैं कि उनकी विलक्षण उपलब्धियों और उनके देवदुर्लभ सद्गुणों को कोई जान न ले। साधु पुरुषों का यह आत्मसंगोपन का प्रयास आर्ष ग्रन्थों से तथा सन्त-ऋषियों की परम्परा से सर्वथा अनुमोदित है। श्रीमद्भागवत में भगवान् उद्धव जी से कह रहे हैं—

बुधो बालकवत् क्रीडेत् कुशलो जडवच्चरेत्।
वदेदुन्मत्तवत् विद्वान् गोचर्यां नैगमश्चरेत्॥

—भागवत 11.18.29

वह बुद्धिमान् होकर भी बालकों के समान खेले। निपुण होकर भी जड़वत् रहे। विद्वान् होकर भी पागल की तरह बातचीत करे और समस्त वेद-विधियों का जानकार होकर भी पशुवृत्ति से (अनियत आचारवान्) रहे।

इस प्रकार सन्त का चरित्रलेखन अन्य लोगों की तुलना में कठिन कार्य होता है। यदि किसी महापुरुष की जीवनी उनके आन्तरिक आध्यात्मिक

वैभव पर कुछ भी प्रकाश न डालें और उसमें केवल उनके जन्म स्थान, शिक्षा, परिवार आदि विषयों का ही उल्लेख हो तो ऐसा लेखन सांगोपांग नहीं कहा जायेगा तथा उसको पढ़-सुनकर जिज्ञासु साधकों को सन्तोष भी न होगा। महज्जनों द्वारा आत्म संगोपन के कारण तथा लेखक की अयोग्यता के कारण उनकी पारमार्थिक स्थिति के विषय में कुछ लिख पाना जटिल होता है। ऐसी स्थिति में श्रीभक्त-भगवन्त कृपा का आश्रय लेकर उन महापुरुष के उपदेश तथा उनके निकट रहे भक्तजनों से कुछ सुनकर ही चरित्र-लेखन में यथामति प्रवृत्त हुआ जा सकता है। उपदेशों में, संस्मरणों में तथा यदा-कदा उनके श्रीमुख से निकले आत्म-विषयक वाक्यों में बिखरे हुए सूत्रों को एकत्रित करके ही यथाशक्ति यह चरित्र-माला गूँथी जा सकती है।

परम सन्त श्रीदुर्गाप्रसादजी चतुर्वेदी जिनका जीवनचरित लिखने का यहाँ प्रयास किया जा रहा है, वे लोकैषणा से सर्वथा मुक्त आत्माराम महापुरुष थे। कई दशकों तक उन्होंने श्रीवृन्दावन में निवास किया। जो थोड़े लोग उनके सम्पर्क में रहे, वे भक्तजन उन्हें 'मोटे गणेश वाले महाराजजी'[1] के नाम से सम्बोधित करते थे। इस चरित्र लेखन में उनका 'महाराजजी' के नाम से ही उल्लेख किया जायेगा।

श्रीमहाराजजी का जन्म वि.संवत् 1964 (ई.सन् 1907) के ज्येष्ठ मास की शुक्ला एकादशी को हुआ था। इसे निर्जला एकादशी व भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं। रेवाड़ी जिले के नन्दरामपुर बास गाँव में आपका प्रादुर्भाव वशिष्ठ गोत्रीय चतुर्वेदी सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ। यह ब्राह्मण वर्ग शुक्ल यजुर्वेदी है तथा इनका उपवेद धनुर्वेद है। रेवाड़ी नगर हरियाणा में राजस्थान सीमा पर स्थित है। यह एक प्राचीन नगर है इसके प्रमाण प्राप्त होते

टिप्पणी– 1. यह उल्लेखनीय है कि पं. दुर्गा प्रसाद जी चतुर्वेदी का मोटे गणेश जी के मन्दिर से कोई सम्बन्ध नहीं था। जिस मकान में गणेशजी हैं, वे उसी में रहते थे। इसलिये उनको स्थान परिचय के कारण मोटा गणेश वाले महाराज जी कहा जाता था।

[illegible] 'श्री[illegible] अनन्यमाल' में रेवाड़ी नगर का उल्लेख है। यह ग्रन्थ [illegible] के लगभग रचा गया था।

ऐसा माना जाता है रेवाड़ी का प्राचीन नाम रेवती नगर था। रेवती जी महाराज रैवत की पुत्री थीं जिनका विवाह श्रीकृष्ण के बड़े भाई श्रीबलरामजी के साथ हुआ था। रेवाड़ी नगर में एक प्राचीन श्रीराधाकृष्ण मन्दिर है, कहा जाता है कि यहीं पर श्रीबलराम-रेवती का विवाह हुआ था। रेवाड़ी से लगभग 26 किमी. दूर नन्दरामपुर बास गाँव है। यह गाँव हरियाणा प्रान्त की राजस्थान सीमा पर स्थित है एवं धारूहेड़ा तहसील के अन्तर्गत है।

श्रीमहाराजजी के पिता श्रीप्रभुदयालजी चतुर्वेदी तथा माता श्रीआनन्दीबाई दोनों परम सात्विक प्रकृति के तथा सन्तोषपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले आदर्श दम्पती थे। उनके दो पुत्र एवं एक पुत्री थी। बड़े बेटे का नाम श्रीमातादीन था। उसके पश्चात् कलावती नामक एक पुत्री थी। तदोपरान्त छोटे पुत्र के रूप में श्रीदुर्गा प्रसाद (महाराजजी) थे। गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस में श्रीशिव जी जगदम्बा उमादेवी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुवीर परायन, जेहि नर उपज बिनीत॥

– उत्तरकाण्ड 127

जिस कुल में भगवत्-भक्त उत्पन्न होता है वह कुल धन्यातिधन्य हो जाता है। उक्त युक्ति से चतुर्वेदी कुल धन्य हो गया। श्रीरामचरित मानस में माता सुमित्रा जी, लक्ष्मणजी को सम्बोधित करते हुए कहती हैं–

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥

तदनुसार माता श्रीआनन्दी बाई को 'पुत्रवती' होने का सौभाग्य मिला। पद्मपुराण में एक श्लोक में कहा गया है– कुल, जननी, पृथ्वी, पितृगण आदि सब के सब एक साथ ही धन्य हो जाते हैं।

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च धन्या।
स्वर्गे स्थिता: ये पितरश्च धन्या:, येषां कुले वैष्णव नाम धेयम्॥

अर्थात् वह कुल परम पवित्र है, वह माता कृतार्थ है, वह पृथ्वी पुण्यवती व धन्य है, वे पितृगण भी धन्य हैं, जिस कुल में कोई महाभागवत वैष्णव प्रकट होता है।

अस्फोटयन्ति पितरः नृत्यन्ति च मुहुर्मुहुः।
मत्कुले वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति॥

अर्थात् कुल में वैष्णव संतति को पाकर पितृगण ताली बजा-बजाकर नृत्य करते हैं (वे कहते हैं) धन्य है हमारे कुल में वैष्णव प्रकट हुआ है, यह हमारी रक्षा करेगा। इसके भजन की महिमा से हमें भी वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाएगी। श्रीमहाराजजी के प्राकट्य के फलरूप चतुर्वेदी कुल, माता आनन्दी बाई, नन्दराम बास गाँव तथा पितृगण पवित्र एवं धन्य हो गये।

श्रीप्रभुदयाल जी की जीविका का क्या साधन था यह ज्ञात नहीं हो सका। वे कृषि कार्य से जुड़े हुये थे अथवा किसी अन्य व्यवसाय से, इसका पता नहीं चलता। श्रीमहाराजजी प्रायः सत्सङ्ग एवं भगवच्चर्चा ही किया करते थे, अपने निजी जीवन के विषय में कदाचित् ही कभी कोई बात कहते। उनके वंशजों से भी इसकी जानकारी नहीं मिल सकी। हो सकता है वे कृषि कार्य से ही जुड़े रहे हों जैसा कि प्रायः ग्रामवासियों में होता है। छोटा गाँव होने से अन्य व्यवसायों के लिये वहाँ उतने अवसर भी नहीं थे।

परम संत श्रीदुर्गाप्रसादजी के जीवन-परिचय की प्रथम लेखिका श्रीद्रोपदी बहिन जी थीं। यद्यपि उनका लेखन अति संक्षिप्त है तथापि उन्होंने कुछ वर्षों तक आपका प्रत्यक्ष दर्शन तथा सत्संग लाभ प्राप्त किया था, इस कारण लेखन में सूत्रात्मकता होते हुए भी वह ठोस तथ्यों पर आधारित है। श्रीमहाराजजी ने अपने बाल्यकाल के विषय में स्वयं एक बार बताया था जिसे द्रोपदी जी ने इन शब्दों में लिखा है–

"आपने ही अपने श्रीमुख से बताया था कि उनकी माँ का कहना था कि हमने तुम्हारे बचपन को ही नहीं देखा अर्थात् बाल्य जीवन अन्य बालकों जैसा चापल्ययुक्त एवं अज्ञानपूर्ण नहीं था। प्रारम्भ से ही गम्भीर एवं विचारपूर्ण रहा है। आप सदैव ही कुछ खोज करने जैसी अवस्था में तत्पर रहे। वह खोज थी सत्य की खोज।"

अपने बाल्यकाल के विषय में कहा गया श्रीमहाराजजी का यह कथन महत्त्वपूर्ण है। सांसारिक उपलब्धियों के प्रति उदासीनता जो उनके सम्पूर्ण जीवन में दिखाई देती थी, वह बचपन से ही उनमें विद्यमान थी। चपलता, खेल-कूद में उत्साह, वस्तुओं को पाने की स्पृहा, उनकी प्राप्ति पर हर्ष तथा प्राप्ति न होने पर दुःख एवं रोष इत्यादि बाल-सुलभ चेष्टाओं का उनमें अभाव था। इनके स्थान पर गम्भीरता, विवेक एवं विचारशीलता उनमें बाल्यकाल से ही दिखाई देती थी।

ठकुर श्रीरामकृष्ण परमहंस के उपदेशों में होमा पक्षी की चर्चा है। होमा जाति के पक्षी आकाश में बहुत ऊँचाई पर उड़ते हैं। वहीं आकाश में मादा पक्षी बच्चे को जन्म देती है। वह नवजात शिशु अबोधावस्था में कुछ देर तो नीचे गिरता है किन्तु फिर उसे चेत होता है और पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही वह ऊपर उड़ना आरम्भ कर देता है तथा शीघ्र ही अपनी जाति के पक्षियों में जा मिलता है। ऐसा ही महापुरुषों का बचपन होता है। बाल्यावस्था में सांसारिक कामनाओं तथा लौकिक मानदण्डों का स्पर्श उनके पवित्र मन को हो, इसके पूर्व ही वे परम सत्य की खोज के प्रति सावधान हो जाते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि उनमें बचपन से ही चपलता के स्थान पर गम्भीरता, उतावली के स्थान पर विचारशीलता तथा स्पृहा के स्थान पर सन्तोष दिखाई देता है।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

श्रीमहाराजजी के व्यक्तित्व में बाल्यकाल से ही दिखाई देने वाले ये सद्गुण उनके आगे के जीवन की विशद झाँकी प्रस्तुत कर रहे थे। बचपन में भी जिसे बाल-सुलभ चपलता स्पर्श नहीं कर सकी उसका शेष जीवन कैसा

आध्यात्मिक आदर्शों से परिपूर्ण रहा होगा इसका यथामति कुछ अनुमान किया जा सकता है।

धार्मिक संस्कारों एवं नैतिक मूल्यों का मणि कांचन संयोग

बालक के सर्वाङ्गीण विकास में माता-पिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह भूमिका सभी दृष्टियों से उपयोगी है तथापि नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिये तो इसकी विशेष आवश्यकता है। यद्यपि इसके अनेक अपवाद भी देखने में आते हैं। कहीं माता-पिता अपने बच्चों में सुशिक्षा का वपन करते हैं तो भी बालक उसे ग्रहण न करके अलग ही प्रकृति के निकलते हैं। इसके विपरीत कहीं माता-पिता से अपेक्षा न करके बालक ही अपनी पूर्व जन्मार्जित प्रतिभा से स्वयं ही अपने व्यक्तित्व का श्रेष्ठ निर्माण कर लेते हैं। श्रीमहाराजजी स्वयं जन्मान्तरीय संस्कारों से सम्पन्न थे, इसके साथ ही उनके माता-पिता ने भी उन्हें धार्मिक संस्कार एवं नैतिक मूल्यों की प्रेरणा प्रदान की थी। उनकी माताजी उन्हें प्रायः महापुरुषों की कथायें तथा अन्य प्रेरक प्रसङ्ग सुनाया करती थीं। इन्हें सुनकर उनका कोमल चित्त उल्लसित हो उठता और उनके मन में भी महापुरुषों जैसे आचरण एवं उन जैसी जीवनचर्या जीने का उत्साह हिलोरें लेने लगता। यह उमंग जब अधिक तीव्र हो जाती तो बालक दुर्गा प्रसाद सहसा अपनी माँ से कहने लगते— **"माँ! मैं भी इन महत् पुरुषों के समान सब कुछ त्यागकर वन में निवास करूँगा।"** बालक के मुख से ऐसे वाक्य सुनकर माँ का हृदय सिहर उठता और वे विभिन्न युक्तियों से अपने वीतरागी पुत्र को समझाने-बुझाने में लग जातीं।

बालकों को धर्म, मानव-सेवा, न्याय, राष्ट्रप्रेम तथा रण-कौशल आदि विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े महापुरुषों की कथायें सुनाने की हमारी संस्कृति में प्राचीनकाल से ही परम्परा है। ये कथायें बालकों की मनोभूमि को तदनुकूल बनाने में उपयोगी सिद्ध होती हैं और उनके प्रभाव से क्रमशः उसी दिशा में

उनका विकास होने लगता है। यही कारण है कि भारतवर्ष-सन्त, भक्त, त्यागी, बलिदानी, सत्यनिष्ठ मनस्वी तथा शूरवीरों की पुण्य भूमि है।

बाल्यकाल से ही संत मिलन का व्यसन

परमार्थ साधना में सन्त-दर्शन एवं सत्संग का अतिशय महत्त्व है। वेदादि आर्ष ग्रन्थ तथा सन्त-भक्तों का वाणी साहित्य—सभी में स्थान-स्थान पर सत्संग का महत्त्व और उसकी अनिवार्यता कही गई है। बालक दुर्गाप्रसाद को भी इसका सुयोग बचपन से ही प्राप्त हुआ। उनके पिता श्रीप्रभुदयाल जी सन्तदर्शन एवं सत्संग में रुचि रखते थे। अपने क्षेत्र में जहाँ भी सन्तों का आगमन, उनका प्रवचन-सत्संग होता प्रभुदयाल जी उसकी खोज-खबर रखते। दैनिक कार्यों से समय निकालकर वे उसमें अवश्य सम्मिलित होते। एक बार श्रीमहाराजजी ने बताया था कि उनके पिताजी को उस क्षेत्र में 20-25 मील दूर तक भी यदि किसी सन्त-महापुरुष के आने का समाचार प्राप्त होता तो वे तुरन्त ही श्रीमहाराजजी को अपने साथ लेकर पैदल ही उनके दर्शनार्थ निकल पड़ते। सन्तदर्शन के लिये गाँव से इतनी दूर पैदल यात्रा करना इस बात का परिचायक है कि श्रीप्रभुदयाल जी की दृष्टि में सन्तदर्शन एवं सत्संग का कितना भारी महत्त्व था। पिता के माध्यम से महाराजजी को भी इसका लाभ सहज प्राप्त हो जाता।

सन्त दर्शन का यह संस्कार जो आपमें बाल्यकाल से पड़ गया, आगे भी क्रमशः विकसित होता ही रहा। अपने उत्तर जीवन में भी वे महापुरुषों के दर्शन एवं उनका सानिध्य प्राप्त करने को सदैव तत्पर रहते थे तथा जब भी इसका सुयोग उन्हें प्राप्त होता, उस अवसर का वे पूरा लाभ उठाते।

श्रीमहाराजजी कहा करते थे— "जिस प्रकार आजकल लोग चाय के आदी (व्यसनी) हैं, उसी प्रकार मैं सन्त दर्शनों का व्यसनी हूँ। लोग चाय के बिना नहीं रह सकते और मैं सन्तदर्शन तथा उनकी सेवा के बिना नहीं रह सकता। किसी के जीवन का कुछ व्यसन है तो किसी का कुछ। मेरे जीवन का व्यसन सन्त मिलन है।"

(शरीर से) "आस्था छूटेगी तब, जब इसके स्वरूप को पहचान लोगे और सत्संग को अपना जीवन उसी प्रकार बना लोगे जैसे मछली के लिए जल।"

सत्संग की महिमा को व्यक्त करने वाली मानस की इस चौपाई का श्रीमहाराज जी पर विशेष प्रभाव पड़ा—

मज्जन फल पेखिय तत्काला। काक होहिं पिक बकहु मराला॥

अर्थात् सत्संग रूपी सरोवर में स्नान करने का फल तत्काल प्राप्त होता है। इसमें नहा कर कौआ, कोयल के समान मृदुभाषी तथा बगुला, हंस के समान सारग्राही हो जाता है।

इस प्रकार एक ओर स्वयं के धर्म-संस्कार जो उन्हें जन्म से ही प्राप्त थे तथा दूसरी ओर माता-पिता के द्वारा उन संस्कारों एवं सद्गुणों का निरन्तर पोषण होना, इस दुर्लभ वातावरण में महाराजजी का बाल्यकाल व्यतीत हुआ। बचपन की इस अमिट छाप ने उनके कृष्णभक्तिमय समग्र जीवन के लिये आधार-शिला का कार्य किया। इसी आधार पर उनके व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास हुआ।

आहार शुद्धि के प्रति सजगता

हमारे वैदिक धर्म-दर्शन में आहार शुद्धि को विशेष महत्त्व दिया गया है। मनुष्य जो भी भोजन करता है उस पदार्थ के सूक्ष्म भाग से उसके मन का निर्माण होता है। मन के निर्माण का अर्थ है मानसिक प्रवृत्तियों का तथा विचारों का निर्माण। यदि आहार अशुद्ध होगा तो मन में भी कुप्रवृत्तियों का उदय होगा। जो क्रमशः बलवती होकर मानव को उसके श्रेय मार्ग से भटका कर पतन के मार्ग में ले जायेंगी। परन्तु यदि आहार शुद्धि का सदैव व समुचित ध्यान रखा जाये तो उसके प्रभाव से चित्त में सद्गुणों एवं सद्विचारों का सहज ही उन्मेष होता रहेगा और अन्ततः जीवन के महानतम फल की स्वतः प्राप्ति हो जायेगी। वह महानतम फल है मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति।

यही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है जिसे आहार शुद्धि से प्राप्त किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में छान्दोग्योपनिषद् का यह मन्त्र विशेष रूप से उद्धृत किया जाता है—

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति।
स्मृतिर्लम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥

—7.26.2

अर्थात् आहार की शुद्धि होने पर अन्तःकरण की निर्मलता होती है। अन्तःकरण की निर्मलता होने पर परमतत्त्व की अविचल स्मृति होती है। अविचल स्मृति होने पर सभी ग्रंथियों का आत्यन्तिक नाश अर्थात् भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

भोजन की शुद्धि के अनेक आयाम हैं। भोजन अनेक कारणों से अशुद्ध होता है। यहाँ उनकी चर्चा करना आवश्यक नहीं है, तथापि आहार को मुख्य रूप से अशुद्ध बनाने वाला है अर्थ दोष। यदि धन को अन्याय से अथवा दूसरे को पीड़ित करके अर्जित किया जायेगा तो ऐसे धन से प्राप्त किया गया भोजन सर्वथा अशुद्ध ही होगा। पाकशाला में अनेक सावधानियाँ भले ही रखी जायें किन्तु ऐसा भोजन शुद्ध नहीं हो सकता। अतएव **आहार शुद्धि का प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सोपान है धन की शुद्धि।**

अध्यात्म-जीवन में आहार शुद्धि की विशेष अनिवार्यता है। इसके बिना भजन-मार्ग में आगे बढ़ना असम्भव है। आहार शुद्धि का प्रथम परिणाम है अन्तःकरण की निर्मलता। यह निर्मलता यदि अपने पूर्णरूप में किसी को प्राप्त हो जाये तो ऐसे साधक को आहार की अशुद्धि सर्वथा असह्य हो जाती है। यदि किसी के आग्रह से अथवा किसी के वंचना करने पर ऐसा उत्तम साधक अल्पांश में भी उसे ग्रहण कर लेगा तो अविलम्ब उसकी प्रतिक्रिया मानस-पटल पर उभर कर आ जायेगी। दूषित आहार की यह प्रतिक्रिया अनेक रूपों में व्यक्त हो सकती है जैसे दुःस्वप्न, भजन में रुचि का ह्रास, विकारों का वेग, विपरीत ज्ञान आदि। किन्तु यह प्रतिक्रियात्मक दुष्प्रभाव भी

सबको सहसा नहीं हो सकता। यह केवल उन्हीं भाग्यशालियों को अनुभव में आता है जिनकी मनोभूमि आहार शुद्धि के सर्वथा अनुरूप हो चुकी है। ऐसी अवस्था प्राप्त न होने से अशुद्ध आहार को हमारी प्रकृति आत्मसात् कर लेती है और उसका तत्काल एवं स्पष्ट प्रभाव चित्त पर नहीं उभरता।

जिन्हें यह अवस्था प्राप्त हो चुकी है वे प्रथम तो अशुद्ध आहार स्वीकार ही नहीं करते और यदि अनजाने में उसे ग्रहण कर भी लें तो उनकी निर्मल प्रकृति तत्काल उस अशुद्ध आहार को अपने से पृथक् कर देती है। यह निर्मल चित्त की दुर्लभ अवस्था है जिसमें ऐसे भोजन को प्रकृति सर्वथा स्वीकार नहीं करती और शीघ्र अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर उसे त्याग देती है। आहार शुद्धि की यह विलक्षण अवस्था श्रीमहाराजजी को बाल्यकाल से ही प्राप्त थी। इसके लिये उन्हें कोई साधन नहीं करना पड़ा। उनकी पवित्रतम मनोभूमि ने कभी किसी अपवित्र आहार को स्वीकार नहीं किया। द्रोपदी बहन जी ने इस सन्दर्भ में एक घटना का उल्लेख किया है जो उन्होंने श्रीमहाराजजी से सुनी थी। इस घटना के समय आपकी आयु लगभग ८ वर्ष की थी।

एक बार आपकी माताजी ने अन्यत्र कहीं से आया हुआ पकवान आपको खाने को दिया। आपने उसे खा लिया किन्तु खाते ही आपका जी मिचलाने लगा और थोड़ी देर में आपको वमन हो गया। आपने माँ से पकवान के विषय में पूछा तो उन्होंने बताया कि यह घर में बनाया हुआ नहीं है, कहीं से आया हुआ है। तब आपने कहा कि **"माँ! मुझे किसी दूसरे के यहाँ से आया हुआ कोई खाद्य पदार्थ मत दिया करो।"**

बाल्यकाल के इस निश्चय का आपने जीवन भर दृढ़ता से पालन किया। कहीं से आई हुई खाद्य वस्तु जिसकी शुद्धता में किञ्चित् भी सन्देह हो, उसे आप स्वीकार नहीं करते थे। श्रीमहाराजजी की बाल्यकाल में ही इस प्रकार की पवित्रतम मनोभूमि थी जिसे जीवन भर कठोर साधनाओं द्वारा प्राप्त करना भी उतना सुलभ नहीं है। यह निर्मल अन्तःकरण की उच्च अवस्था है

जिसके कारण अशुद्ध भोजन को आपकी अन्त: संरचना ने स्वीकार नहीं किया और तत्काल उसे त्याग दिया। वस्तुत: **ऐसे महापुरुषों को जगन्नियन्ता, करुणावरुणालय श्रीभगवान् मानव को उसका श्रेयमार्ग दिखाने के लिये धराधाम पर भेजते हैं।**

शिक्षा-दीक्षा

श्रीमहाराजजी की शिक्षा के विषय में कोई स्पष्ट विवरण प्राप्त नहीं है। द्रोपदी बहन ने भी कोई संकेत नहीं किया है। महाराजजी के भक्तों एवं उनके पारिवारिक सूत्रों से भी कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। ऐसी स्थिति में कुछ तथ्यों को आधार बनाकर प्रधान रूप से अनुमान का ही अवलम्बन लिया जा सकता है। यह निश्चित है कि श्रीमहाराज जी ने विद्यालयों में पर्याप्त विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी। वे यदा-कदा अंग्रेजी में भी पत्र लिखा करते थे। इतिहास एवं विज्ञान आदि विषयों की भी उन्हें जानकारी थी।



श्रीमहाराजजी ने होम्योपैथी चिकित्सा की एच.एम.बी.एस. (H.M.B.S.) डिग्री भी प्राप्त की थी। यह डिग्री उन्हें 15 जुलाई सन् 1960 में सिन्हा होम्यो मेडिकल कालेज, लहरिया सराय, दरभंगा (बिहार) ने प्रदान की थी। इस डिग्री का प्रमाण पत्र उनके पौत्र श्रीश्याम चतुर्वेदी के पास सुरक्षित है। सन् 1960 की अवधि में वे श्रीवृन्दावन में निवास कर रहे थे एवं शिक्षा के लिये अथवा डिग्री लेने के लिये लहरिया सराय नहीं गये, यह निश्चित है। इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने यह डिग्री सम्बन्धित कालेज का नामांकन पत्र (फार्म) भरकर प्राइवेट शिक्षा पद्धति से उत्तीर्ण की थी। इन तथ्यों से श्रीमहाराजजी की शिक्षा का कुछ अनुमान किया जा सकता है। होम्यो

मेडिकल कालेज ने एच.एम.बी.एस. करने के लिये पूर्व शिक्षा का प्रमाण पत्र अवश्य माँगा होगा। यह अनुमान किया जा सकता है कि इसके लिये कम से कम 12वीं कक्षा की योग्यता अनिवार्य रही होगी। अत: यह निश्चित होता है कि श्रीमहाराजजी ने अपने रेवाड़ी निवास की अवधि में 12वीं कक्षा तक पढ़ाई अवश्य की होगी। यह भी हो सकता है कि इसके आगे की कक्षाओं का भी अध्ययन किया हो।

ई.सन् 1907 में आपका प्रादुर्भाव हुआ, तदनुसार 12वीं कक्षा आपने पास की। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि उस समय शिक्षा का स्तर आज की तुलना में बहुत ऊँचा था। नन्दरामपुर बास उस समय एक छोटी बस्ती ही थी। अतएव वहाँ प्रारम्भिक कक्षाओं की ही पाठशाला रही होगी। इन कक्षाओं में पढ़ने के पश्चात् श्रीमहाराज जी ने आगे का अध्ययन रेवाड़ी नगर में किया होगा।

विद्याध्ययन का वास्तविक उद्देश्य मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति है। धन प्राप्ति तो उसका गौण फल है। यथार्थ विद्या वह है जो विद्यार्थी को जन्म-मरण के कुचक्र से बचाकर परमपिता परमात्मा की गोद में बिठा देती है। ईशावास्योपनिषद् में **"विद्याऽमृतमश्नुते"** इस प्रकार विद्या से मोक्ष प्राप्ति कही गई है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है—**"परायया तदक्षरमधिगम्यते"** अर्थात् परविद्या वह है जिससे उस अविनाशी सत्य की प्राप्ति होती है जिसे ब्रह्म, भगवान् आदि नामों से पुकारा जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

श्रीमहाराजजी का विद्याध्ययन उपनिषदों के इसी निर्देश को ध्यान में रखकर हुआ। अन्य विद्यार्थियों के समान केवल आर्थिक लाभ के लिये अध्ययन करना उनको अभीष्ट नहीं था। मानव-जीवन का चरम उद्देश्य श्रीभगवान् हैं—इस विषय में वे भीतर से पूर्ण सावधान थे। सजगता का विरोधी होता है प्रमाद। अर्थात् प्रमत्तता। उनके अन्त:करण में प्रमाद के लिये

कोई स्थान नहीं था। लक्ष्य का अटल निश्चय और उसकी उपलब्धि के प्रति पूर्ण सजगता– ये दोनों विशेषतायें आपमें बाल्यकाल से ही विकसित हो चुकी थीं। आपके अन्तर्मन में लक्ष्य के प्रति अटल निश्चय किस प्रकार सुदृढ़ हुआ, इससे सम्बन्धित एक घटना बताते हुए वे कहा करते थे– "विवेक कब होता है? सत्संग से। सत्संग प्राप्त होता है अनुभवी सन्तों से। अनुभवी सन्तों का मिलन निश्चयात्मिका बुद्धि से होता है। अचल एवं ध्रुव सत्य संकल्प ही निश्चय है। निश्चय में परिवर्तन नहीं होता जो एक बार निश्चय कर लिया वह अमिट होता है। किसी भी परिस्थिति में बदल नहीं सकता। इस सम्बन्ध में मेरे जीवन से सम्बन्धित एक घटना है जो मेरे प्रारम्भिक जीवन की पूर्वावस्था में अन्तर्मन में विचार के रूप में घटी थी। वह है– **संसार की समस्त वस्तु, भोग एवं ऐश्वर्य की सामग्री तो तेरे लिये है और तू किसके लिये है? बस इसी विचार ने, इसी प्रश्न ने मेरे जीवन पथ को मोड़ दिया, निश्चय हो गया और मैं चल पड़ा।**"

यहाँ जिस घटना का उल्लेख किया गया है वह यद्यपि वैचारिक धरातल पर घटित हुई तथापि इसका महत्त्व बहुत अधिक है। यह इसी से समझा जा सकता है कि श्रीमहाराजजी ने स्वयं कहा है कि–"**इसने मेरे जीवन-पथ को मोड़ दिया।**" इतना बड़ा परिवर्तन लाने वाली यह घटना साधारण नहीं हो सकती।

इसके अन्तर्गत एक प्रश्न, एक जिज्ञासा का उल्लेख किया गया है, जो उनके मानस-पटल पर उभर कर आई। इस प्रश्न का स्वरूप यह है कि संसार की समस्त वस्तुएँ तथा भोग और ऐश्वर्य के अन्य साधन सभी कुछ हमारे लिये हैं किन्तु इन सबके भोक्ता हम, जो मानव शरीर में विद्यमान चेतन जीवात्मा हैं, क्या हम भी किसी के लिये हैं? यह ऐसा प्रश्न है जो किसी विशिष्ट व्यक्तित्व में ही उभर सकता है। सामान्य व्यक्ति में यह प्रश्न नहीं उठ सकता।

जीव-ब्रह्म का वास्तविक सम्बन्ध

वैष्णवाचार्यों ने जीव और ब्रह्म के बीच तीन प्रकार का शाश्वत सम्बन्ध माना है। इन सम्बन्धों का कभी अभाव नहीं होता, जीवात्मा के स्वरूप के साथ ये जुड़े हुए हैं। चूँकि जीव अविनाशी है अतः ये तीनों सम्बन्ध भी अविनाशी हैं। बन्ध-मोक्ष, सृष्टि-स्थिति-प्रलय, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति सभी अवस्थाओं में जीव और ब्रह्म के बीच ये सम्बन्ध बने रहते हैं। इनमें प्रथम है धार्य-धारक सम्बन्ध, अर्थात् परमात्मा जीव को धारण करने वाले हैं और जीव उनके द्वारा धारण किया हुआ है। दूसरा है नियाम्य-नियामक सम्बन्ध, अर्थात् जीव उनके द्वारा नियमन (अधीन) किया हुआ है और वे उसके नियामक हैं। तीसरा है शेष-शेषी सम्बन्ध। अर्थात् जीव उनके लिये है तथा वे जीव को जब चाहें, जैसा चाहे अपने उपयोग में ले सकते हैं। यह तीसरा शेष-शेषी सम्बन्ध ही श्रीमहाराजजी के अन्तर्मन में उठे प्रश्न का आधार है।

शेष उन वस्तुओं को कहते हैं जिनका अस्तित्व, जिनका वैशिष्ट्य अर्थात् जिनकी स्थिति-प्रवृत्ति स्वरूपतः किसी दूसरे के लिये हो। जिसके लिये वह होती है उसे उस वस्तु का शेषी कहते हैं। जैसे माला और चन्दन, ये वस्तुएँ अपने लिये नहीं बनीं और न ही इनकी विशेषताएँ इनके अपने लिये हैं। ये निश्चित रूप से अपने से पृथक् किसी मनुष्य के लिये ही बनीं हैं जो माला पहन कर तथा चन्दन का लेप लगाकर सुख का अनुभव करेगा। अतः माला-चन्दन आदि वस्तुएँ शेष कहलायेंगी तथा उनका भोक्ता वह मनुष्य शेषी कहा जायेगा। वैष्णव दर्शन के अनुसार यह समस्त जड़-जगत् तथा सभी चेतन जीवात्मायें श्रीभगवान् की शेष हैं तथा श्रीभगवान् उनके स्वाभाविक शेषी हैं। जीव के अन्तरतम का यह शेषत्व (शेषपना) उसका एक स्थायी धर्म है, जो उससे कभी अलग नहीं होता। यह धर्म उसके भीतर सदैव होने पर भी सांसारिक मोह-माया तथा उसके दुराचरणों के कारण ढका रहता है, कभी उसके अनुभव में नहीं आता। ये दुर्गुण उस धर्म को एक आवरण की भाँति

ढके रहते हैं। सत्य, सदाचार, साधना तथा भगवत्कृपा से यह आवरण क्षीण हो जाये तब इस धर्म का शनैः शनैः अनुभव होता है।

श्रीमहाराजजी सत्य-सदाचार से सर्वथा सम्पन्न तथा भगवत्कृपा से बाल्यकाल से ही साधन परायण थे, उनके भीतर यह शेषत्व धर्म एक प्रश्न के रूप में उभर कर आया। इसका उत्तर खोजते हुए उनमें एक सुदृढ़ निश्चय उत्पन्न हुआ कि **मैं केवल श्रीकृष्ण का हूँ और उनके लिये ही हूँ।** यही इस प्रश्न का वास्तविक उत्तर है जिसके प्राप्त होने से वे परमार्थ पथ पर एक नई उमंग से तत्परतापूर्वक चल दिये। इस प्रकार इस प्रश्न ने उनके जीवन-पथ को नई दिशा प्रदान की।

जीवात्मा केवल श्रीकृष्ण के लिये ही है, अपने लिये नहीं। वे जब जैसा चाहें, उसे अपने उपयोग में ले सकते हैं। यही जीव का शेषत्व धर्म है। इस सजगता के साथ अपने को श्रीकृष्ण के लिये समर्पित कर देना ही जीवन को दिशा प्रदान करना है। श्रीमहाराज जी के पावन-चरित्र में इस सजगता एवं समर्पण के पग-पग पर प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं।

जिस घटना का ऊपर उल्लेख किया गया है वह श्रीमहाराजजी के विद्यार्थी जीवन में घटित हुई, ऐसा मानना चाहिये। इसका आधार यह है कि स्वयं उन्होंने इसे **'जीवन प्रारम्भ की पूर्वावस्था में'** घटित कहा है। उनकी शिक्षा कम से कम 12वीं कक्षा तक हुई होगी ऐसा पूर्व में कहा जा चुका है। ऐसी स्थिति में यह प्रसंग 8वीं-9वीं कक्षा की अवधि में घटा होगा ऐसा अनुमान होता है। इसी क्रम में आगे जिस प्रसंग का उल्लेख किया जा रहा है वह भी हमारे विचार से लगभग इसी अवधि का है। जिस प्रकार ऊपर कही घटना विचार व जिज्ञासा के रूप में उभरी उसी प्रकार आगे का प्रसंग भी वैचारिक धरातल पर ही घटा। इसने उनके हृदय में बालपन से विद्यमान सत्य निष्ठा को सुदृढ़, व्यापक और सैद्धान्तिक आधार प्रदान कर उसे अनेकशः विकसित किया, जिसके परिणामस्वरूप सत्य निष्ठा उनका जीवन दर्शन बनकर उनके चिन्तन एवं व्यवहार में सदैव शीर्ष पर रही।

सद्ग्रन्थों का अनुशीलन

श्रीमहाराजजी बाल्यकाल से ही नियमित भजन-पूजा तथा श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानस का पाठ करते थे। इन दोनों ग्रन्थों का आप पर विशेष प्रभाव था। **श्रीरामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदास जी की कालजयी अमरकृति है, जिसमें स्वयं रचनाकार के शब्दों में 'सब ग्रन्थन कौ रस'** अर्थात् सभी प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों का सार समाहित है। **गीता स्वयं भगवान् की वाणी है और वैदिक सनातन धर्म का एक अतिशय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।** इसकी प्रत्येक पंक्ति मानव-मात्र का कल्याण करने में समर्थ है। ये दोनों ग्रन्थ श्रीमहाराजजी के लिये सदैव प्रेरणास्रोत बने रहे।

सत्य की सार्थक परिभाषा

एक दिन आप श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ कर रहे थे, उस समय द्वितीय अध्याय के इस श्लोक ने आपका ध्यान विशेष रूप से अपनी ओर खींचा—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

अर्थात् असत् वस्तु की सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों का तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है।

इस श्लोक पर विचार करने से आपको सत्य की एक नयी और सार्थक परिभाषा प्राप्त हुई। इससे आप में सत्य को लेकर एक व्यापक विचार परम्परा ने जन्म लिया। श्लोक के अर्थ का मनन करने से आपको सत्य पर आधारित एक विस्तृत दर्शन का साक्षात्कार हुआ जो प्रत्येक कल्याणकारी साधक के लिये उपयोगी ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है।

श्लोक में कहा गया है कि असत् वस्तु की सत्ता नहीं है और सत् का कभी अभाव नहीं होता। तीनों कालों में सदा विद्यमान रहने वाला वह सत् तत्त्व ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। दूसरी ओर असत् जो कभी विद्यमान नहीं होता, केवल उसके होने का भ्रम होता है। यह भ्रम ही सत् की

प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है। अतः इस भ्रम से सावधान रहकर सत् की खोज में तत्परता से जुट जाने में ही बुद्धिमानी है। आगे चलकर जिज्ञासुओं को यह विषय समझाते हुए वे इसकी सार गर्भित एवं सरल व्याख्या किया करते थे। उनमें से कुछ अंशों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

"सत् का अर्थ है '**है**' और असत् का अर्थ है '**नहीं**'।" अब समस्या यह है कि तुमने जो 'है' उसको तो 'नहीं' मान लिया है और जो 'नहीं है' उसे 'है' मान लिया है। जीव क्लेश पा रहा है! यदि उसे इसका यथार्थ बोध हो जाये तो उसके सारे संकट सदा के लिये समाप्त हो सकते हैं। अब देखना यह है कि 'है' क्या है और 'नहीं' क्या है। तो भैया, देख लो यह जगत् तो 'नहीं' है और श्रीकृष्ण 'है' हैं अर्थात् यह जगत् जिसको तुमने सत् माना हुआ है वास्तव में यह है नहीं और श्रीकृष्ण जो वास्तव में हैं उन्हें तुम मानते नहीं, उन पर विश्वास नहीं, तो यह तो छोड़ना पड़ेगा भैया! और सत्य को ही सत्य मानेंगे तभी लाभ होगा। तुम कह सकते हो कि जो वस्तु हमारे सामने है उसे कैसे मानें कि नहीं है। ठीक है, परन्तु तनिक विचार कर देखो जब तुम स्वप्न देखते हो तो वह सत्य ही प्रतीत होता है परन्तु आँख खुलने पर? कुछ नहीं, यह क्या है? बस इसी प्रकार यह जगत् भी 'है' सा लगता है, वस्तुतः है नहीं।

गीता का श्लोक श्रीमहाराजजी के लिये मात्र एक आर्ष वचन ही नहीं रहा जिसका कि समयानुसार पाठ कर लिया जाए अपितु यह उनके चिन्तन में एक व्यापक जीवन-दर्शन के रूप में प्रकट हुआ। सत्य ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। उनके इस पूर्व निश्चय को इस श्लोक ने न केवल असीम दृढ़ता प्रदान की वरन् उसे एक सुनिश्चित दिशा भी दी। इसके फलस्वरूप वे तत्परतापूर्वक सत्य की खोज में जुट गये।

जो निरन्तर है वही सत्य है अर्थात् जिसका 'है पना' देश, काल और परिस्थितियों से कभी प्रभावित नहीं होता। यह अनादि, अनन्त और एक रस है, यही श्रीकृष्ण हैं। इसी प्रकार जो नहीं है वह असत् है। यह असत् है शरीर

और संसार। सत् और असत् को पृथक्-पृथक् जानने से असत् के प्रति बनी हुई ममता छूट जाती है और सत् से हमारा अखण्ड नाता जुड़ जाता है। सत् स्वरूप श्रीकृष्ण की प्राप्ति तभी होती है। केवल कहते रहने से उस तत्त्व को नहीं पाया जा सकता, उसके लिये तो गीता की इस पंक्ति को अपने जीवन में मूर्त रूप प्रदान करना पड़ेगा। श्रीमहाराजजी ने इस विषय में कहा— 'है' तो एकमात्र वही श्रीकृष्ण हैं और सब 'नहीं' है। यह कहने से नहीं होगा, यह तो कहने वाले की क्रिया बतायेगी, कथनी से काम नहीं बनता। मन, वाणी और क्रिया की एकता से जीवन बनता है। 'है' तो एकमात्र श्रीकृष्ण हैं यदि उससे पहचान हो जाय, पहचान होते ही प्रीति हो जाती और जिससे प्रीति हो गई वह न मिले, यह कैसे हो सकता है? यह पहचान होती है एकमात्र सत्य के संग से। सत्य के संग में कृष्ण-अनुभूति होती है और क्लेशों से छुटकारा मिलता है। जब तुम्हें सत्य के द्वारा यह विदित हो गया कि यह शरीर असत्य है, इससे मतलब नहीं तो मृत्यु का भय समाप्त हो गया। अरे भाई, जो है ही नहीं तो मरेगा क्या? जब देह असत्य है तो इससे सम्बन्धित सभी चीजें असत्य हैं, ममता छूट गई, अँधेरा मिट गया, प्रकाश के रखते ही अँधेरा समाप्त हो जाता है फिर कोई अन्य प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जो चीज असत् यानी है ही नहीं फिर उसका अपमान क्या होगा? यदि कोई गाली दे तो बुरा लगेगा क्या? कतई नहीं, बिल्कुल नहीं। जब असत्य की सत्ता समाप्त हो गई तो सत्य से नाता जुड़ गया। इधर टूटा, उधर जुड़ गया। देर नहीं लगती। असत् नहीं तो रह गया 'है' और 'है' कौन, वह तुम्हारा मुरलीधर। उससे नाता जुड़ गया, तो मिलन होना तो अवश्य ही है। सो भैया, सत्य को पहचानो उसी का संग करो। सत्य ही जीवन है, सत्य ही प्राण है, सत्य ही योग है, सत्य ही जप है, सत्य ही तप है, सत्य का ही दूसरा नाम श्रीकृष्ण है। सभी कुछ सत्य है। यदि सत् को छोड़कर असत् का सहारा लिया तो डूबना पड़ेगा। सत्य की पहचान होने पर असत् की ओर वृत्ति जा ही नहीं सकती। जो सेब खा चुका, उसका मन क्या बेर चाहेगा?"

श्रीमहाराजजी के इन अमृत-वचनों में सत्य पर आधारित एक सर्वांगीण सिद्धान्त प्रकट होता है जो पारमार्थिक जीवन के लिये तो अनिवार्य है ही किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में भी इसकी बहुत उपयोगिता है। सत्य का प्रसिद्ध अर्थ है 'सत्य-भाषण'। मन, वाणी और कर्म से जिस विषय को जैसा अनुभव किया जाय उसे बिना किसी परिवर्तन के वैसा ही कह देना सत्य-भाषण कहलाता है। महाभारत में कहा गया है कि "नास्ति सत्यात्परो धर्मः" अर्थात् सत्य वचन से बड़ा कोई धर्म नहीं है। मुण्डकोपनिषद् में उस ज्योतिर्मय परम पुरुष को सत्य से प्राप्य कहा गया है—"सत्येन लभ्यः" सत्य की परम महिमा जानने के लिए इस उपनिषद् का यह प्रसिद्ध मन्त्र बहुत उपयोगी है—

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

अर्थात् सत्य ही जीतता है झूठ नहीं! विस्तृत देवयान मार्ग सत्य से प्राप्त होता है। जिस मार्ग से तृष्णारहित तत्त्वदर्शी ही (उस स्थान को) प्राप्त करते हैं। जिस स्थान में सत्यवचन का परमफल वह प्राप्य ब्रह्म है।

सत्य का सत्य-भाषण अर्थ होते हुए भी इसके और भी अनेक अर्थ हैं जिनके अन्तर्गत मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के कई क्रिया-कलाप आ जाते हैं। धनोपार्जन की शुद्धता, संयमित जीवन, देखना, सुनना आदि सभी चेष्टाओं में नैतिकता और पवित्रता यह सब भी व्यापक रूप में सत्य शब्द के अर्थ हैं। वस्तुतः न्याय और नैतिकता से पूर्ण मनुष्य की वे सभी क्रियाएँ जो परिणाम में उसका और समाज का हित करती हैं, सत्य शब्द के अन्तर्गत आती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव के सभी सदाचरण 'सत्य' शब्द का ही अर्थ हैं।

गीता के 'नासतो विद्यते भावो' श्लोक को हृदयंगम करने से श्रीमहाराजजी की सत्य के प्रति निष्ठा और उसे प्राप्त करने के निश्चय में अधिकाधिक रूप से गहन गम्भीरता आती चली गई। उनकी दृष्टि में सत्य का अर्थ स्वयं श्रीकृष्ण, सत्य-भाषण और समस्त सदाचार ये सब थे। सत्य

स्वरूप श्रीकृष्ण की प्राप्ति सत्य भाषण और सदाचार से पवित्र बने हुए मनुष्य को ही सम्भव है। निष्कर्ष यह है कि सत्य ही साधन और सत्य ही साध्य है। यही श्रीमहाराजजी का सत्य पर आधारित जीवन दर्शन था जिसे उन्होंने निष्ठापूर्वक आत्मसात किया। उनके उपदेश वचन हैं— श्रीकृष्ण मिलन लोगों को क्यों नहीं हो रहा? तो पता चला मन मलिन है। जब तक मन शुद्ध नहीं होगा यह काम बन नहीं सकता। मन शुद्ध कैसे हो? उसका उपाय है 'सत्यनिष्ठा', सत्य का पूर्ण रूप से पालन, जीवन सत्य से ओत-प्रोत हो। सत्य की मृत्तिका से मन मँजकर निर्मल हो जाने पर श्रीकृष्ण मिलन अवश्य होगा।

"तो भैया! देरी हो रही है, समय जा रहा है, न जाने कब खेल खत्म हो जाय? इसलिए जल्दी अपना काम कर लो, सत्य को पकड़ लो। कठिनाई क्या है? सत्य धारण करने के लिए सरल जीवन हो, रहनी में कोई दिखावा न हो। कोई बनावा, कोई खींचतान न हो। सरल जीवन निश्छल होता है उसमें कोई कपट नहीं होता। निश्छल हृदय में सत्य का निवास बिना किसी प्रयास के स्वतः ही हो जाता है। जब कोई दिखावा नहीं होगा कुछ छिपाना नहीं होगा और कपट भावना नहीं होगी तो असत्य की आवश्यकता ही क्यों पड़ेगी? सरल स्वभाव जो है, जैसा है, वैसा ही कह दिया जायगा, कर लिया जायगा और दिखा दिया जायगा। सत्य के धारण होते ही मन निर्मल हो जाता है और निर्मल मन-मन्दिर में प्रियतम प्रभु आ विराजते हैं, देर क्या है।"

पूर्व पृष्ठों में हमने श्रीमहाराजजी के बाल्यकाल तथा विद्याध्ययन की अवधि के कुछ प्रसंगों का उल्लेख किया। उनका अन्तर्तम प्रारम्भ से ही अध्यात्म के रंग में रंगा हुआ था इसलिये वे सदैव अन्तर्मुख रहा करते थे। इस आयुक्रम में जो चापल्य प्रायः विद्यार्थियों में देखा जाता है, उसका लेशमात्र भी उनके भीतर नहीं था। श्रीकृष्ण प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है यह निश्चय उनके भीतर दृढ़ता से प्रतिष्ठित रहा, अतएव व्यर्थ आलाप एवं खेलकूद आदि

प्रसंगों के लिये उनके पास अवकाश नहीं था। समय का पूर्ण सदुपयोग करते हुए विद्याध्ययन तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों का पठन, उन पर मनन-चिन्तन तथा तदनुरूप आचरण का प्रयास—संक्षेप में यही उनके विद्यार्थी जीवन का परिचय है। एक क्षण भी व्यर्थ न हो इसका वे विशेष ध्यान रखते। आगे चलकर समय के सदुपयोग का उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था—"भैया रे! समय का बड़ा मूल्य है। जो लोग इसे नहीं विचारते वह बहुत बड़ी भूल करते हैं। उनका कोटा पूरा नहीं हो सकता। तो समय का सदुपयोग करना सीखो, लोग समय के सदुपयोग का अभिप्राय पूछते हैं। समय के सदुपयोग से अभिप्राय है यह अमूल्य समय व्यर्थ कार्यों में, व्यर्थ की बातों में व्यय न हो। एक-एक मिनट का मूल्य समझो। व्यर्थ व्यय किया हुआ वह एक मिनट भी फिर करोड़ों क्या किसी भी कीमत पर नहीं मिल सकता। जो समय सत् कार्यों से हटकर अर्थात् व्यर्थ कार्यों में बीता वह व्यर्थ चला गया और सत् कार्यों में बीता वही उचित है।"

सामान्य मनुष्य अपने समय का दुरुपयोग प्राय: खेल-तमाशा, आलस्य अथवा व्यर्थ आलाप में कर देते हैं। इनमें भी व्यर्थ आलाप से ही सर्वाधिक नुकसान होते देखा जाता है। श्रीमहाराजजी अपने विद्यार्थी जीवन में इन प्रवृत्तियों से सर्वथा दूर रहे। उनके जीवन में व्यर्थ आलाप आदि का कभी कोई स्थान नहीं था। इस विषय में मंगलीय सुमन में उनका यह उपदेश वाक्य संकलित है— "बिना आवश्यकता कतई मत बोलो। अधिक बोलने से असत् बातें मुँह से अवश्य निकलेंगी जो श्रीकृष्ण से दूर ले जाने वाली हैं।"

सत्संग, सदाचार, सत्यनिष्ठा तथा श्रीकृष्ण भक्ति—ये दिव्य गुण श्रीमहाराजजी के व्यक्तित्व की आधार शिला थे, जिन्हें उन्होंने बाल्यकाल से ही निष्ठापूर्वक हृदयंगम किया। श्रीकृष्ण भक्ति के प्रति उनकी अभिरुचि सत्संग के माध्यम से विकसित होती चली गई, किन्तु इसके पीछे पूर्व जन्म के संस्कारों का भी अतिशय महत्त्व था। श्रीमहाराजजी का नन्दनन्दन श्रीकृष्ण

के प्रति बाल्यकाल से ही आकर्षण था जो सत्संग के द्वारा निरन्तर पुष्ट होता चला गया। सत्य और सदाचार के प्रति उनकी आत्मिक निष्ठा और उसके अनुरूप उनके पवित्र आचरणों से इस आकर्षण को रक्षण और पोषण प्राप्त हुआ। जिससे इसकी सतत वृद्धि हुई। समयानुसार यह आकर्षण गहन-गम्भीर निष्ठा का रूप धारण करता हुआ उनके अन्तर में श्रीकृष्ण भक्ति के रूप में पुष्पित-फलित हुआ। यह प्रेमा-भक्ति ही सभी सद्ग्रन्थों के उपदेशों का सार-सर्वस्व है तथा मानव-जीवन का चरम लाभ है।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

कुछ दशकों पूर्व तक समाज में बालकों का छोटी आयु में विवाह करने का प्रचलन रहा है। विशेष रूप से ग्रामीण अञ्चलों में तो यह अनिवार्य जैसा ही था। श्रीमहाराजजी अब 17 वर्ष के हो गये थे। अतएव उनके माता-पिता ने उनके विवाह के लिये प्रयास प्रारम्भ कर दिये। श्रीमहाराज जी उस समय अपने कर्तव्य के अनुसार विद्याध्ययन में संलग्न थे। इसके साथ ही उनकी चित्तवृत्ति अध्यात्म-मार्ग पर तीव्रता के साथ अग्रसर हो रही थी। उन्होंने परमात्म-प्राप्ति को ही अपने जीवन का ध्येय बना रखा था। ऐसी मनोदशा में उन्हें विवाह की चर्चा नहीं सुहा रही थी। इधर उनके माता-पिता समाज के प्रचलन के अनुसार उनका विवाह करना चाह रहे थे। परिवारी-जनों के अनुसार घर-गृहस्थी में रहकर ही मनुष्य को अपने कल्याण का यत्न करना चाहिये; प्राय: यही ऋषि-मुनियों की परम्परा रही है। जबकि श्रीमहाराज जी के अन्त:करण में भगवत्प्राप्ति के मार्ग पर चलने की उमंगें हिलोर ले रही थीं और उन्हें वैवाहिक-जीवन इसमें बाधक प्रतीत हो रहा था। उनके जीवन-परिचय की प्रथम लेखिका श्रीद्रोपदी बहन जी ने इस घटना-क्रम को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है—

"सत्य दर्शन की लालसा आपको गौतम बुद्ध के समान दिनों-दिन उदासीनता की ओर ले जा रही थी। अत: आप विवाह करने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु माता-पिता के संतोष एवं सुख के लिये अपनी भावना

को दबाकर अपनी इच्छा के विरुद्ध आपने इस दाम्पत्य बन्धन को स्वीकार किया। इससे आपकी मातृ-पितृ भक्ति का भी पता चलता है। इस गृहस्थ जीवन में बाँधने में आपकी एक माँग अवश्य थी कि आपकी जीवन-संगिनी ऐसी हो जो आपकी यात्रा में पूर्णरूपेण सहयोगी हो, किसी भी प्रकार से बाधक न हो।

'जो इच्छा करिहौं मन माहीं, हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।'

ऐसा ही आपके लिये हुआ आपकी इच्छानुकूल ही आपका जीवन साथी मिल गया।"

'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव' के वैदिक आदर्श को चरितार्थ करते हुए, श्रीमहाराजजी ने अपने आग्रह को छोड़कर, माता-पिता की प्रसन्नता के लिये विवाह करना स्वीकार कर लिया। श्रीभगवत्कृपा से आपकी जीवन-संगिनी, जैसा कि आप चाहते थे, अध्यात्म मार्ग में सहायक सिद्ध हुई।

रेवाड़ी शहर से लगभग 16 किमी. दूर बावल चौरासी नामक ग्राम है। बावल रेवाड़ी जिले की एक तहसील है। आस-पास के चौरासी गाँवों के समूह में प्रधान होने से इसे बावल चौरासी कहते हैं। इस ग्राम में श्रीनिरञ्जनलाल जी नामक एक प्रभावशाली विप्र रहा करते थे। उनकी पत्नी का नाम श्रीमती हरिप्यारी था। निरञ्जनलाल जी पुलिस विभाग में थानेदार के पद पर थे। उनकी पुत्री श्रीकमलादेवी से महाराज जी का विवाह सम्बन्ध निश्चित हुआ। निरञ्जनलाल जी के एक पुत्र भी पुलिस में थे तथा अतिरिक्त समय वे उस ब्रिटिश शासन काल में अंग्रेजों के बच्चों को पढ़ाया करते थे।

ई. सन् 1922 में श्रीदुर्गाप्रसाद जी चतुर्वेदी तथा श्रीकमला देवी का विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के समय श्रीमहाराजजी की आयु 17 वर्ष तथा श्रीकमला देवी की आयु 13 वर्ष थी। उस युग में विवाह का सम्पूर्ण कार्यक्रम कई दिनों का होता था। नन्दरामपुर बास गाँव से आई हुई बारात बावल चौरासी में 7 दिनों तक रुकी।

द्विरागमन (गौना)

प्राचीन काल में बाल-विवाह का प्रचलन होने से द्विरागमन (गौना) का अधिक महत्त्व था। यह विधि किसी न किसी रूप में आज भी प्रचलित है किन्तु अब बाल-विवाह न होने से इस विधि की मात्र औपचारिकता कर ली जाती है। श्रीमहाराजजी व कमलादेवी के विवाह के 3-4 वर्ष बाद द्विरागमन की विधि सम्पन्न हुई। श्रीमती कमलादेवी ने पति गृह में आकर अपने सुसंस्कारों के प्रभाव से वहाँ के समस्त दायित्वों को भली-भाँति सँभाल लिया। वे शान्त स्वभाव की एवं सेवा-परायणा एक आदर्श गृहिणी थीं। गृहकार्यों में कुशलता तथा परिवार के सभी छोटे-बड़े सदस्यों का यथायोग्य सम्मान आदि अनेक गुण उनमें विद्यमान थे। जैसा कि पूर्व में कहा गया है अपने पति की धर्म-साधना में वे सदैव सहायक ही रहीं। इसके परिणामस्वरूप श्रीमहाराजजी अपने परमार्थ-पथ पर पूर्व के समान ही निर्विघ्न रूप से अग्रसर रहे। गृहस्थ धर्म का अनासक्तिपूर्वक समुचित पालन करते हुए तत्परता से सत्य की खोज में लगे रहना– यही आपका आदर्श था जिसका आपने पूर्णरूप से आजीवन निर्वाह किया।

रेलवे विभाग में नियुक्ति

जैसा कि पूर्व में कहा गया है श्रीमहाराजजी का विद्याध्ययन 12वीं कक्षा तक अवश्य हुआ होगा। इस अनुमान के पीछे जो हेतु हैं उनका उल्लेख भी वहाँ किया गया है। अध्ययन पूर्ण होने के कुछ समय पश्चात् रेलवे विभाग में उनकी नौकरी लगी। ऐसा अनुमान होता है कि वे क्लर्क के पद पर कार्यरत थे। रेलवे की नौकरी की यह अवधि उनके लिये संघर्षकारी ही सिद्ध हुई। इसका एकमात्र कारण रेलवे विभाग का भीतरी वातावरण था जो भ्रष्टाचार से भरा हुआ था। एक ओर श्रीमहाराजजी की सत्य एवं निश्छल व्यवहार वाली जीवन-शैली, दूसरी ओर था सरकारी विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार। इस परिस्थिति का वर्णन करते हुए श्रीद्रोपदी बहन जी ने लिखा है–

"श्रीगुरुदेव रेलवे विभाग में कार्य करते हुए भी उसके वातावरण से प्रभावित न हुए। आप इसको 'चोर महकमा' के नाम से पुकारते थे। अत: वहाँ आपका मन कार्य करने में नहीं लगा। जहाँ सत्य का अपमान पग-पग पर होता था वहाँ आप अधिक समय तक अपने को न टिका सके। अत: चौबीस घंटे का नोटिस देकर वहाँ त्याग पत्र दे दिया और सर्विस से मुक्ति प्राप्त कर ली।"

सत्यनिष्ठा सर्वोपरि

सत्य निष्ठा का श्रीमहाराजजी के जीवनादर्शों में सर्वोपरि स्थान था। उनकी दृष्टि में उनके परमाराध्य श्रीकृष्ण स्वयं सत्य के स्वरूप थे और उनकी प्राप्ति का उपाय भी सत्य ही था। सदाचार, सत्यभाषण तथा मन और इन्द्रियों की प्रत्येक क्रिया सदा-सर्वदा सत्य से पवित्र हो—यह श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिये अनिवार्य है। इस प्रकार की सुदृढ़ निष्ठा श्रीमहाराजजी के अन्त:करण में थी अत: रेलवे विभाग की नौकरी वे अधिक समय तक नहीं कर पाए। वे अपने उपदेशों में कहा करते थे—"अफीमची का जीवन जिस प्रकार अफीम है, सत्संगी का जीवन उसी प्रकार सत्य बन जाय। सत्य से हटते ही प्राण छटपटाने लगें तो बेड़ा पार है।"

श्रीमहाराज जी के इन वाक्यों से स्पष्ट है कि सत्य से उनका नाता जल-मीन जैसा था। रेलवे विभाग में चारों ओर असत्य व्यवहार के कारण नौकरी छोड़ने के अतिरिक्त उनके समक्ष कोई मार्ग नहीं था, इसलिये उन्होंने अपने अधिकारी को त्यागपत्र सौंप दिया। इसके साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वे मात्र 24 घंटे ही अपना कार्यभार सँभाल पायेंगे अर्थात् 24 घंटे में ही उनसे चार्ज लेकर उन्हें कार्यमुक्त कर दिया जाय। 24 घंटे के नोटिस से पता चलता है कि वे असत्य आचरण के बीच एक क्षण भी नहीं रहना चाहते थे। दूसरे अधिकारी को अपना कार्यभार सौंपने में कम से कम 24 घंटे की अवधि अपेक्षित थी इसलिये उन्होंने विभाग को यह नोटिस दिया।

नौकरी से त्याग पत्र

अंग्रेजी शासनकाल में उच्च अधिकारी के पदों पर अंग्रेजों की ही नियुक्ति होती थी। श्रीमहाराजजी जिस रेलवे कार्यालय में कार्यरत थे वहाँ का अधिकारी भी अंग्रेज था। उसे जब पता चला कि मात्र एक वर्ष नौकरी करके श्रीमहाराजजी ने त्याग पत्र दे दिया है तो उसने उन्हें बुलाया और कहा—इस्तीफा देने पर पुनर्विचार कर लीजिये। उसका आशय यह था कि सरकारी नौकरी आसानी से नहीं मिलती, इसे छोड़ने पर आपको किसी दूसरी नौकरी अथवा अन्य रोजगार के लिये प्रयास करना पड़ेगा इसलिये एक बार अच्छी तरह विचार कर लें। अंग्रेज अधिकारी की बात सुनकर श्रीमहाराजजी ने जो उत्तर दिया वह अत्यन्त गूढ़ एवं सारगर्भित था। उन्होंने कहा—मुझे दूसरा काम मिल गया है इसलिये मैं यहाँ से त्यागपत्र दे रहा हूँ। उनके इस उत्तर को वह अधिकारी भला कैसे समझ पाता? उसने सोचा होगा कहीं दूसरी जगह नौकरी लग रही है इसलिये यहाँ से जाना चाहते हैं। श्रीमहाराजजी के वाक्य का सही अर्थ तो वह समझ सकता है जिसके जीवन का लक्ष्य केवल भगवत्प्राप्ति है। इस वाक्य का आशय यह है कि श्रीकृष्ण प्राप्ति ही जीवन का वास्तविक काम है जिसे जीव अनादिकाल से भूला हुआ है। सत्संग के माध्यम से जब उसका पता चल गया तो अर्थोपार्जन का प्रलोभन छोड़कर केवल उसी काम में लगना चाहिये। इसी में मानव जीवन की सार्थकता है।

नौकरी छोड़कर श्रीमहाराजजी अपने गाँव आ गये। 22 वर्ष की आयु में अर्थात् ई.सन् 1928 में उनकी नौकरी लगी और एक वर्ष बाद ही ई.सन् 1929 में उन्होंने इस्तीफा दे दिया।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उस युग में भ्रष्टाचार बहुत कम था। लोग झूठ बोलने से डरते थे, उसे बुरा समझते थे। जन-सामान्य का नैतिक स्तर आज की तुलना में ऊँचा था। ब्रिटिश शासन काल में आज की अपेक्षा सख्ती भी अधिक थी। इन कारणों से सरकारी विभागों में झूठ का उतना बोला बाला नहीं था, जितना कि आज दिखाई देता है। उस समय के कम भ्रष्टाचार में भी

ज्योतिषी जी से साक्षात्कार

जिस क्षेत्र में महाराजजी का निवास था वहाँ एक ज्योतिषी रहा करते थे। वे जो भविष्य बताते वह प्रायः सच निकलता। इस प्रकार उस अञ्चल में उनकी ख्याति दिनों-दिन बढ़ती ही चली गई। उन ज्योतिषी के यहाँ लोगों की भीड़ जमा रहती। एक दूसरे से उनका यश सुनकर नये लोग वहाँ आते रहते। श्रीमहाराजजी को भी उनसे मिलने की प्रेरणा हुई। उन्हें ज्योतिषी से कोई सांसारिक उपलब्धि के विषय में चर्चा नहीं करनी थी क्योंकि यहाँ के भोग और ऐश्वर्य उनकी दृष्टि में महत्त्वहीन थे। वे तो सदैव परमात्म प्राप्ति के बारे में सोचा करते थे और उनकी दृष्टि में एकमात्र वही आवश्यक कार्य था। इस लक्ष्य प्राप्ति की प्रेरणा से श्रीमहाराजजी उस ज्योतिषी के पास गये। यद्यपि वहाँ भीड़ बनी रहती थी इसीलिये उनसे मिलना उतना सहज नहीं था किन्तु श्रीमहाराजजी को किसी प्रकार अवसर प्राप्त हो गया। उन्होंने ज्योतिषी से प्रश्न पूछा कि मेरी आयु कितनी है? ज्योतिषी ने गणना आदि करके उत्तर दिया कि आपकी कुल आयु 39 वर्ष 10 महिने और 9 दिन है।

यथार्थ भविष्य बताने के लिये ज्योतिषी की ख्याति थी ही अतः आपको उनके कथन पर किसी प्रकार का संशय नहीं हुआ। इस विश्वास का एक कारण यह भी था कि श्रीमहाराजजी शुद्ध अन्तःकरण वाले और सरल चित्त थे। **सरल व्यक्ति में विश्वास की मात्रा अधिक होती है।** जब तक कोई ठोस कारण न हो तब तक वह किसी पर संशय नहीं करता और कई बार तो पर्याप्त कारण होने पर भी संशय नहीं करता। इसलिये श्रीमहाराजजी को ज्योतिषी की बात पर निश्छल विश्वास हो गया।

ज्योतिष का प्रभाव

अपनी अल्पायु के विषय में जानकर आपका चित्त उसी समय सब ओर से उपराम हो गया। जीवन का लक्ष्य एकमात्र श्रीकृष्ण-मिलन है। यह उपलब्धि सुगम नहीं अपितु दुर्लभातिदुर्लभ है। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, सिद्ध,

साधक कठोर तप, यम-नियम, ध्यान तथा अन्य साधन करके भी श्रीकृष्ण की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं। इस कलिकाल में तो यह और भी दुर्लभ है, क्योंकि इस समय कुछ भी शुद्ध नहीं है, अन्न-जल, वायु-वातावरण आदि सब कुछ नाना प्रकार की अशुद्धियों से ग्रसित है। मन-बुद्धि तथा इन्द्रियों में भी पूर्वकाल जैसी पवित्रता तथा बल नहीं है, फिर मनुष्य की आयु भी पहले की तुलना में बहुत कम है। अब जबकि ये कुशल ज्योतिषी आयु को 40 वर्ष से कुछ कम ही बता रहे हैं, ऐसी स्थिति में जीवन का प्रत्येक क्षण बहुमूल्यवान् है। हर क्षण का उपयोग अब केवल श्रीकृष्ण के प्रेम-पथ पर चलने में ही होना चाहिये। अन्य कार्यों के लिये हमारे पास अब एक क्षण का भी समय नहीं है।

उन ज्योतिषी के पास से लौटने पर ऐसे कितने ही विचार श्रीमहाराजजी के मानस-पटल पर निरन्तर उभरते रहे। इनके परिणाम स्वरूप बालपन से वीतरागी उनके चित्त को जगत् की प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, कार्य तथा प्रत्येक उपलब्धि सारहीन प्रतीत होने लगी। उनकी दृष्टि में सब ओर असारता ही थी। वे जो देखते, सुनते, कार्य करते सभी कुछ उनके लिये सारहीन ही था। किसी कार्य में अब उनका मन नहीं लगता। किसी लाभ के लिये उनके मन में कोई स्पृहा नहीं थी तथा हानि का खेद भी नहीं था। श्रीकृष्ण दर्शन ही अब एक मात्र लाभ था। उनकी प्राप्ति न होना ही अब एक मात्र महान् हानि थी।

वस्तुतः विचार करके देखा जाए तो ज्योतिषी ने जो अल्पायु होने का फलादेश श्रीमहाराज जी को किया वह एक सार्वभौम सत्य है। जगत् की क्षणभंगुरता का भी यही तात्पर्य है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु तथा व्यक्ति क्षणभंगुर है। मानव की पूर्णआयु 100 वर्ष की मानी गई है किन्तु इस आयु-रेखा तक विरले ही पहुँच पाते हैं। उसमें भी आधी आयु रात्रि के घोर अन्धकार में निद्रा लेने में ही बीत जाती है। शेष समय की अबोध बाल्यावस्था की समयावधि को आयु गणना में लेना ही नहीं चाहिये। बीच की आयु प्रपञ्च कार्यों में तथा भोग एवं ऐश्वर्य के साधन जुटाने में और उनका सुख लेने में बीत जाती है।

वृद्धावस्था की अवधि जो रोग एवं अशक्तता में गुजरती है इसलिये उसे व्यक्ति की आयु का उत्तम काल नहीं कहा जा सकता। आयु का यह विवरण भी तब लागू होता है जब व्यक्ति वृद्धावस्था तक जी सके, क्योंकि कितने ही लोग बाल्यकाल में तथा युवावस्था में ही परलोकगामी हो जाते हैं। इन कारणों पर विचार करके देखा जाये तो प्रत्येक व्यक्ति अल्पायु ही है यही उसके जीवन का सम्पूर्ण सत्य है किन्तु हमारी आसक्ति और स्पृहा हमें इस उजागर तथ्य को देखने नहीं देती। ऐसा अज्ञान का पर्दा हमारे अन्त:चक्षुओं पर पड़ जाता है कि हम क्षणभंगुर जीवन को दीर्घकालिक मान कर उन्मत्त बने रहते हैं। सन्त श्रीध्रुवदासजी ने कहा है–

दोहा : विषया जल में मीन मन, करत कलोल अज्ञान।
नहीं जानत ढिंग काल बक, रह्यौ ताक धरि ध्यान॥

विषयों के जल में हमारा मन रूपी मीन क्रीड़ा करता रहता है वो यह नहीं जान पाता कि निकट ही कालरूपी बगुला ध्यान लगा कर बैठा हमारी बाट जोह रहा है।

श्रीमहाराजजी ने सत्संग और साधना का आश्रय प्रारम्भ से ही ले रखा था। सामान्य मनुष्य की भाँति नश्वर संसार में न उनकी आसक्ति थी और न ही वे उसे अजर-अमर मानते थे। ऐसी उपयुक्त मनोभूमि होने से उन पर ज्योतिषी की बात का तत्काल और सीधा प्रभाव पड़ा। यदि उनके स्थान पर किसी अन्य को यह कहा गया होता तो उसे कुछ देर के लिये दु:ख और चिन्ता तो होती ही किन्तु फिर उसकी वही दशा हो जाती जो ऊपर उद्धृत दोहा में बताई गई है। गीली दिया सलाई कितनी ही बार माचिस पर रगड़ी जाये उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित होना कठिन है परन्तु सूखी दिया सलाई एक ही बार में जल उठती है। इसी प्रकार श्रीमहाराजजी ज्योतिषी से अपने अल्पायु होने का संकेत पाकर सर्वथा शान्त एवं सब ओर से उदासीन हो गये। अपनी उस समय की मन:स्थिति का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था– "एक बार एक बहुत अच्छे ज्योतिषी से का मिलना हुआ। बड़ी प्रशंसा सुनी थी उनकी। लोगों का जमघट जमा

रहता। हम भी किसी प्रकार पहुँच गये। अपनी-अपनी भावना कोई पूछे। हमने पूछा अपनी आयु के सम्बन्ध में तो उन्होंने 39 साल 10 महीने 9 दिन बताई। सुनते ही तत्काल सब से मन हट गया और यह चिन्ता हो गई कि इसी समय में ही काम बना लेना चाहिये। काम सब होते पर कुछ नहीं होता। सब कुछ सारहीन हो गया।"

श्रीभगवत्कृपा से ही महाराजजी का ज्योतिषी से मिलन हुआ। करुणावरुणालय श्रीभगवान् की असीम कृपा ही साधक का सब प्रकार से योग-क्षेम निर्वाह करती है। यहाँ योग से तात्पर्य है साधक का ऐसे व्यक्ति, वस्तु तथा परिस्थिति से मिलन करवाना जो उसके मार्ग में उन्नति का हेतु हो तथा क्षेम का अर्थ है उसकी साधन-सम्पदा को सब ओर से सुरक्षा प्रदान करना। श्रीकृष्ण-कृपा के इसी योगक्षेम विधान के अन्तर्गत उनका ज्योतिषी के पास जाना हुआ और उसके पश्चात् ऐसी मनोदशा बनी।

गृहत्याग

श्रीमहाराज जी का ध्यान सब ओर से हट चुका था। अपने आप को श्रीकृष्ण प्राप्ति के पथ पर पूर्णरूपेण समर्पित करने के लिये उन्होंने श्रीवृन्दावन में वास करने का निश्चय किया। श्रीधाम वृन्दावन श्रीकृष्ण का नित्य चिन्मय धाम है। यह उनकी परम पावन लीला भूमि है जिस प्रकार श्रीकृष्ण काल के प्रभाव से परे हैं, उसी प्रकार उनका धाम भी कालातीत है। महाप्रलय में सृष्टि के समाप्त होने पर भी श्रीवृन्दावन यथावत् विराजमान रहता है। जगत् संहार की हलचल का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अपने नित्य धाम वृन्दावन में श्रीकृष्ण निरन्तर निवास करते हैं। वे इससे बाहर एक क्षण के लिये भी नहीं जाते। उनका यहाँ सदा से निवास था और सदैव ही रहेगा।

उपर्युक्त घटनाक्रम के तत्काल पश्चात् श्रीमहाराज जी ने वृन्दावन में स्थायी रूप से बसने के विचार से प्रस्थान किया। इसके पीछे उनका लक्ष्य

एक मात्र श्रीकृष्ण प्राप्ति था। उनके वृन्दावन आगमन के समय उनका क्या परिदृश्य था यह ठीक से ज्ञात नहीं हो सका। उनके ज्येष्ठ भ्राता श्रीमातादीन जी तब तक डाक विभाग में नौकरी करने लगे थे यह प्रायः निश्चित है। वे बाद में कई वर्षों तक चौमू (राज.) में कार्यरत रहे किन्तु श्रीमहाराजजी के गृहत्याग के समय उनकी नियुक्ति कहाँ थी इसकी जानकारी प्राप्त नहीं है। श्रीमहाराज जी के माता-पिता उस समय तक विद्यमान थे अथवा परलोकवासी हो चुके थे— ये भी निश्चित नहीं कहा जा सकता। उनके पिता श्रीप्रभुदयालजी के पास प्रचुर चल-अचल सम्पत्ति थी। श्रीमहाराज जी ने गृहत्याग के समय उसमें से कुछ भी लेने की इच्छा नहीं की। वृन्दावन आने के पश्चात् भी उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति की कोई स्पृहा नहीं की।

श्रीधाम वृन्दावन में स्थाई निवास

श्रीमहाराज जी अपने आराध्य नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के आश्रय को दृढ़ता से हृदय में धारण कर निष्किंचन भाव से वृन्दावन आ गये। उनके आगमन का निश्चित समय नहीं बताया जा सकता, किन्तु यह निश्चित है कि उनका वृन्दावन-वास ई.सन् 1936 के पूर्व प्रारम्भ हो चुका था। अनुमान का अवलम्बन लेने पर यह समय ई.सन् 1934 के लगभग निर्धारित होता है। इस समयावधि में श्रीदुर्गाप्रसाद जी चतुर्वेदी अपनी सहधर्मिणी श्रीमती कमलादेवी के साथ नन्दरामपुर बास गाँव से स्थायी निवास हेतु श्रीधाम वृन्दावन आ गये।

ऊपर उल्लिखित विषयों की ठीक जानकारी इसलिये प्राप्त नहीं होती क्योंकि श्रीमहाराजजी अपने विषय में कम ही चर्चा करते थे। वस्तुतः **यह आत्मसंगोपन शीलता सभी संतों के स्वभाव में होती है। अपनी अतीत या भविष्य से जुड़ी बातें कहने में उनकी कोई रुचि नहीं होती है।** उनको भगवत् चर्चा ही प्रिय होती है और वे श्रद्धालुओं के समक्ष वही करना पसन्द करते हैं। श्रीमहाराजजी को देखने वाले कई भक्तजन अभी विद्यमान हैं, परिवार में उनके दो पौत्र भी वृन्दावन में हैं तथापि गृहत्याग के समय की ये

बातें पता नहीं चलतीं क्योंकि अपने को प्रकाशित करने में उनकी कोई रुचि नहीं थी अपितु वे प्रयासपूर्वक अपने को छिपाये रहते थे। वस्तुतः **सन्त का यथार्थ परिचय उसकी भगवद् निष्ठा तथा आध्यात्मिक उपलब्धियाँ होती हैं और यही उसका वास्तविक जीवन-चरित्र होता है।**

श्रीमहाराजजी को वृन्दावन में सर्वप्रथम टोपी कुंज के निकट एक छोटा सा भवन किराये पर मिला, जिसमें वे सन्तोषपूर्वक निवास करने लगे। उनकी सहधर्मिणी श्रीमती कमला देवी गृहकार्यों में कुशल तथा पतिपरायणा थीं। उन्होंने दक्षतापूर्वक समस्त गृहकार्यों को शीघ्र ही सुयोजित कर लिया। श्रीमहाराजजी को वृन्दावन-वास की प्रारम्भिक अवधि में अनेक प्रकार ही विपत्तियों को झेलना पड़ा। इसका संक्षिप्त उल्लेख करते हुए श्रीद्रोपदी बहन जी ने लिखा है— **"श्रीगुरुदेव ने सत्य दर्शन की लालसा से जब श्रीवृन्दावन धाम में रहने का निश्चय कर लिया तब उनकी परीक्षा भी प्रभु द्वारा होनी आरम्भ हो गई। आँधी में वृक्ष हिला करते हैं, पर्वत नहीं। जिनके जीवन का कुछ लक्ष्य होता है उन्हें कोई रोक नहीं सकता। संसार के आँधी तूफानों के थपेड़े टकराकर चूर हो जाते हैं, शान्त हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार आपके जीवन में भी विपत्तियों के अपार तूफान आये। आत्मीयजन शत्रुता करने लगे। अनेक प्रकार से अकारण ही अपमानित करना, कष्ट पहुँचाना उन लोगों का काम हो गया।"**

जैसा कि द्रोपदी बहन जी ने लिखा है—**"आँधी में वृक्ष हिला करते हैं पर्वत नहीं"** उसी प्रकार श्रीमहाराज जी ही इन परिस्थितियों में पर्वत के समान अविचल बने रहे। उन्हें ये विषमतायें किञ्चित् भी क्षुब्ध नहीं कर पाईं। दुर्व्यवहार होने पर सामान्य व्यक्ति हृदय में दुःख तथा अशान्ति का अनुभव कर खिन्न हो जाता है, फिर रोषपूर्वक दुर्व्यवहार करने वाले का वचनों से तथा क्रियाओं के द्वारा प्रतिकार करता है, इसे ही प्रतिशोध कहा जाता है। इसका मूल हृदय में होने वाला क्षोभ है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति प्रतिशोध में प्रवृत्त होता है। किन्तु श्रीमहाराज जी को ये प्रसंग क्षुब्ध नहीं कर सके,

इसलिये उनके मन की शांति भी इनसे प्रभावित नहीं हुई। इसका एकमात्र कारण यह था कि उनकी दृष्टि तो केवल सत्यस्वरूप श्रीकृष्ण की प्राप्ति पर ही टिकी हुई थी। लक्ष्य प्राप्ति की दृढ़ता ने उन्हें इस व्यावहारिक विषमता को देखने ही नहीं दिया। उनका सम्पूर्ण ध्यान अपने प्राण प्रियतम श्रीकृष्ण की ओर था जिनके लिये वे श्रीधाम वृन्दावन में आये थे।

श्रीमहाराजजी अपने उपदेशों में कहा करते थे कि निन्दा, अपमान, तिरस्कार आदि को भक्त अपने प्रभु का प्रसाद मानकर सुख का अनुभव करता है। उनके वाक्य हैं– "यह सब उस मंगलमय प्रियतम का मंगल प्रसाद है। प्रियतम के प्रसाद को पाकर क्या प्रेमी दुःखी होगा? अरे नहीं! यही तो उसकी चाह है। प्रसाद पाकर ही वह सुखी होता है, सुख का अनुभव करता है। वह प्रसाद को अच्छा-बुरा नहीं कहता। रोग का, क्लेश का, निंदा का, अपमान का, तिरस्कार का, सभी का प्रेम से आलिंगन करता है। यह मेरे प्रियतम का प्रसाद है। ऐसी स्थिति में क्या उसे दुःख हो सकेगा? अरे नहीं भाई! उसके लिए भला दुःख! दुःख सुख हो जाता है।"

सत्य की खोज

श्रीवृन्दावन में आकर श्रीमहाराजजी पूरी तत्परता से सत्य के अन्वेषण में लग गये। सत्य वह है जिसका कभी अभाव नहीं होता। गीता में सत्य की यही परिभाषा दी हुई है– 'नाभावो', वह सत्य तत्त्व स्वयं श्रीकृष्ण हैं। उन्हीं की प्राप्ति श्रीमहाराजजी का एकमात्र लक्ष्य था। उनके चित्त में केवल यही अभिलाषा थी कि वे जगदाधार प्रभु मुझे शीघ्र प्राप्त हों, जिनकी सत्ता से यह जगत् सत्तावान् हो रहा है, जो इसके रचयिता हैं और इसके कण-कण में विद्यमान हैं। मैं भी उन्हीं का सनातन अंश हूँ तथा मेरा वास्तविक और स्वाभाविक सम्बन्ध केवल उन्हीं से है। मैं और मेरा कहा जाने वाला सब कुछ केवल उन्हीं का है, उनके सुख के लिये है और उनकी ही सेवा के लिये है।

भक्ति के सुप्रसिद्ध पाँच भावों में से इसे ही दास्य भाव कहा जाता है। श्रीकृष्ण मेरे स्वामी हैं, मैं उनका सेवक हूँ। उनकी सेवा ही मेरा धर्म है, मेरा स्वभाव है और मेरा स्वरूप है। सेवा का यह विलक्षण भाव ही दास्य भाव का आधार है। इसमें अपने स्वामी को कैंकर्य के द्वारा सर्वतोभावेन प्रसन्न करना ही एकमात्र लक्ष्य है। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में इस स्वामी-सेवक भाव को विशद् रूप से समझाने के लिये शेष-शेषी सम्बन्ध भी कहा गया है। शेष वह है जो स्वरूपतः और स्वभावतः किसी दूसरे के लिये है। वह जिसके लिये है उसे शेषी कहा जाता है। शेष-शेषी सम्बन्ध सेवक-स्वामी सम्बन्ध का ही दार्शनिक व्याख्यान है। शेष जड़ वस्तु भी हो सकती है और चेतन जीवात्मा भी। जब शेषत्व धर्म चेतन में प्रकट होगा तो उसे दास कहा जायेगा। श्रीमहाराजजी की आराधना इसी दास्य भाव की थी।

श्रीभरत चरित्र का अवलम्बन

इस अवधि में उन्होंने अपने भाव को पुष्ट करने के लिये श्रीरामचरितमानस में वर्णित श्रीभरतजी के भाव से प्रेरणा ग्रहण की। भरतजी ने अपने स्वामी श्रीसीतारामजी की सेवा और उनके सुख विधान को ही अपना सर्वस्व माना। वनवास प्रसंग में अपने भाव के अनुरूप प्रभु की सेवा न कर पाने के कारण तथा वनवास की तपः पूर्ण अवधि में श्रीसीताराम जी के सुख में बाधा होगी ऐसा विचार कर भरतजी को मर्माहत पीड़ा हुई। इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन श्रीरामचरितमानस में प्राप्त होता है। कुछ पंक्तिया उद्धृत की जाती हैं–

नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धर्म धुर धीरा॥
जटाजूट सिर मुनि पट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दशरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेंहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चम्पक बागा॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

दोहा : नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राजकाज बहु भाँति॥

वनवास की अवधि में अपने स्वामी के समान ही भरतजी ने भी 14 वर्षों तक राजोचित व्यंजनों का आहार न करके कन्दमूल-फल का ही आहार किया। इस अवधि में भगवान् श्रीसीतारामजी कुश से बनी हुई चटाई पर भूमि शयन करते रहे, तदनुसार श्रीभरतजी ने भी राजमहलों की कोमल शैया त्यागकर भूमिशयन ही किया वह भी गुफा में रहकर, कुश की चटाई पर। श्रीमहाराजजी भरत जी के इस भाव से भावित रहा करते थे। दास भाव की यह मार्मिक छटा उन्हें अन्तरतम से प्रभावित किए हुए थी। भरत जी के इस भाव का अनुसरण कर वे भी भूमिशयन करते थे तथा तपश्चर्यापूर्ण जीवन शैली से रहते थे।

इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि में राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं था। श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक होते हुए भी वे यदुवर-रघुवर में अभेद मानते थे। भक्ति-मार्ग के साधक को अपनी उपासना की पुष्टि के लिये किसी भी पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा आधुनिककाल के भक्त को आदर्श मानकर उसके भाव का अनुसरण करना अतीव लाभकारी है। यह शिक्षा भी हमें इस प्रसंग से प्राप्त होती है।

श्रीवृन्दावन में आने के पश्चात् श्रीमहाराजजी ने गुजर-बसर के लिए कोई उद्योग नहीं किया। आगे चल कर उन्होंने कुछ समय के लिए किसी पाठशाला में अध्यापक का काम किया, ऐसा ज्ञात होता है। वहाँ के विद्यार्थी श्रीमहाराज जी से अत्यन्त प्रसन्न थे और उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। क्लास में उनके आने से पूर्व वे विद्यार्थी श्रीकृष्ण के चित्रपट को अनायास प्राप्त पत्र-पुष्पों से सुसज्जित करके वहाँ विराजमान कर देते और अगरबत्ती जला देते। इसके पीछे उनका लक्ष्य होता अपने अध्यापक श्रीमहाराजजी को प्रसन्न करना। वे जानते थे कि ये अध्यापक श्रीकृष्ण के परम भक्त हैं अतएव

श्रीकृष्ण छवि का दर्शन करके सहज ही प्रसन्न हो जाएंगे। यह अध्यापन का कार्य किस अवधि में और किस पाठशाला में किया यह ज्ञात नहीं हो सका। किन्तु यह निश्चित है कि इसे उन्होंने थोड़े ही समय के लिए किया था।

श्रीमहाराज जी की सहधर्मिणी श्रीमती कमला देवी अपेक्षाकृत धनाढ्य परिवार की थी। उन्हें विवाह में दहेज के रूप में प्रचुर स्वर्णाभूषण प्राप्त हुए थे। उन्हें आवश्यकतानुसार क्रमशः बेचकर श्रीमहाराजजी एवं कमला देवी अपना घर खर्च चलाया करते थे। अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं से अधिक धनोपार्जन करने की श्रीमहाराज में कोई चाह नहीं थी।

वंश वृद्धि

आगे चलकर उनके परिवार का थोड़ा विस्तार हुआ। उनके प्रथम पुत्र श्रीभगवतशरण चतुर्वेदी का जन्म वृन्दावन आने के 2-3 साल बाद हुआ। इसके कई वर्ष पश्चात् छोटे पुत्र श्रीगोविन्दशरण का जन्म हुआ। परिवार का विस्तार होने पर भी श्रीमहाराजजी में धनोपार्जन को लेकर कोई उत्साह नहीं था। पूर्व में बताया जा चुका है कि उनकी शिक्षा कम से कम बारहवीं कक्षा तक अवश्य थी। उन्हें अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान था। सरकारी और प्राइवेट नौकरियों की जो कमी आज देखी जाती है वैसी उस समय प्रायः नहीं थी। इसके कई कारण हो सकते हैं किन्तु जनसंख्या कम होना इनमें प्रधान कारण है। ऐसी स्थिति में वृन्दावन आने के पश्चात् वे नौकरी के द्वारा धनोपार्जन में आसानी से सफल हो सकते थे किन्तु श्रीमहाराजजी की चित्त-वृत्ति अपने आराध्य की प्राप्ति और उसके लिए साधन करने में ही लगी हुई थी। ऐसी मनोदशा में धनोपार्जन के लिए कोई नियमित उद्योग कर पाना संभव नहीं था। स्वर्णाभूषणों को बेचकर जीविका चलाने की जो बात ऊपर कही गयी वह भी उनके निर्वाह की एक बाहरी स्थूल रूपरेखा मात्र ही है। वस्तुतः अपने जीवन निर्वाह के लिए वे पूर्णतः श्रीभगवान् की योगक्षेम व्यवस्था पर ही निर्भर थे। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

—गीता 9.22

अर्थात् जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का योगक्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा) मैं स्वयं वहन करता हूँ।

योग का अर्थ है अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम का अर्थ है प्राप्त की रक्षा। श्रीभगवान् अपने प्रेमी भक्तों का योगक्षेम स्वयं वहन करते हैं अर्थात् उनके लिए आवश्यक वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति को यथा समय उन्हें उपलब्ध करा देते हैं एवं भक्तों के आवश्यक संसाधनों का रक्षण भी वे ही करते हैं। भक्तवत्सल प्रभु का यह योग क्षेम विधान ही श्रीमहाराजजी की गृहस्थी का प्रधान अवलम्बन था।

साधना तथा सत्संग की प्रधानता

श्रीमहाराजजी के वृन्दावन वास की रहनी में साधना और सत्संग की प्रधानता थी। किन्हीं सन्त के विषय में कोई जानकारी प्राप्त होती तो आप तत्काल उनके दर्शन के लिये जाते। सन्तों की सेवा, उनके दर्शन तथा उनके वचनामृतों का श्रवण यह आपका दैनिक कृत्य था। एकान्त में बैठकर श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरित मानस का नित्य पाठ करना यह आपका पूर्व से चला आ रहा अभ्यास था जो वृन्दावन वास की अवधि में भी चलता रहा। श्रीभगवन्नाम जप और ध्यान— ये आपकी अध्यात्म-साधना के मुख्य अंग थे। इस प्रकार पाठ, जप और ध्यान उनके नित्य-नियम में सम्मिलित थे। नियम-पालन को वे अतिशय महत्त्व देते थे। परमार्थ पथिक को दृढ़ता से भजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना चाहिये। वे कहा करते थे—

"नियम के नाम से आज का साधक घबड़ाता है। कारण! नियम, प्रमाद व आलस्य की छाया को भी नहीं चाहता। आज लोग कहते हैं नियम-वियम कुछ नहीं होता। नहीं मेरे भाई! यह प्रमाद की ध्वनि है। प्रेम उत्पन्न ही नियम से होता है। नियम की पराकाष्ठा ही प्रेम है। उस स्थिति में पहुँचकर प्रेम और नियम एक हो जाते हैं, नियम स्वतः ही छूट जाता है। छोड़ना नहीं पड़ता। दोनों एक रूप हो जाते हैं। अतः श्रीकृष्ण को पाने की इच्छा रखने वालों को नियम का पालन करना आवश्यक है।"

परमार्थ तत्त्व का ज्ञान किसी सन्त-सद्गुरु के वाक्यों से तथा उनके कृपा-संकल्प से ही होता है। हृदय का अनादि मोहान्धकार गुरु के उपदेश वचनों से दूर होता है। अपनी बुद्धि कौशल से उस परम सत्ता को नहीं जाना जा सकता। इसीलिये भगवत्प्राप्ति के मार्ग में आने पर सर्व प्रथम साधक का कर्तव्य है कि वह श्रीगुरुचरणाश्रय को प्राप्त करे। वेद भगवान् की आज्ञा है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत:।

—कठोपनिषद् 1.3.14

अर्थात् हे मानव! मोह निद्रा से जागो, विषयशय्या से उठो, तत्त्ववेत्ता महापुरुषों को प्राप्त करके उनसे परमार्थ तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करो।

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान प्राप्ति के लिये गुरु की शरण में जाने का निर्देश दिया गया है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन:॥

—गीता 4.34

अर्थात् उस ज्ञान को तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ। उनको भली भांति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म-तत्त्व को भली भांति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

सद्गुरु की खोज

अध्यात्म राज्य में दूसरे का मार्ग दर्शन वही कर सकता है जो स्वयं उस मार्ग पर चला हो। अनुभव शून्य व्यक्ति द्वारा दूसरे का पथ प्रदर्शन करने से लक्ष्य तक पहुँचना कठिन हो जाता है। अतएव एक पारंगत एवं समर्थ सन्त की इस मार्ग में अति आवश्यकता है जिसके निर्देशन में साधन करते हुए क्रमशः लक्ष्य की ओर चला जा सके। श्रीमहाराजजी इसी आकांक्षा से एक कुशल पथ प्रदर्शक को पाने के लिये व्यग्र थे। उनके द्वारा की जा रही इस खोज में एक सच्चे साधक की निर्मल श्रद्धा थी किन्तु एक अविवेकी के समान अन्ध विश्वास कर लेने की प्रवृत्ति इनमें नहीं थी। उनका अन्वेषण एक तत्त्व-पिपासु का परीक्षण था जिसमें सावधानी के साथ समर्पण करने की उत्कंठा थी। सच्चे पथ-प्रदर्शक को प्राप्त करने की इस चाह में वे श्रीवृन्दावन में विचरण करते रहते। जहाँ भी किन्हीं के विषय में कुछ जानकारी मिलती वहाँ जाकर उनसे सत्संग करते तथा अपनी भीतरी पिपासा के अनुरूप एक सामर्थ्य सम्पन्न साक्षात्कारी महापुरुष की छवि को उनमें तलाशते।

श्रीवृन्दावन अनेक वैष्णव सम्प्रदायों का केन्द्र है। ये सत्सम्प्रदाय अनेक शताब्दियों से मानव जगत् का मार्ग-दर्शन कर उनका हित कर रहे हैं। सम्प्रदाय परम्पराओं में प्रायः गादी-प्रथा का चलन होता है। आचार्य के न रहने पर पर उनका पुत्र अथवा शिष्य उस गुरुगादी को अलंकृत करता है। प्रायः श्रद्धालुओं की आस्था गादी परम्परा से जुड़ी होती है इसलिये उनकी दृष्टि में आचार्य के व्यक्तित्व का महत्त्व उस गादी के कारण होता है। इस कारण अनुयायी की श्रद्धा स्वाभाविक रूप से वर्तमान आचार्य के प्रति बनी रहती है। आस्था के इस विधान में गादी पर विराजमान होने वाले की आध्यात्मिक उपलब्धियों पर श्रद्धालुओं की दृष्टि कम ही जाती है क्योंकि उनकी श्रद्धा शताब्दियों से चली आ रही आचार्य-परम्परा से जुड़ी रहती है। दूसरे शब्दों में उनका पूज्यभाव परम्परा-पीठ के कारण अधिक होता है व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य के कारण कम होता है।

श्रीमहाराजजी का इस गादी परम्परा के प्रति आकर्षण नहीं था। वे किसी आचार्य पीठ अथवा सम्प्रदाय परम्परा का वैभव, बाहुल्य तथा प्रचार देखकर उससे जुड़ने के पक्ष में नहीं थे। वे केवल सत्य के प्रति आस्थावान् थे और सत्य ही उनकी आन्तरिक आकांक्षा थी। उनकी दृष्टि में सत्य का साक्षात् स्वरूप श्रीकृष्ण थे। उनकी प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि साधक के विचार, व्यवहार तथा समस्त आचरण सत्य से परिपूर्ण हों। **मार्गदर्शक की उनकी खोज भी सत्य पर आधारित थी।** उसमें वैभव, प्रचार तथा प्रभुत्व के आकर्षण का कोई स्थान नहीं था। श्रीमहाराजजी इनसे पृथक् रहकर अपने अन्वेषण में लगे रहे। वे ऐसे सन्त-सद्गुरु को खोज रहे थे जिसके लिये परमार्थ केवल चर्चा का विषय न हो अपितु उन्होंने आन्तरिक के साथ उसे जिया हो। उनकी इस तलाश में अदम्य प्यास और विकलता थी। जैसे प्यास से व्याकुल व्यक्ति सर्वत्र पानी को ही ढूँढता है ऐसी ही उनकी खोज थी, जो अविराम गति से चलती रही।

सन्त-सद्गुरुदेव के शरणागत का मार्ग प्रशस्त

सन्त-सद्गुरुदेव अनेक प्रकार से अपने शरणागत का मार्ग प्रशस्त करते हैं। व्यवहार शैली, नीति, आहार-विहार, भीतर-बाहर की पवित्रता, रहनी-सहनी आदि अनेक विषयों में उनका बहुमूल्य मार्ग-दर्शन साधक को प्राप्त होता है। यद्यपि ये समस्त क्रियायें बाहरी प्रतीत होती हैं किन्तु ऐसा होते हुए भी इनका महत्त्व कम नहीं है क्योंकि साधक के आन्तरिक भजन को ये बाह्य क्रियायें अतिशय प्रभावित करती हैं। इन विषयों पर प्राप्त होने वाले दिशा-निर्देश से सद्गुरु की आवश्यकता तथा महिमा का बोध होता है किन्तु उनकी अनुपम कृपा का अनुभव तब विशेष रूप से होता है जब वे अपने शिष्य को उपासना के अनुरूप साधन तथा भाव प्रदान करते हैं। ये साधन एवं भाव मिलकर ही उपासना के स्वरूप का निर्माण करते हैं। इनमें साधन का अर्थ है उपाय अर्थात् भगवद् भजन। किन भजन-क्रियाओं का आश्रय लेने से

शीघ्र ही हृदय में उस परमात्म-तत्त्व का प्रकाश हो सकता है— इसका समुचित निर्देश अनुभव सम्पन्न सन्त-गुरुदेव द्वारा प्राप्त होता है।

भाव जो उपासना का प्राण ही है, उसका तात्पर्य है इष्ट से सम्बन्ध जोड़ने का प्रीति-विधान। भाव-सम्बन्धों की यह विविधता वैष्णवों के विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों में दृष्टिगोचर होती है। इनमें प्रभु की उपासना के इन पाँच प्रमुख भावों का उल्लेख मिलता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर (कान्त)। भक्ति मार्ग के साधक इन पाँच में से एक भाव का दृढ़ता से अवलम्बन लेकर इस पथ पर अग्रसर होते हैं। इन भाव-सम्बन्धों का चुनाव प्राय: साधक अपनी रुचि के अनुसार करते हैं। रुचि के निर्माण में वातावरण, सत्संग एवं पूर्व जन्मार्जित संस्कार विशेष भूमिका निभाते हैं। अनेक बार भाव का चुनाव सम्प्रदाय विशेष में प्रचलित उपासना-परम्परा के अनुसार भी होता है।

कहीं-कहीं उपासना-भाव के विषय में गुरुदेव का निर्देश भी मुख्य कारण होता है। कहने का आशय यह है कि किसी एक भाव सम्बन्ध के चुनाव के आधार रुचि, संस्कार, सम्प्रदाय परम्परा तथा श्रीगुरु का निर्देश आदि होते हैं। बहुत कम ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिनमें स्वयं श्रीप्रभु ही अपनी ओर से किसी को भाव-सम्बन्ध प्रदान करें। अध्यात्म राज्य में इस प्रकार की घटना अत्यन्त विरल ही होती है। हमारे महाराज जी परम सन्त श्रीदुर्गाप्रसाद जी चतुर्वेदी के जीवन में भी यह दुर्लभ प्रसङ्ग घटित हुआ। उन्हें परमाराध्य श्रीकृष्ण द्वारा ही ध्यानावस्था में भाव-सम्बन्ध दिया गया। इस घटना से उनकी उपासना को एक निश्चित दिशा प्राप्त हुई जिससे वे गतिपूर्वक उस ओर अग्रसर हुए। भगवत् कृपा से श्रीमहाराजजी को अनन्त श्रीसम्पन्न श्रीलल्लू बलदेव वल्लभ सखा उर्फ श्रीआनन्दशरण जी गुरु रूप में प्राप्त हुये।

ध्यानावस्था में प्रभु दर्शन

एक बार मार्गशीर्ष माह में ध्यानावस्था में दर्शन देकर स्वयं श्रीकृष्ण प्रभु ने ही अपने श्रीमुख की वाणी से आपको उपदेशामृत का पान कराया

और आदेश दिया। **"तुम मेरे प्रति सखा भाव रखो। तुम तो मेरे तोष नाम के सखा हो। तुम स्वामी भाव नहीं सखाभाव रखो।"** इससे पूर्व आपका श्रीप्रभु के प्रति स्वामी भाव था। ध्यान में ही श्रीप्रभु ने आपको श्रीगीता के अठारहवें अध्याय के पैसठवें श्लोक का उपदेश दिया कि इस प्रकार मेरी पूजा कर और मेरी शरण में आ जा।

द्रोपदी बहन जी के इन वाक्यों से श्रीमहाराजजी के परमार्थ जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना पर प्रकाश पड़ता है। यह प्रसंग तब घटित हुआ जब वे मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिये तत्परतापूर्वक किसी सन्त-सद्गुरु को खोज रहे थे। परमाराध्य श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये इस सन्देश में वह सब समाहित था जिसे प्राप्त करने के लिये श्रीमहाराजजी लालायित थे। इसमें भाव और साधन सम्बन्धी सुस्पष्ट आज्ञा प्रदान की गई थी। ध्यानावस्था की इस अनुभूति ने उनके पथ को नये प्रकाश से आलोकित कर दिया। स्वयं प्रभु द्वारा प्रदत्त यह कृपा-सन्देश था अत: इसमें न कोई दुविधा थी और न कोई संशय। श्रीकृष्ण के ये आज्ञा वचन अपने निजजन को एक आदेश तो थे ही साथ ही इसमें एक सुखद आश्वासन भी गुप्त रूप से निहित था। तुम मेरे बताये पथ पर चलकर निश्चय ही मुझे प्राप्त करोगे ऐसा एक आश्वासन भी इसमें विद्यमान था। इस कृपानुभूति ने श्रीमहाराज जी को एक नई ऊर्जा से भर दिया। उन्होंने अपने को धन्य अनुभव किया। अब वे चौगुने उत्साह से निर्दिष्ट मार्ग पर चल पड़े।

प्रभु द्वारा मंगल संदेश

जब कोई कल्याणकामी साधक सब ओर से वीतराग होकर प्रभु-प्राप्ति के पथ पर सत्यता से अग्रसर होने का प्रयत्न करता है तो जगत्-प्रपंच से परे विराजमान परमात्मा उसे कभी आकाशवाणी के द्वारा, कभी स्वप्न-दर्शन अथवा ध्यानकाल में उसकी आवश्यकतानुसार सन्देश प्रदान करते हैं। पौराणिक तथा आधुनिक काल के अनेक कथा-प्रसंगों में परम पिता परमात्मा द्वारा अपने निजजन को इस प्रकार आज्ञा-निर्देश प्रदान करने के विविध उदाहरण प्राप्त होते

हैं। श्रीरामचरितमानस में मनु-शतरूपा द्वारा तप के अवसर पर तथा श्रीमद्भागवत में नारदजी के पूर्वजन्म की कथा में आकाशवाणी के रूप में उन्हें सन्देश प्रदान करने का उल्लेख है। इसी प्रकार वे स्वप्न में अथवा ध्यानकाल में भी अपने प्रेमीभक्त को दिशा-निर्देश देते हैं, इसके अनेक उदाहरण आर्ष-साहित्य में मिलते हैं। सन्त-सद्गुरु के श्रीमुख से भक्त पर अनुग्रह करने के लिये उनकी ही वाणी प्रस्फुटित होती है। इन माध्यमों के अतिरिक्त वे साधक के भीतर से प्रेरणा रूप से उसका मार्गदर्शन करते हैं क्योंकि वे सर्वान्तर्यामी, सर्वप्रेरक तथा सभी की आत्मा में नियन्तारूप से विराजमान हैं। यह उन स्वेच्छामय भगवान् पर निर्भर करता है कि वे ऊपर कहे माध्यमों से अथवा अन्य किसी रूप में अपने शरणागत को प्रेरणा प्रदान कर उसका मार्ग प्रशस्त करें।

वैष्णव शास्त्रों में वर्णित भगवद् भक्ति के इन पाँच भावों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है— शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं शृंगार। ब्रज की प्रेमोपासना के पारम्परिक साहित्य में शान्त-भाव का कोई विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता, दास्य-भाव की भी इसमें अल्पचर्चा है। यहाँ की भक्तिसाधना मुख्य रूप से सख्य, वात्सल्य एवं शृंगार पर आधारित है। इनमें सखा-भाव से तात्पर्य श्रीकृष्ण के सखाओं का भावानुगमन करके की जाने वाली उपासना से है।

सखा का व्युत्पत्ति लब्ध अर्थ है **'सह ख्यायते'** अर्थात् जिनकी चर्चा साथ में की जाय वे सखा हैं। परस्पर मैत्री में आबद्ध वे सहचर जिनका उल्लेख उनकी प्रगाढ़ मित्रता के कारण एक साथ किया जाये, वे सखा कहलाते हैं जैसे कृष्ण-सुदामा, कृष्ण-अर्जुन आदि। उपनिषदों में जीव और ब्रह्म को भी परस्पर सखा सम्बन्ध से सम्मिलित बताया गया है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

(श्वेताश्वतर 4-6)

शरीर एक वृक्ष है उसकी हृदय रूपी शाखा पर दो पक्षी बैठे हुए हैं। ये दोनों समान गुण वाले एवं आपस में सखा हैं। इनमें से एक जीव रूपी पक्षी

इस शरीर रूपी वृक्ष के शुभ-अशुभ फलों को चखता रहता है दूसरा ईश्वर रूपी पक्षी कर्म-फल को न चखता हुआ केवल अपने परम प्रकाशमान् रूप से विराजमान रहता है।

इस प्रकार उपनिषदों में जीव और ब्रह्म को परस्पर सखा-भाव से आबद्ध दो पक्षियों के रूप से निरूपित किया गया है। सखा भाव का मुख्य आधार समानता एवं समभाव है। इसमें अन्य भावों के समान सम्भ्रम, भय, लज्जा एवं गौरव-बुद्धि नहीं पाई जाती। श्रीमद्भागवत आदि आर्ष ग्रन्थों में तथा ब्रज भाषा के सन्त-साहित्य में श्रीकृष्ण की सखा भाव से सम्बन्धित अनेक मनोहारी लीलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वैष्णवों के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **'भक्तमाल'** में एक स्वतन्त्र छप्पय द्वारा श्रीकृष्ण के सोलह सखाओं का वर्णन गोस्वामी श्रीनाभाजी द्वारा किया गया है।

ब्रजराज-सुवन संग सदन बन अनुग सदा तत्पर रहैं।
रक्तक पत्रक और पत्रि सबही मन भावैं।
मधुकण्ठौ मधुवर्त रसाल विशाल सुहावैं॥
प्रेमकन्द मकरंद सदा आनन्द चन्द्रहासा।
पयद बकुल रसदान सारदा बुद्धि प्रकासा॥
सेवा समय विचारिकै चारु चतुर चित की लहैं।
ब्रजराज-सुवन संग सदन बन अनुग सदा तत्पर रहैं॥23॥

अन्य वैष्णव ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के और भी अनेक सखाओं के नाम प्राप्त होते हैं जैसे सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रवर्धन, गोभट, यक्ष, इन्द्रभट, भद्रांग, वीरभद्र, महागुण, विजय, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप, मरन्द, कुसुमापीड़, मणिबन्ध, करन्धम, श्रीदामा, सुदामा, दामा, वसुदामा, स्तोककृष्ण, अंशु, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक, विटंक, कलविंक, सुबल, मधुमंगल, अर्जुन, गन्धर्व, बसन्त, विशाल तथा उज्ज्वल आदि।

इन सखाओं के आभूषण, परिधान, बेंत, शृंग आदि चिह्नों का पृथक्-पृथक् उल्लेख भक्ति ग्रन्थों में प्राप्त होता है। सखाओं के विभिन्न वर्ग बनाकर भी

उनका उल्लेख किया गया है। इस वर्गीकरण का आधार इनका आयुक्रम, स्वभाव एवं श्रीकृष्ण लीला में इनकी भूमिका को बनाया गया है। कई सखा श्रीकृष्ण से आयु में बड़े हैं, कुछ छोटे हैं एवं अनेक समान वय के भी हैं। श्रीकृष्ण की सेवा करने के इनके भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। वे सखा जो बड़े हैं, श्रीकृष्ण के साथ समभाव से क्रीड़ा-कौतूहल करते हुए भी उनकी सब प्रकार से रक्षा करने का भाव रखते हैं। दूसरे सखा जो वयक्रम में छोटे हैं, वे भी श्रीकृष्ण के साथ वन में, गोष्ठ में सभी प्रकार की खेलकूद करते हुए भी दास के समान उनकी सेवा करने का भाव धारण किये रहते हैं। अन्य अनेक सखा समानता का भाव रखते हुए श्रीकृष्ण को सुख पहुँचाने के लिये विभिन्न क्रीड़ा-कौतूहल द्वारा उनका प्रीति विधान करते हैं।

स्वार्थ रहित सख्यभाव

जीव और ब्रह्म में परस्पर सखा-भाव सर्वथा निरुपाधिक अर्थात् स्वाभाविक है। निरुपाधिक का अर्थ है कि कर्म तथा अविद्या आदि की उपाधियाँ इसका आधार नहीं हैं। यह सम्बन्ध देश-काल परिस्थिति से भी आबद्ध नहीं है। जीव और ब्रह्म के इस सख्य में कोई लौकिक- पारलौकिक स्वार्थ हेतु (स्वार्थ का कारण) भी नहीं है जिसकी पूर्ति होने पर यह निवृत्त हो जाये। यह पूर्ण रूप से कारण रहित सख्य है जो अनादि और अनन्त काल तक रहने वाला है—

राम प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सब ही के॥

(श्रीरामचरितमानस)

परम ब्रह्म परमात्मा राम-कृष्ण के रूप में अवतार ग्रहण कर धराधाम पर जब अपनी भुवन-मोहिनी लीलाओं का विस्तार करते हैं तब जीव के स्वरूप में नित्य विद्यमान इस सख्य को अधिकाधिक रूप से व्यक्त होने का अवसर प्राप्त होता है। लोकवत् लीलाओं का विस्तृत आधार पाकर यह सखा-भाव अनन्त रूप में आस्वादित होता हुआ सख्य रस का रूप धारण करता है। सखाओं का प्रेम एकजातीय होता है। समान श्रेणी और समभाव

इसकी मौलिक विशेषता है। छोटे-बड़े के भेद पर आधारित सम्भ्रम-भय-गौरव अथवा लघुता आदि भाव इसमें नहीं होते, इसलिए यह समानता के आधार पर सदैव पल्लवित-पुष्पित होता रहता है।

श्रीकृष्ण लीला में सख्य रस की उपासना को विस्तृत आयाम प्राप्त होता है। गोपराज नन्दन श्रीकृष्ण वत्स चारण अथवा गौ-चारण के अवसर पर गौशाला, खिरक, गोष्ठ और वन में अनेक रसदायिनी लीलाओं को किया करते हैं। इन सभी स्थलों पर उनके सखा छाया की भांति साथ रहते हैं। इन विभिन्न स्थलों पर ऋतु एवं समयानुसार सखा मण्डली अनेक प्रकार के सेवा-विधान रचकर श्रीकृष्ण को आनन्दित करते हैं। श्रीनाभा जी की इन पंक्तियों का यही आशय है—

सेवा समय विचार कै चारु चतुर चित की लहैं।
ब्रजराज सुवन संग सदन बन अनुग सदा तत्पर रहैं॥

सखाओं का प्रेम विश्रम्भ अर्थात् विश्वास प्रधान माना गया। इसका यह अर्थ नहीं हैं कि सख्य, वात्सल्य तथा शृंगार प्रेम में विश्वास का कुछ तारतम्य है। मनुष्य में होने वाले भिन्न-भिन्न भाव सम्बन्धों में जिस प्रकार अलग-अलग वैशिष्ट्य है उसी को आधार बनाकर सखाओं के विश्रम्भ-प्रधान प्रेम को कुछ समझा जा सकता है। यद्यपि जगत् के ये भाव सम्बन्ध सर्वथा लौकिक, अदिव्य एवं कर्म-मूलक होते हैं जबकि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण से जुड़ने वाले ये भाव सम्बन्ध अलौकिक, दिव्य और कर्म हेतु से मुक्त होते हैं तो भी लौकिक सम्बन्धों को दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। जिस प्रकार आपसी मित्रता में विश्वास ही प्रधान अवलंब होता है, उसी के आधार पर मैत्री का जन्म तथा उसका विकास होता है और वही उसकी स्थिति का भी आधार माना जाता है। यदि मित्रों के परस्पर विश्वास में न्यूनता आयेगी तो उसी अनुपात में उनके पारस्परिक सख्य का भी ह्रास होगा। यही कारण है कि मित्रता में विश्वास की ही मुख्यता होती है।

मधुमंगल-सुबल आदि सखाओं का श्रीकृष्ण के साथ जो मैत्री भाव है वह सर्वथा अप्राकृत एवं भगवद् भाव-राज्य की एक अलौकिक वस्तु है। उसमें विद्यमान विश्रम्भ को न लौकिक मान दण्डों से समझा जा सकता है और न ही लौकिक भाषा में कहा जा सकता है। उसकी अचिन्त्य विलक्षणता का आभास श्रीमद्भागवत में वर्णित उद्धवजी की ब्रजयात्रा के प्रसंग में होता है। श्रीकृष्ण का संदेश लेकर उद्धवजी ब्रजभूमि में आए तब संध्या काल हो रहा था, उस समय जंगल से गौएँ लौट रही थीं। उनके खुरों के आघात से इतनी धूल उड़ रही थी कि उद्धव जी का रथ ढक गया। मतवाले साँड गर्जना करते हुए आपस में लड़ रहे थे। थोड़े दिन की ब्यायी गौएँ अपने थनों के भार से दबी होने पर भी अपने बछड़ों की ओर दौड़ रही थीं। सफेद रंग के बछड़े इधर-उधर उछल कूद मचाते हुए बहुत ही भले प्रतीत हो रहे थे। गाय दुहने की ध्वनि तथा बांसुरियों की मधुर टेर सब ओर से सुनाई दे रही थी।

उद्धव के ब्रज में पहुँचने पर यह संध्या काल का परिदृश्य था। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के विरह से पीड़ित नन्द-यशोदा को एवं प्रेम वियोगिनी गोपियों को जिस प्रकार श्रीकृष्ण का संदेश सुनाकर उन्होंने सांत्वना दी, वह प्रसंग भागवत आदि ग्रन्थों एवं भक्त-कवियों की वाणियों में विस्तृत रूप से वर्णित है। यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि संध्याकाल में वन से लौटी हुई गायें और उनके पीछे आने वाले सखाओं के उस दृश्य में श्रीकृष्ण विरह की व्यथा का वर्णन श्रीशुकदेव जी ने क्यों नहीं किया? इसका समाधान करते हुए आचार्य-मनीषियों ने कहा है कि सखाओं का प्रेम विश्रम्भ-प्रधान है अतएव वे अपने अद्‌भुत विश्वास के बल पर प्राय: श्रीकृष्ण को अपने निकट ही अनुभव करते थे। सखाओं के हृदय का यह महनीय विश्वास उन्हें यह मानने ही नहीं देता था कि कन्हैया ब्रज छोड़कर अक्रूर के साथ मथुरा चला गया है। यही कारण है कि ग्रन्थों में सखाओं के विरह का वर्णन कम ही प्राप्त होता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि सखाओं को कभी भी श्रीकृष्ण का विरह अनुभव नहीं होता था। उन्हें भी समय-समय पर विरह व्यथा होती थी

जिसका वर्णन भक्त कवियों की रचनाओं में कहीं-कहीं पाया जाता है—

केते दिन भये जु गये बिनु देखे। एवं
हरि तेरी लीला की सुधि आवै...।

इत्यादि पद इसके उदाहरण हैं। ऐसा होने पर भी विश्रम्भ की प्रबलता के कारण सखाओं को बीच-बीच में श्रीकृष्ण की साक्षात् सन्निधि का अनुभव होता रहता था। जब गौचारण के अवसर पर वे श्रीकृष्ण को अपने निकट अनुभव करने लगते तब उतनी समयावधि में गायों और गोवत्सादि गौवंश को भी श्रीकृष्ण का विरह नहीं व्यापता था। उद्धव जब ब्रज में आये उस गौधूलि बेला में उन्होंने गायों और सखाओं को इसी अनुभूति से सम्पन्न पाया।

नन्द-नन्दन का सखाओं के साथ होने वाले क्रीड़ा-कौतुहल का मनोहारी वर्णन श्रीमद्भागवत में प्राप्त होता है। बाँसुरी बजाना, गुलेल से ढेले फेंकना, पैरों के घुंघरू से ताल बजाना, बनावटी गाय और बैल बनकर खेलना, साँड बनकर हुँकारते हुए आपस में लड़ना, मोर-कोयल-बन्दर आदि पशु-पक्षियों की बोलियाँ निकालना, आँख मिचौनी खेलना, पुल बाँधना, वानरों की भाँति उछलना-कूदना, श्रीवृन्दावन के कोमल पत्तों से, रंग बिरंगे फूलों से, फलों से, मोर पंखों से एवं गेरु आदि रंगीन धातुओं से परस्पर एक दूसरे को सजाना, एक दूसरे की बेंत, बांसुरी अथवा छीका चुरा लेना और फिर उसे ढूँढने के लिये प्रयासरत सखाओं को छकाना, आपस में होड़ लगाकर सखाओं को छूना, सिंगी बजाना, भंवरों के साथ गुनगुनाना, कोयल के स्वर में स्वर मिलाकर कूजना, आकाश में उड़ते पक्षियों की छाया के साथ दौड़ लगाना, हंसों की चाल की नकल करना, बगुले के पास उसी की भाँति ध्यान लगाकर बैठ जाना, नाचते हुये मोर के साथ नृत्य करना, बन्दर की पूँछ पकड़कर खींचना, बन्दर का पीछा करते हुए उसके साथ वृक्ष पर चढ़ना, उसके जैसा मुँह बनाना और उसके साथ एक शाखा से दूसरी शाखा पर छलाँग लगाना, नदी किनारे जल में उछल-कूद करना, वहाँ फुदकते हुए मेंढकों के साथ स्वयं भी वैसा फुदकना तथा पानी में अपनी परछाई के साथ हँसी-ठिठोली करना

इत्यादि। अनेक प्रकार के क्रीड़ा- कौतूहलों का वर्णन श्रीमद्भागवत में प्राप्त होता है।

ब्रजराज नन्दन श्रीकृष्ण के सखाओं में स्तोक कृष्ण का भी नाम भागवत आदि ग्रन्थों में प्राप्त होता है–

श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा।
सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन्॥

–10.15.20

स्तोक का अर्थ होता है 'छोटा'। स्तोक कृष्ण श्रीकृष्ण के ही लघु रूप माने गये हैं। स्तोक श्याम वर्ण के हैं और उनके वस्त्र तथा स्वरूप बहुत कुछ नन्दनन्दन से मिलता है इसलिये इन्हें 'छोटा कृष्ण' कहा जाता है। ये सदैव अपने प्राण-प्रिय सखा श्रीकृष्ण के साथ रहते हैं। दोनों सखाओं का परस्पर में अतिशय स्नेह है। स्तोक के बड़े भाई भद्र हैं, वह भी श्यामसुन्दर के सखा हैं। कहीं-कहीं इन दोनों को श्रीकृष्ण के चचेरे भाई भी कहा गया है। आयु-क्रम में स्तोक को सब सखाओं से छोटा माना गया है। ब्रजभाषा साहित्य में भाषा की अपनी प्रकृति एवं उच्चारण-सुविधा के कारण **स्तोक कृष्ण को 'तोक' अथवा 'तोष' भी कहा गया है।** इस प्रकार अन्य कुछ सखाओं के भी संस्कृत नाम ब्रजभाषा में थोड़े परिवर्तित पाए जाते हैं जैसे रत्रक-पत्रक इन दोनों सखाओं को चाचा श्रीवृन्दावन दास जी ने अपने ग्रन्थ 'ब्रज प्रेमानन्द सागर' में रैंता-पैंता कहा है।

श्रीकृष्ण जी द्वारा सखाभाव की प्राप्ति

रैंता-पैंता कहैं समुझाइ, बात हमारी सुनि चितलाइ।

श्रीमहाराज जी के प्रत्यक्ष दर्शन एवं उनके सत्संग से लाभान्वित हुई श्रीद्रोपदी बहन जी के अनुसार श्रीकृष्ण प्रभु ने ध्यानावस्था में महाराज जी को दर्शन देकर उन्हें अपना सखा-भाव प्रदान किया था। एक बार अगहन माह में श्रीमहाराजजी नित्य की भाँति ध्यान करने के लिए बैठे थे, तब स्वयं नन्दनन्दन

ने उनसे ध्यान-काल में कहा– **"तुम मेरे प्रति सखा-भाव रखो, तुम तो मेरे तोष नाम के सखा हो। तुम स्वामी भाव नहीं, सखा भाव रखो।"**

परमाराध्य की आत्मीयता से पूर्ण यह आदेश (वाणी) श्रवण कर तत्काल श्रीमहाराजजी के अन्तर्राज्य में व्यापक परिवर्तन हो गया। उनका दास्य-भाव एक प्रकार से विलुप्त हो गया और उसका स्थान सखा भाव ने ग्रहण कर लिया। इस नूतन भाव से श्रीमहाराजजी के अन्तःकरण में सख्यरस की एक निराली मादकता छा गई। अब उनके प्रभु श्रीकृष्ण मयूर मुकुट धारी सखा के रूप में हृदय-सिंहासन पर आकर विराजमान् हो गये। उनसे वे अपनी हर बात पूर्ण आत्मीयता पूर्वक कह सकते थे। अपने दैनिक जीवन की छोटी-बड़ी प्रत्येक घटना, अन्तर्जगत् की कोई भी हलचल अथवा लोक-परलोक सम्बन्धी कोई भी चर्चा अब वे अपने कन्हैया सखा से निःसंकोच कर सकते थे।

पूर्व में कहा जा चुका है कि भक्ति-मार्ग पर चलने वाले उपासक के लिए इष्ट के प्रति भाव-सम्बन्ध तथा साधन ये दो अनिवार्य उपलब्धियाँ हैं। इनके अभाव में इस मार्ग पर चल पाना असम्भव-प्राय है। श्रीमहाराजजी की ध्यानावस्था में श्रीठाकुरजी ने आविर्भूत होकर उन्हें सखा-भाव सम्बन्ध प्रदान किया, इसका वर्णन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा श्रीमहाराज जी को गीतोपदेश

श्रीठाकुरजी ने महाराज जी को केवल भाव ही प्रदान नहीं किया अपितु इस भाव में रस-सिद्धि की अवस्था प्राप्त करने के लिए अनिवार्य साधन भी प्रदान किया। श्रीद्रोपदी बहन जी ने आगे लिखा है–**"ध्यान में ही श्रीप्रभु ने आपको श्रीगीता जी के अठारहवें अध्याय के पैंसठवें श्लोक का उपदेश दिया कि इस प्रकार मेरी पूजा कर, मेरी शरण में आ जा।"**

स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण ने गीता के इस श्लोक द्वारा श्रीमहाराजजी को साधन-पथ का निर्देश प्रदान किया–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

—गीता 18.65

अर्थात् हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझ से सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।

इस श्लोक में सर्वप्रथम श्रीकृष्ण ने 'मन्मना भव' के द्वारा स्वयं में निरन्तर मन लगाने का उपदेश दिया है। यहाँ मन शब्द; बुद्धि, चित्त एवं अहंकार का भी उपलक्षण है। अन्तःकरण चतुष्टय के विषय में भिन्न-भिन्न दर्शनों के अलग-अलग मत हैं। किसी दर्शन में अन्तःकरण तीन माने गये हैं तो किसी में चार, परन्तु वैष्णव दर्शन में एक ही अन्तःकरण माना गया है। वह जब संकल्प-विकल्प रूप क्रियाओं का कारण बनता है तो 'मन' कहलाता है और जब निश्चय का कारण बनता है तो 'बुद्धि' कहलाता है। इसी प्रकार चिन्तन और गर्व आदि नैमित्य से उसका नाम चित्त एवं अहंकार पड़ जाता है। अतः गीता में प्रयुक्त मन शब्द का कार्य-भेद से अन्तःकरण अर्थ में ही तात्पर्य है। श्रीभगवान् कह रहे हैं कि— हे अर्जुन! तु मुझमें ही मन लगा और मुझमें ही बुद्धि लगा, मेरा ही निरन्तर चिन्तन कर और अपने मैं पने को सब प्रकार से मुझमें ही जोड़ दे; ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा। इसी आशय का एक श्लोक गीता के 12वें अध्याय में भी कहा गया है—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥8॥

अर्थात् मुझमें मन लगा और मुझ में ही बुद्धि को लगा; इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

इस विषय में श्रीमहाराजजी कहा करते थे— श्रीकृष्ण की पावन प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए साधक के पास दो चीजें हैं— 1. मन एवं 2. बुद्धि। मन निर्मल हो और बुद्धि निश्चयात्मिका हो।

x x x x x

अपावन मन और अनिश्चित बुद्धि सफल नहीं हो सकते।

x x x x x

विचारवान् पुरुषों की ही बुद्धि निश्चयात्मिका होती है अन्य व्यक्ति जो संसार में लिप्त हैं उनकी बुद्धि मन के संकेत पर चलती है। मन इन्द्रियों के इशारे पर नाचता है जब यह दशा है तो भला काम कैसे हो?

x x x x x

विवेकी पुरुषों की बुद्धि जो निश्चय करती है, मन उसके आदेश का पालन करता है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है।

x x x x x

भैया! तो अब हमें मालूम हो गया कि जो हम चाहते हैं वह सब श्रीकृष्ण के पास है, तो अपनी निश्चयात्मिका बुद्धि से यह निश्चय किया कि तब तो वहीं चलना चाहिए। निश्चय होते ही समस्त विकारों से पीछा छूटने लगा, मन निर्मल हुआ, आँखें खुलीं, चेतना आई, काम हुआ। बस यही है मार्ग।

x x x x x

भजन का स्वरूप सन्तों ने तैल धारावत् बताया है। जिस प्रकार एक वस्तु जो तरल है उसको किसी दूसरी वस्तु में डाला जाता है, उस धारा में कोई व्यवधान नहीं; इसी प्रकार यदि श्रीकृष्ण-चिन्तन में अन्तर नहीं तो समझ लो भजन हो रहा है।

'मन्मना भव' के पश्चात् गीता के श्लोक में पूजन एवं नमस्कार द्वारा भक्ति करने की बात कही गई है। पूजन और नमस्कार, नवधा भक्ति के अन्तर्गत अर्चन और वन्दन कहलाते हैं। अपने आराध्य का षोडश उपचारों के द्वारा अथवा अन्य वैदिक-तांत्रिक विधियों से विविध सामग्रियों द्वारा पूजन ही अर्चन-भक्ति है। इष्ट के प्रति सर्वथा अहं-शून्य होकर किया जाने वाला प्रणिपात 'नमस्कार' कहलाता है। अर्चन का यह प्रचलित अर्थ होने पर भी

गीता जी के 18वें अध्याय में सर्वव्यापक परमात्मा का अपने दैनिक कर्तव्य कर्मों द्वारा भी अर्चन करने की बात कही गई है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥46॥

अर्थात् जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

अपने दैनिक कर्म के द्वारा सर्वव्यापक श्रीभगवान् की पूजा तभी सम्भव है जब जड़-चेतनमय जगत् में उनकी नित्य विद्यमानता को दृढ़ता से माना जाय। सर्वत्र भगवद् भाव होने पर हमारे कर्मों द्वारा जो भी प्राणी जिस रूप में भी लाभान्वित होगा, वह उस प्राणी के अन्तरात्मा श्रीभगवान् का ही कर्म द्वारा पूजन कहा जायेगा। गीता के उक्त श्लोक के पूर्वार्ध में— 'येन सर्वमिदं ततम्।' द्वारा चराचर जगत् में उनकी व्याप्ति की बात कही गई है। इसी क्रम में नमस्कार के द्वारा होने वाली वन्दन-भक्ति भी स्वतः अनुष्ठित हो जाती है। सभी रूपों में इष्ट का दर्शन होने से साधक के अन्दर अपनी श्रेष्ठता के बोध पर आधारित अहं भाव के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। सबके प्रति अहंकार रहित व्यवहार होने से तथा सबमें अपने आराध्य का दर्शन करने से उपासक अपने मन-वाणी एवं कर्म से सदा सर्वरूपधारी भगवान् को वन्दन अर्थात् नमस्कार करता रहता है—

सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

—श्रीरामचरितमानस

श्रीमहाराजजी ने अपने आराध्य द्वारा ध्यानावस्था में दिये गये आदेश को अपने समग्र जीवन में प्राणपण से चरितार्थ किया। सर्वत्र इष्ट का दर्शन करते हुये सबकी सेवा तथा सबके प्रति अहं-रहित दीन व्यवहार आजीवन उनके द्वारा होता रहा। इस विषय का वर्णन आगे किया जायेगा।

श्लोक के उत्तरार्द्ध में श्रीभगवान् ने अर्जुन को प्रेमपूर्वक आश्वासन दिया है कि निरन्तर मुझमें मन लगाने से, मेरा पूजन तथा मुझे नमस्कार करने से तू निश्चित रूप से मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझे सत्य प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। यह श्लोक गीता में अर्जुन के प्रति कहा गया है लेकिन श्रीमहाराजजी को इसका उपदेश देने से इसमें कहा गया आश्वासन परोक्ष रूप से महाराजजी पर भी घटित होता है।

इस प्रकार **ध्यानावस्था में उन्हें नन्दनन्दन श्रीकृष्ण का सखा-भाव तथा उक्त श्लोक द्वारा प्रशस्त साधन एवं वर्तमान जन्म में ही भगवद् प्राप्ति का अमोघ वरदान प्राप्त हुआ।** इस अनुभूति के पश्चात् से श्रीमहाराज जी में साधन पथ को लेकर एक नई ऊर्जा का संचार हुआ। इसके पूर्व उनमें जो व्याकुलता और लक्ष्य प्राप्ति के निमित्त एक खोज बनी हुई थी, वह विलुप्त हो गई। अब जबकि साक्षात् प्रभु ने उन्हें प्यार भरा आश्वासन प्रदान कर दिया तो अनिश्चितता और उसके कारण उत्पन्न हुई व्याकुलता कैसे टिक सकती थी?

श्रीमहाराजजी को जो सखाभाव प्राप्त हुआ, अब वे उसे पुष्ट करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हो गये। उनके मन-मस्तिष्क में सखाभाव की हिलोरें उठने लगीं। पूर्व में बताया जा चुका है कि सखाभाव का मुख्य आधार परस्पर का सुदृढ़ विश्वास है। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण अब उनके पूर्ण विश्वासपात्र सुहृद सखा थे। श्रीमहाराजजी आन्तरिक आत्मीयता के साथ अपने सखा के मनन-चिन्तन मे शनैः शनैः डूबने लगे। गृहस्थ आश्रम के निर्वाह के लिए जो अति आवश्यक प्रयास करने होते हैं, उन्हें यथा सम्भव निपटाकर वे अपना सारा समय सख्यभाव की आराधना में व्यतीत करते। श्रीभगवान् ने गीता के श्लोक के माध्यम से जो साधन मार्ग उन्हें दिखाया था उस पर तत्परतापूर्वक अग्रसर होना उनका मुख्य कार्य था। समस्त सृष्टि में श्रीभगवान् का दर्शन, उसी भाव में सभी की विनम्रतापूर्वक यथा अवसर सेवा एवं मन को निरन्तर अपने प्राणसखा में लगाना, यह उनका साधन मार्ग था। श्रीठाकुर जी का

नामचिन्तन, उनकी रूपमाधुरी, लीलामाधुरी तथा प्रतिक्षण होने वाली कृपा का अनुसंधान यही उनमें मन लगाने का स्वरूप है। श्रीमहाराज जी इसी दिशा में आगे बढ़ते रहे।

इस प्रसंग के ठीक पश्चात् श्रीद्रोपदी बहन जी ने लिखा है— "श्रीगुरुदेव को जब से ध्यान-दर्शन हुआ, तब से आपकी आकुलता और बढ़ गई। अब आप उस त्रिभुवनमोहन की साँवरी सूरत को देखने को अति व्याकुल हो उठे।" उनके इन वाक्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि ध्यान-दर्शन के तत्काल पश्चात् ही श्रीमहाराजजी में विरहदशा का उन्मेष हो गया। उक्त कथन के पश्चात् द्रोपदी बहन जी ने उनकी विरहदशा का वर्णन किया। उनका यह वर्णन सर्वथा प्रामाणिक है क्योंकि उन्हें श्रीमहाराजजी के चरणसान्निध्य का सुअवसर अनेक वर्षों तक प्राप्त हुआ। हमारे विचार से यहाँ उनके इस कथन का लाक्षणिक अर्थ लेना ही उचित प्रतीत होता है। आशय यह है कि ध्यान दर्शन के बाद ही श्रीमहाराजजी में विरह अवस्था प्रकट हुई परन्तु दोनों के मध्य कुछ समय का अन्तराल अवश्य रहा अर्थात् ध्यान दर्शन के कुछ समय बाद ही श्रीमहाराजजी को विरहानुभव हुआ। ऐसी स्थिति में उनके इस वाक्य का कि—"श्रीगुरुदेव को जब से ध्यान-दर्शन हुआ तब से आपकी आकुलता और बढ़ गई।" इसका कुछ अंशों में लाक्षणिक अर्थ ही लेना होगा। ध्यान दर्शन और विरह अवस्था के मध्य कितना समय व्यतीत हुआ इसे बताने का कोई आधार उपलब्ध नहीं है। इस चरित्र लेखन के समय श्रीमहाराजजी के जो भक्तगण हैं, वे सभी ईसवी सन् 1960 के बाद ही उनकी चरण सन्निधि में आए जबकि यहाँ जिन प्रसंगों का वर्णन किया जा रहा है वे उससे पूर्व के हैं। ऐसी स्थिति में द्रोपदी बहन जी द्वारा लिखित संक्षिप्त चरित्र तथा उन्हीं के द्वारा संकलित महाराजजी के उपदेशामृत ही मुख्य आधार हैं। महाराजजी के ये उपदेश 'समत्व-योग' एवं 'मंगलीय सुमन' के नाम से प्रकाशित हैं। उन दोनों पुस्तकों का भी प्रस्तुत लेखन में यथा प्रसंग उपयोग किया जा रहा है।

दृढ़ विश्वास और सघन आत्मीयतापूर्वक सखा भाव को आधार बनाकर श्रीमहाराजजी अपनी उपासना में अग्रसर हुये। ध्यानकाल में श्रीप्रभु द्वारा आदिष्ट गीता के श्लोक से उन्हें अपना साधनपथ आलोकित होता स्पष्ट दिखाई दिया। इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में तीन निर्देश दिए गये हैं— प्रथम : तू मुझमें मन लगाने वाला बन। द्वितीय : मेरा पूजन कर और तृतीय : मुझे नमस्कार कर। यहाँ अर्चाविग्रह रूप से प्रभु का पूजन तो विवक्षित है ही किन्तु साथ ही जगत् को श्रीकृष्ण का रूप देखकर सबकी उसी भाव से सेवा, यह भी इसका एक तात्पर्य है। श्रीमहाराजजी के उपदेशों में से कुछ अंशों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। जिनसे उक्त श्लोक को आधार बनाकर उनके द्वारा सम्पन्न हुई साधना विधि का तथा तद्विषयक निष्ठा का दिग्दर्शन होता है।

चौथी बात है नानात्व का त्याग। यह तू है, यह मैं हूँ, यह अपना है, यह पराया है, यह कुत्ता है, यह गाय है, यह पूज्य है, यह अपूज्य है आदि-आदि। इस प्रकार की भावनाओं को त्यागकर सर्वत्र एकात्म दर्शन करो। सबमें तुम्हारा कन्हैया बैठा है। भैया! यह नामधारी-शरीर तो शव है शव; नहीं तो देख लो जब कन्हैया इसको छोड़कर (मृत्यु होने पर) चला जाता है तो शव को छूने पर स्नान करना पड़ता है। शव को फेंक दिया जाता है। तो सबमें उन्हीं श्रीकृष्ण का दर्शन करो, जिनसे तुम मिलना चाहते हो। नामदेव को तो कुत्ते में भी कन्हैया दिख रहे थे, तभी तो वो रोटी ले जाने वाले कुत्ते के पीछे घी की कटोरी लेकर दौड़े।

x x x x x

यदि अनेकता में एकता दीखने लगे, मानो सब जगह, सब में आत्मरूप परमात्मा दिखने लगे तो दृष्टि असीम हो जाती है, अमोघ हो जाती है। फिर स्त्री, स्त्री नहीं दिखती; वृक्ष, वृक्ष नहीं दिखता; पापी, पापी नहीं दिखता; डाकू, डाकू नहीं दिखता; बदमाश, बदमाश नहीं दिखता, बस दिखता है

सर्वत्र वही श्रीकृष्ण। भैया मेरे! जब सभी में तुम्हारा कन्हैया बैठा है तो किसको क्या कहोगे?

बर्फ का ढेला है। वस्तुतः बर्फ का है? नहीं वह पानी का है, पानी का। तो देखो बर्फ के हर कण में जल, तो समझे बर्फ, बर्फ नहीं जल है। इसी प्रकार यह जगत् भी जगत् नहीं, यह वही अपना श्रीकृष्ण है। इसके कण-कण में वही समा रहा है, वही सर्वश्रेष्ठ है। सर्वश्रेष्ठ वस्तु मान लिया तो उसमें हमारी भक्ति हो जायगी। भक्ति का मतलब है प्रभु के नाम, गुण, रूप, श्रवण, कीर्तन आदि में रुचि हो जायेगी।

सेवा! सेवा तो प्रभु को प्राप्त करने का अचूक अस्त्र है। सेवा के स्वरूप को समझो! सेवा में मरना पड़ता है। डरो मत! यह मरना, मरना नहीं। सिर्फ "मैं" मर जाता है, जो तुमको कन्हैया से मिलने नहीं दे रहा है। सेवा में अपना कुछ नहीं रहता।

x x x x x

सेवा! सेवा से ही केवल कन्हैया को वश में किया जाता है। सेवा में बड़ा बल है भैया! वह नटखट भी सेवा की रज्जु में बँध जाता है, वश में हो जाता है। सेवा का स्वरूप है, सहज सेवा। उसमें सेवक को यह भान ही नहीं होता कि मैं सेवा कर रहा हूँ। वह तो इस कार्य को अपना धर्म, अपना कर्त्तव्य समझ कर करता है।

x x x x x

सेवा में कोई माँग नहीं, कोई बदला नहीं, कोई चाह नहीं होती। उसे यह भी ध्यान नहीं कि स्वामी को मेरा ध्यान है कि नहीं? उसके सामने एकमात्र सहज सेवा होती है। **सेवा से अभिप्राय है पूर्ण आत्म समर्पण।**

x x x x x

सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधना से कन्हैया को बाँधना असम्भव है।

श्रीमद्भगवद्गीता के उक्त श्लोक को आधार बनाकर श्रीमहाराजजी **'मन्मना भव'** के मार्ग पर आगे बढ़ते रहे। **मद्याजी** और **माम् नमस्कुरु** को अपने साधन में यथावत् चरितार्थ करने के लिए उन्होंने **सर्वात्मभावेन** अर्थात् सर्वत्र श्रीकृष्ण दर्शन का दृढ़ आश्रय लिया। क्योंकि भगवत् भाव से की जाने वाली सबकी सेवा भगवत् पूजन का रूप ग्रहण कर लेती है। उनकी इस प्रकार की साधना पद्धति का किंचित् आभास उनके उपदेश-वचनों से होता है। उनमें से कतिपय वचनों को ऊपर उद्धृत किया गया है।

श्रीमहाराजजी का मानना था कि प्राणिमात्र के अन्तःस्थल में श्रीकृष्ण प्रेम नित्य विराजमान् है। कोई भी प्राणी उससे कभी वंचित नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण सभी की आत्मा होने से सदैव उर-अन्तर में विद्यमान हैं, इसी को शास्त्रों में सर्वात्मभाव कहा गया है। जिस प्रकार सूर्य से प्रभा, पुष्प से गन्ध, अग्नि से दाहकत्व एवं बर्फ से शीतलता को पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार कोई भी जीव कभी श्रीकृष्ण से अलग नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण जीव के बाहर से आकर उसकी अनुभूति का विषय नहीं बनते क्योंकि वे नित्य भीतर अवस्थित हैं। ठीक इसी प्रकार उनका प्रेम भी हमारे भीतर विराजमान है। उस प्रेम का अनुभव करने के लिए जिस योग्यता की आवश्यकता है वह न होने से उस नित्य प्राप्त प्रेम से भी जीव वंचित ही रहता है। श्रीमहाराजजी ने आत्म तत्त्व में विद्यमान इस शाश्वत कृष्ण प्रेम को **'अमृत-कलश'** की उपमा दी है। उनके वाक्य हैं—

श्रीकृष्ण का प्रेम समस्त संसार के प्राणिमात्र के अन्तराल में सदैव से है। चराचर जगत् के उर स्थल में कृष्ण प्रेम का अमृत कलश विद्यमान है। प्रत्येक मानव में प्रेम की अजस्र धारा बह रही है परन्तु भूल के कारण सभी दुःखी हैं, अज्ञान का पर्दा पड़ा है। जिस प्रकार करोड़पति पिता का पुत्र विदित न होने से पैसे-पैसे के लिए दर-दर ठोकरें खाता फिरता है, दरिद्रता का दुःख भोगता है; उसी प्रकार श्रीकृष्ण का अंश जीव जिसे जन्म से ही श्रीकृष्ण-प्रेम सम्पत्ति रूप में प्राप्त है पर भूल के कारण दुःखी है।

तो मैं बता रहा था सबके, चराचर जगत् के मानस में अमृत-कलश विद्यमान है। जब बालक माँ के गर्भ में होता है तो माँ को प्रतिक्षण उसका भाव रहता है, उसे अनुभव होता रहता है। इसके लिए उसे कोई साधन नहीं करना पड़ता, यदि बालक का हिलना-डुलना न हो तो चिन्ता हो जाती है। इसी प्रकार यदि उस अमृत कलश का, जो तुम्हारे श्रीकृष्ण ही हैं, तुम्हें प्रतिक्षण अनुभव हो, क्षणमात्र की विस्मृति में चिन्ता हो जाय तब देखो क्या होता है।

तो मैंने बताया कि मानस में रखे कलश पर पर्दा पड़ा है, अत: वह आवरण ही उसे देखने नहीं देता। वह आवरण क्या है? काम! श्रीमहाराजजी के इन वाक्यों से जीव के भीतर प्रेम की शाश्वत स्थिति सूचित होती है।

प्रेम तत्त्व को संयोग-वियोगात्मक माना गया है। मिलना और वियुक्त होना, यह प्रेम के क्रीड़ा-कौतूहल के दो रूप हैं। प्रेम सरिता का अजस्र प्रवाह संयोग और वियोग के दोनों किनारों के मध्य प्रवाहित होता रहता है। जिस प्रकार पक्षी अपने दोनों पंखों से उड़ान भरता हुआ आकाश की ऊँचाइयों की ओर उड़ता रहता है उसी प्रकार प्रेम का पक्षी भी संयोग-वियोग रूपी अपने दोनों पंखों से निरन्तर गतिमान बना रहता है। प्रेम में विद्यमान ये दोनों प्रतीतियाँ लोकानुभव से तो सिद्ध हैं ही, साथ ही इनका साहित्य और धर्म-शास्त्रों से भी समर्थन होता है। मनुष्य की अन्तर्चेतना में नित्य विद्यमान जिस प्रेम कलश की चर्चा श्रीमहाराज जी के उद्धरणों में की गई है, वह साधक की प्रकृति, उसके पूर्व-संस्कार तथा उपासना का स्वरूप है। जैसा कि पूर्व में ही कहा जा चुका है संगोपन के कारण किसी महापुरुष के बारे में कुछ लिख पाना अति दुरूह है फिर भी उनके परिकर व परिजन का सहारा लेकर उस धरातल तक पहुँचा जा सकता है।

संक्षिप्त जीवन चरित लिखने पर महाराज जी के विषय में स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि उनकी करनी व कथनी एक थी। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में संत लक्षणों का उल्लेख किया है। गरुड़ जी ने

काकभुशुंडि जी से सन्तों के बारे में पूछा। उसके उत्तर में श्रीरामचरितमानस में वर्णित चौपाइयां यहाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥
संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी॥
भूर्ज तरु सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला॥

(उत्तरकाण्ड 120.14)

नारदजी ने भगवान् श्रीराम से सन्तों के लक्षण बतलाने का अनुरोध किया। उत्तर देते हुए श्रीरामजी कहते हैं—

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥

दोहा : गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥45॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिन्द बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा क्षमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥

(अरण्य 44.7-45.8)

श्रीमहाराजजी में उक्तवर्णित सभी लक्षण परिपूर्ण थे। महाराज जी आजीवन परोपकार में ही लगे रहे। उनकी कथनी और करनी सदैव एक ही रही। आपने अनेकानेक साधकों को ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की त्रिवेणी में

अवगाहन कराकर आदर्श जीवन के लक्ष्य तक पहुँचाकर अपना कर्त्तव्य निभाया, कितनों को भगवत् साक्षात्कार करा देना उनकी उदारता के जीते जागते उदाहरण हैं।

श्रीमहाराजजी सांसारिकता से कोसों दूर, भक्ति पथ पर सत्य निष्ठा से आरूढ़ रहे। '**परोपकाराय सतां विभूतयः**' इस सिद्धान्त का पूर्ण प्रतिपादन करते हुए मनसा, वाचा, कर्मणा श्रीकृष्ण के होकर, श्रीकृष्ण के लिए श्रीकृष्ण का ही काम करते हुए जीवन के अंतिम पड़ाव की ओर बढ़ते रहे। सत्य की खोज करने में सदैव सफल रहे।

ब्रजरज की प्राप्ति

इस असार संसार से महाराजजी 96 वर्ष की आयु पूर्ण करके दिनांक 15 जून 2003 ई. (ज्येष्ठ-शुक्ल-पूर्णिमा) को ब्रजरज में लीन हो गए। **भाग बड़ौ वृन्दावन पायो।** महाराज जी के ब्रह्मलीन होने के चार महीने बाद ही दिनांक 23 अक्टूबर 2003 ई. को माताजी ने भी देहत्याग दिया।

महापुरुषों का प्रयाण हर्ष-विषाद युक्त होता है। कारण उल्लेखनीय है उनका मिलन प्रभु से सदैव के लिए हो जाता है यह हर्ष का विषय है। दुःख इस बात का है कि अब हमें उनके दर्शन व सत्संग का लाभ सम्भव न हो सकेगा।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

(11.5.33)

वंश वृक्ष

श्रीप्रभुदयाल जी चतुर्वेदी

श्रीदुर्गा प्रसाद जी चतुर्वेदी

श्रीभगवत शरण चतुर्वेदी — आलोक, आदित्य, आमोद

श्रीगोविन्द शरण चतुर्वेदी — राम, श्याम, गोपाल

परमपूज्य श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी जी द्वारा
हस्तलिखित डायरी से उद्धृत

वचनामृत

1. अग्निहोत्र।
2. सूर्योपस्थान।
3. गुरु वन्दन।
4. ब्राह्मण सत्कार।
5. मानस पूजा।
6. मैं आत्म स्वरूप हूँ ऐसी धारणा।

x x x x x

1. केवल सच्चिदानन्द, वासुदेव परमात्मा में श्रद्धा भक्ति सहित मन को स्थिर करना।
2. परमात्मा के नाम, गुण तथा प्रभाव का कीर्तन, श्रवण, मनन एवं पठन-पाठन द्वारा भजन करना।
3. अपना सर्वस्व भक्ति सहित परमात्मा के चरणों में समर्पित करके प्रेम सहित पूजन करना।
4. साष्टांग दंडवत् प्रणाम करना। इस प्रकार आचरण करने से भगवत् साक्षात्कार अवश्य होता है।
5. जिस समय जीव काष्ठ में व्याप्त अग्नि के समान सब भूतों में श्रीकृष्ण को स्थित देखता है उसी समय वह अपने अज्ञान रूप मल से मुक्त हो जाता है।
6. जब साधक अपने आप को इन्द्रिय, गुण तथा अन्तःकरण से रहित अनुभव करता है तो तत्काल मुक्त हो जाता है।

माह मई सन् 1986 ई.

7. योगानुष्ठान तथा नियम पालन से पूर्ण ब्रह्म एवं शब्द ब्रह्म की प्राप्ति हो जाने पर भी प्रायः असंतोष रहता ही है। भगवान् श्रीकृष्ण के सुयश गान से ही सर्वदा के लिये पूर्ण संतोष प्राप्त हो जाता है।
8. यद्यपि सभी कार्य मनुष्यों को जन्म-मृत्युरूप संसार में डालने वाले हैं तथापि जब वे भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिये जाते हैं तब उनका कर्मपना ही नष्ट हो जाता है।
9. काम और लोभ की चोट से बार-बार घायल हुआ हृदय श्रीकृष्ण-सेवा से जैसी प्रत्यक्ष शान्ति का अनुभव करता है, यम-नियम आदि योग मार्गों से ऐसी शान्ति नहीं मिल सकती।
10. जीव तीनों गुणों से अतीत होने पर भी अपने को त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यता के कारण होने वाले अनर्थों को भोगता रहता है।
11. केवल श्रीमद्भागवत कथा श्रवण मात्र से पुरुषोत्तम भगवान् के चरणों में प्रेमरूपी भक्ति हो जाती है और जीव सदा के लिये शोक, मोह तथा भय से मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।
12. आप विश्व के आत्मा, विश्व के स्वामी और विश्व रूप हैं। मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ।
13. श्रीकृष्ण आप सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहंकाररहित और निष्पाप परमात्मा हैं। इन ऊँच नीच कार्यों के कारण, आप में कभी किसी प्रकार की विषमता नहीं होती।
14. यों तो साधन अनेक हैं जिन के द्वारा भोगों से निःस्पृह हुआ जा सकता है किन्तु पूर्ण एवं स्थाई निःस्पृहता भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों के सेवन से ही होगी।
15. दान के योग्य समय को जान कर ही दान देना चाहिये तभी उसका यथार्थ प्रभाव होगा। संतान के मंगल के लिये दान नाल काटने से पहले दिया जाना चाहिये। उस समय सूतक नहीं होता।

16. श्रीकृष्ण के बिना यह सब कुछ असार प्रतीत होता है, जैसे भस्म में डाली हुई आहुति, कपट पूर्ण सेवा और ऊसर में डाला बीज व्यर्थ जाता है।

17. मानव मोह ग्रसित होने के कारण भगवान् की लीला को देखकर विषाद को प्राप्त होता है। वास्तव में यह सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की लीला है। संसार में प्राणी परस्पर एक-दूसरे का पालन-पोषण भी करते हैं और एक-दूसरे को मार भी डालते हैं।

18. विनाशी का वियोग मुक्ति, अविनाशी का योग भक्ति है। अर्थात् इस वियोग को होने से पूर्व ही स्वीकारा जाय तो मुक्ति और भक्ति स्वत: सिद्ध हो जाएगी।

19. अधर्म का मूल कलियुग भूमण्डल पर व्याप्त है और संसार के समस्त प्राणी इसके द्वारा अभिभूत हैं और इसका विशेष प्रभाव वहाँ मिलेगा जहाँ झूठ, मद, काम, बैर, रजोगुण तथा हिंसा देखने को मिले।

20. इस युग से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। इससे केवल प्रमादी लोग ही प्रभावित होते हैं। जिनका जीवन नियमित है उनको कोई भय नहीं। वचनों का स्वरूप—**"गम्भीर, मधुर, सत्य और समता से युक्त हो, ऐसे वचनों के द्वारा जीवन सहज में ही आनन्दमय हो जावेगा।"**

21. प्रश्न ही वह कहलाता है जो प्राणी मात्र के लिये, जीवन की सफलता का मार्ग दिखाये। इस सन्दर्भ में जो भागवत में महात्मा परीक्षित के द्वारा ऋषियों के समक्ष रखा गया था। आप सभी विद्वान् परस्पर विचार करके बतलाइये कि सबके लिये सब अवस्थाओं में और विशेष कर थोड़े ही समय में मरने वाले पुरुष के लिये अन्त:करण और शरीर से करने योग्य विशुद्ध कर्म कौन सा है?

22. महाभागवत श्रीपरीक्षितजी ने भगवान् श्रीशुकदेव जी से इस प्रकार प्रश्न किया— जो सर्वथा मरणासन्न है उस पुरुष को क्या करना चाहिये?

साथ ही यह भी बतलाइये कि मनुष्य मात्र को क्या करना चाहिये? वे किसका श्रवण, किसका जप, किसका स्मरण और किसका भजन करें तथा किसका त्याग करें?

23. भगवान् श्रीशुकदेव जी ने उत्तर दिया— परीक्षित! संसार में जिन्हें अपना अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है वे शरीर, पुत्र, स्त्री कुछ नहीं हैं, असत् हैं। परन्तु जीव उनके मोह में ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्यु का ग्रास होते देख कर भी चेतता नहीं है।

24. चाहे जैसे हो ज्ञान से, भक्ति से अथवा अपने धर्म की निष्ठा से जीवन को ऐसा बना लिया जाय कि मृत्यु के समय भगवान् की स्मृति अवश्य बनी रहे।

25. जन्म लेते समय प्राणी को महान् कष्ट सहन करना पड़ता है और जीवन काल में शोक, मोह और भय से सर्वदा दु:ख ही दु:ख प्राप्त होता रहता है और मरण काल में भी बड़ी पीड़ा होती है। यह चक्र युगों-युगों तक चलता रहता है, कभी इसका अंत नहीं आता। कभी सोचा आपने, इस का मूल कारण क्या है? भैया! इसका कारण अज्ञान है, इसके निवृत्त होने पर जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा हो पाता है। इस अज्ञान के नाश का साधन बड़ा ही सरल व सुगम है। आप अपने हृदय में नित्य विराजमान स्वत: सिद्ध आत्मस्वरूप, परम प्रियतम तथा परम सत्य 'नारायण' का दृढ़ निश्चय करके भजन करें, अज्ञान से सदा के लिये मुक्त हो जावेंगे।

26. प्राणियों का एक मात्र ध्येय यह ही होना चाहिये कि केवल श्रीकृष्ण के चरणकमलों की सन्निधि प्राप्त हो। इसके लिये मनुष्यों को चाहिये कि सब समय और सभी स्थितियों में अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-कथाओं का श्रवण-कीर्तन और स्मरण करें। उनका लक्ष्य अवश्य पूरा होगा।

27. अहा! कितना सुगम है प्रभु से मिलना और सदा के लिये दु:खों से छूट जाना। भैया! श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण लेकर अपने हृदय से इस लोक और परलोक की आसक्ति को निकाल दो, बिना किसी परिश्रम के आप श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लोगे, मैं सत्य कहता हूँ।

28. बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जब तक अपनी साधनाओं को तथा अपने आप को उनके चरणों में समर्पित नहीं कर देते तब तक उन्हें कल्याण की प्राप्ति नहीं होती।

29. मुमुक्षु को चाहिये कि प्रेमपूर्ण एवं उत्कण्ठित हृदय से भगवान् के स्मरण में मगन रहे। तब उसकी वाणी कभी असत्य नहीं होगी। मन कभी असत्य संकल्प नहीं करेगा। इन्द्रियाँ कभी कुमार्ग पर नहीं जायेंगी। जितने अन्य साधन शास्त्रों में वर्णित हैं जैसे योगानुष्ठान, ज्ञान मार्ग, तपस्या, कर्म-मार्ग आदि इनसे भगवान् को प्राप्त नहीं किया जा सकता। भगवान् तो भक्ति से ही प्राप्त होते हैं। यह अनुभव सिद्ध तथ्य है।

30. यदि कोई साधक प्रभु का साक्षात्कार करना चाहे तो वह अपने अन्त:करण, इन्द्रियों और शरीर को शान्त कर ले— वह भगवान् के दर्शन अवश्य पा जावेगा। यह नि:संदेह सत्य है।

31. परमात्मा का वास्तविक स्वरूप एकरस, शान्त, अभय एवं केवल ज्ञानस्वरूप है, न उसमें माया का मल है और न उसके द्वारा रची हुई विषमताएं ही। वह सत् और असत् दोनों से परे है। किसी भी वैदिक या लौकिक शब्द की वहाँ तक पहुँच नहीं है।

32. जो लोग उनकी लीलाओं को श्रद्धा के साथ नित्य श्रवण और कथन करते हैं उनके हृदय में थोड़े समय में ही भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

भगवत् धाम की रूप रेखा

33. भगवत् धाम में क्लेश, शोक, मोह तथा भय का पूर्ण अभाव है। रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण यह तीनों गुण भी नहीं हैं। यहाँ काल

की दाल नहीं गलती और माया तो झाँकने का साहस भी नहीं कर सकती। एक विशेषता यह है कि यहाँ पहुँचने पर लौटने का नियम नहीं है। जिनका यहाँ निवास है वह भगवान् के पार्षद कहलाते हैं अर्थात् वह भगवत् स्वरूप ही होते हैं।

34. **श्रीभागवत के दस लक्षण**— 1. सर्ग (सृष्टि की रचना), 2. विसर्ग (विस्तृत सृष्टि), 3. स्थान (ईश्वर का निवास स्थान), 4. पोषण (भगवान् की भक्तों पर कृपा), 5. ऊति (वासनाओं से बन्धन), 6. मन्वन्तर (मनु के कालखण्ड), 7. ईशानुकथा (ईश्वर के अवतार और भक्तों की कथाऐं), 8. निरोध (प्रलय में जीवों का लीन होना), 9. मुक्ति (अज्ञान से मुक्त होकर ईश्वर में मिल जाना) एवं 10. आश्रय (ईश्वर ही सृष्टि का आधार हैं)।

35. यह सुख-दु:ख संसार में इच्छा-द्वेष से उत्पन्न होते हैं और यह एक प्रकार के द्वन्द्व रूप मोह ही है और अज्ञानता से सब प्राणी मोहित हो रहे हैं और उन्हें यह बोध ही नहीं है कि उनको क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। सम्पूर्ण आयु व्यर्थ खोकर चौरासी के चक्कर में जा गिरते हैं।

36. यदि मुमुक्षु अपने जीवन को सफल करना चाहें तो उन्हें निष्कामभाव से कर्मों का आचरण करना चाहिये। परिणामत: वह निष्पाप हो जावेगा और राग-द्वेषादि से छूट कर प्रभु के भजन में लग जावेगा और परम शान्ति को प्राप्त हो जाएगा।

37. जो कोई भी प्रभु की शरण होकर जरा और मरण से छूटने का उपाय करता है वह पुरुष निश्चय ही ब्रह्म तथा सम्पूर्ण अध्यात्म को जानने वाला होता है।

38. जो मुमुक्षु प्राणी मात्र का अहैतुक हितैषी हो जाये तो उसको श्रीकृष्ण के चरणकमलों में भक्ति हो जावेगी और तत्पश्चात् अनन्य प्रेम प्राप्त होने

से संसार की समस्त आसक्तियाँ नष्ट हो जावेंगी, वृत्तियाँ शान्त हो जावेंगी और इन्द्रियाँ वश में हो जावेंगी। वह स्वयं भगवत्-स्वरूप हो जावेगा।

39. महात्मा अम्बरीष की दृष्टि में सप्त द्वीप और अखण्ड ऐश्वर्य स्वप्न तुल्य था।

माह जून, सन् 1986

40. प्रभु के चरणकमल किसको प्राप्त होते हैं जानते हो? जिस साधक के द्वारा मनसा, वाचा, कर्मणा कोई भी प्राणी कष्ट को प्राप्त नहीं होता वह ही एक मात्र अधिकारी है।

41. भागवत के श्रवण, पठन और मनन से प्रभु को संतोष होता है। प्रभु पर विश्वास जाग्रत होता है। यह निश्चित बात है कि भागवत के पाठ से सच्चा ज्ञान एवं विमल भक्ति प्राप्त होती है। **मेरी इच्छा ऐसी है कि 'भारतवर्ष' में घर-घर में भागवत विराजमान हो।**

42. भागवत के दर्शन, पूजन तथा पठन और मनन से, मनुष्य का निश्चय ही कल्याण होगा। इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं है।

43. भागवत श्रवण से ज्ञान वैराग्य से युक्त भक्ति प्राप्त होती है और उस भक्ति द्वारा, श्रद्धालु भक्त अपने हृदय में उस परमतत्त्वरूप परमात्मा का अनुभव कर लेता है।

44. प्राणिमात्र अज्ञान के कारण दुःख-सुख का उपभोग करता रहता है। जो इसे अनुकूल जान पड़ता है वह तो इसके सुख का हेतु होता है और प्रतिकूल दुःख का कारण, किन्तु अनुकूल- प्रतिकूल भ्रम मात्र है। जो **कुछ होता है वह काल की प्रेरणा से होता है और वह सदैव मंगलकारी होता है क्योंकि उस का विधान मंगलमय है।**

45. जब तक साधक के हृदय में वासनाओं का निवास है तब तक भगवद्-दर्शन नहीं हो पायेंगे। इसलिये कामनाओं एवं वासनाओं का

समूल नाश होने पर ही साधक का लक्ष्य अर्थात् भगवद्- दर्शन पूरा होगा।

46. आदि पुरुष परमात्मा की माया बड़ी प्रबल है इसी के द्वारा मोहित होकर जीव तीनों गुणों से अतीत होने पर भी अपने को त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यता के कारण होने वाले अनर्थों को भोगता है। इन अनर्थों की शान्ति का साक्षात् साधन है केवल भगवान् का भक्तियोग, इस योग में जीव को भगवान् की शरण लेनी पड़ती है। समस्त धर्मों के त्याग से ही प्रभु की शरण प्राप्त हो जाती है।

47. श्रीमद्भागवत के श्रवण मात्र से पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति परम प्रेममयी भक्ति हो जाती है, जिससे जीव के शोक, मोह और भय नष्ट हो जाते हैं।

48. **श्रोताओं को पालनीय नियमों का ध्यान रखना अनिवार्य है अन्यथा केवल श्रम ही हाथ लगेगा—**

★ श्रोता प्रतिदिन एकबार हविष्यान्न भोजन करें।

★ पतित, दुर्जन आदि का संग तो दूर रहा उनसे वार्तालाप भी न करें।

★ ब्रह्मचर्य पालन व भूमिशयन सबके लिये अनिवार्य है।

★ एकाग्रचित से कथा सुननी चाहिये, जब तक कथा सुनें निश्चिन्त रहें।

★ यदि शक्ति हो, सात दिन उपवास करके कथा सुनें अन्यथा दूध पीकर, सुखपूर्वक कथा सुनें अथवा एक समय फलाहार कर लें।

★ प्रतिदिन कथा समाप्त होने पर भोजन करना उचित है।

★ दाल, शहद, तेल, गरिष्ठ अन्न, भाव दूषित अन्न तथा बासी अन्न का परित्याग करें।

★ काम, क्रोध, मद, मान, ईर्ष्या, लोभ, मोह तथा द्वेष से दूर रहें।

★ श्रोता की निन्दा करना तथा सुनना वर्जित है।

* रजस्वला-स्त्री, चाण्डाल, मलेच्छ, पतित, व्रतहीन, ब्राह्मण द्रोही तथा वेदबहिष्कृत मनुष्यों से वार्तालाप न करें।
* मन में सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा उदारता को स्थान दें।
* श्रोताओं को वक्ता से ऊँचे आसन पर कभी नहीं बैठना चाहिए।

49. महात्माओं का स्वभाव ही ऐसा होता है कि जगत् में दूसरे लोग उन्हें सुख-दुख के द्वन्द्वों में डाल देते हैं, तब भी वे प्रायः हर्षित या व्यथित नहीं होते, क्योंकि आत्मा का स्वरूप तो गुणों से सर्वथा परे है।

50. परीक्षित जी कहते हैं—"मैं आप ब्राह्मणों के चरणों में प्रणाम करके पुनः यही प्रार्थना करता हूँ कि कर्मवश मुझे जिस योनि में जन्म लेना पड़े, भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मेरा अनुराग हो, उनके चरणाश्रित महात्माओं से विशेष प्रीति हो और जगत् के समस्त प्राणियों के प्रति मेरी एक-सी मैत्री रहे। ऐसा आप आशीर्वाद दीजिये।"

माह जुलाई, सन् 1986

51. भक्ति, वैराग्य और चित्त की एकाग्रता से प्रकट ज्ञान के द्वारा उस अन्तरात्मस्वरूप क्षेत्रज्ञ को इस शरीर में स्थित जानकर उस का चिन्तन करना चाहिये।

52. प्रभु राम ने कहा है कि भक्ति पथ में कोई श्रम नहीं। जिसमें योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत आदि कुछ नहीं केवल सीधा स्वभाव हो, मन में छल-कपट न हो, जो मिले उसी मे सदा संतोष करें। मेरा दास होकर दूसरे की आशा न करें, कथा के विस्तार की आवश्यकता नहीं। भाई जिस आचरण से मैं वश में हो जाता हूँ वह सुनो—

बैर, लड़ाई, दूसरे का भरोसा जिसे न हो उसे सब प्रकार सुख होता है। कोई काम न छोड़ें, घर में आसक्त न हों, मान न चाहें, पाप तथा क्रोध न करें। शास्त्र और लोकरीति में चतुर तथा आत्मज्ञानी हों। सदा

सज्जनों से प्रीति व संग करें और सेवा करें। संसारी विषय, स्वर्ग, मोक्ष को भी तृण के समान जानें और बुरे कार्यों को त्याग दें। मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करें।

53. जिस प्रकार स्वप्न में भय-शोकादि का कोई कारण न होने पर भी स्वप्न के पदार्थों में आस्था हो जाने पर दुख उठाना पड़ता है, उसी प्रकार भय, शोक, अहम् एवं जन्म-मरणादि रूप संसार की कोई सत्ता न होने पर भी अविद्यावश विषयों का चिन्तन करते रहने से जीव का संसार चक्र निवृत्त नहीं होता है। अतः विषय चिन्तन में फँसे हुए चित्त को भक्ति और वैराग्य द्वारा अपने वश में लावें।

54. **3 अगस्त 1986 रविवार प्रातः 8 बजे से**— 4 बार प्राणायाम से विधानानुसार आज से 16 बार प्राणायाम कर दिये।

55. **11 अगस्त सोमवार 1986**— आश्चर्य! महान् आश्चर्य यह प्राणी इस शव तुल्य, जड़ शरीर से सुख चाहता है जो नितान्त असम्भव है।

56. **28 अगस्त 1986**— भगवत् धाम वह प्राणी ही पँहुच पाता है जो दिन रात प्राणियों के कल्याण के लिये ही शुभ कर्म करता रहता है। जो समदर्शी, शान्त, शुद्ध और सबको प्रसन्न रखने वाला है, भगवद् भक्तों को ही अपना एक मात्र सुहृद मानता है ऐसे लोग सुगमता से इस भगवद्धाम को प्राप्त कर लेते हैं।

57. **6 फरवरी 1987**— भगवान् को प्राप्त करने के लिये कुछ सहज युक्तियाँ—

(क) प्रथम तो भगवान् पर पूरा विश्वास हो, पूर्ण विश्वास ही प्रभु की आराधना है। परमात्मा में श्रद्धा करना विश्वास तक पहुँचने की **प्रथम सीढ़ी** है। अनुभवी पुरुषों की निस्वार्थ सेवा उनका संग एवं उनकी आज्ञापालन यह **दूसरी सीढ़ी** है। प्रभु की लीला, कथा में अभिरुचि यह **तीसरी सीढ़ी** है। इन तीनों सीढ़ियों द्वारा विश्वास तक पहुँचना निश्चित है।

(ख) श्रीकृष्ण के चरणों में पूर्ण समर्पण यह उनकी शरण लेने पर ही सम्भव है। सब धर्मों के त्याग से शरणागति सिद्ध होती है।

(ग) श्रीकृष्ण के सानिध्य का हर समय अनुभव करना और मानसिक वार्ता करना, अपने आप को उनके सानिध्य में हर समय अनुभव करना।

(घ) भगवत् प्रीत्यर्थ ही कर्म करना। इस प्रकार की रहनी से प्रभु में प्रेम हो जायेगा। प्रेम योग के द्वारा मिलन शीघ्र होगा।

॥ श्रीगुरवे नमः ॥

परम आदरणीय ब्रह्मलीन पंडित श्रीदुर्गा प्रसाद चतुर्वेदी जिन्हें **मोटे गणेश वाले महाराजजी** के नाम से भी जानते हैं। उनसे सम्बन्धित हस्तलिखित 22 पत्र श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। जिनमें से खैर-कुशल के साथ 12 पत्रों में उल्लिखित कल्याणकारी सूत्रों का भी वर्णन किया गया है—

—सम्पादक

पत्रांश

1. दिनांक 2.2.63

हमने आत्म सुख की अनुभूति के लिए एक पवित्र आयोजन किया है। आयोजन ही नहीं अपितु एक मानद नया यज्ञ है। अर्थात् एक भारतीय संस्कृति एवं एक ऐतिहासिक तीर्थयात्रा गाड़ी का प्रबन्ध किया है जिसमें 600 सीटें हैं मार्गव्यय 600 रुपये है। भोजन सहित 800 रुपया मात्र है।

यह स्पेशल गाड़ी 17 मई 1963 को नई दिल्ली से रात के 9 बजे हरिद्वार के लिये प्रस्थान करेगी। 3 धाम, 7 पुरी, 68 तीर्थों को जायेगी। सब कार्य पूरा हो चुका है। इसमें विशेष सत्संग की व्यवस्था भी है, हमने इसमें काफी व्यय किया है और भी करना है। यदि आसानी से चल सको तो लिखना पूरे 53 दिन की यात्रा है अन्यथा आर्थिक आहुति जो दे सको वह दें। एडवांस बुकिंग चालू हो गयी है 200 रुपये एडवांस देने हैं।

2. दिनांक 11.4.67

रामजी का कार्य बड़ी लगन से करते रहो और प्रभु स्मरण होता रहे, ऐसी चेष्टा रखनी चाहिए।

3. दिनांक 16.8.67

निरन्तर श्रीरघुनाथ जी का स्मरण होता रहे ऐसी परिस्थिति प्राप्त करो। विषयों के अधीन न हो जाना। ईमानदारी से कार्य करना तथा असंग रहना।

4. दिनांक 05.1.68

कार्य लगन से करते रहो। चिन्ता की कोई बात नहीं, रामजी ने पहले से ही कोई प्रबन्ध किया हुआ है, समय आने पर सामने आयेगा। प्रभु को न भूलना और कुछ भूल जाओ तो डर नहीं।

5. दिनांक 25.5.68

राम को सदा यदा रखना और राम का कार्य ईमानदारी से करना, इतना ही पर्याप्त है।

6. दिनांक : 15.1.69

भगवान् को कभी न भूलो। संसार में रहो परन्तु संसार अन्दर प्रवेश न करने पाये। रामायण तथा भागवत का अनुशीलन नियम से करते रहो।

7. दिनांक 3.3.69

मैंने यह सोचा नहीं भैया! कि तुम मुझे भूल गये हो। मुझे स्मरण रखते हो यह तुम्हारा अपना कार्य है। फिर मुझे स्मरण रखने से तुम्हें क्या लाभ हो सकेगा? स्मरण तो तुम्हें अपने गुरु महाराज जी का करना चाहिए जिन्होंने तुम्हें सच्चा जीवन जीने का लाभ प्रदान किया है। जैसा कि तुम लिखते हो कि **"मैं उनका जन्म-जन्म का ऋणी हूँ।"** यदि वास्तव में तुम्हारी आत्मा इसको मान रही है तो तुम धन्यवाद के पात्र हो और यदि वाणी ही बोलती है तो काम न चलेगा, भैया।

8. दिनांक 7.4.69

आज समय बड़ा ही अद्भुत चल रहा है। कहीं ओर-छोर नजर नहीं

आता। ऐसे समय में केवल हरिजन ही उभरेगा। राम को मत भूलना **"यह ही एक मात्र पुरुषार्थ है।"**

9. दिनांक 6.10.69

यह ही समय है जिसमें कुछ उन्नति की जा सकती है। यह भौतिक विकास है। साथ ही आध्यात्मिक विकास भी परमावश्यक है जिसमें निर्मल चरित्र की आवश्यकता है।

निर्मल चरित्र की आधारशिला सत्संग और सेवा है। सत्संग जीवन का आधार है। अपने मन वाणी तथा कर्म पर नियंत्रण होना चाहिए, प्रभु स्मरण और स्वाध्याय नियम से होना चाहिए।

10. दिनांक 3.12.69

सब कार्य करते हुए राम को मत भूलो, बस इतना ही करना है चरित्र निर्मल हो।

11. दिनांक 30.3.72

परीक्षा, परीक्षार्थी, परीक्षक एवं परीक्षाफल सभी तो प्रभु के हाथ हैं। हम तो केवल निमित्त मात्र हैं। हम तो उनके हाथ के यन्त्र हैं वह जब जैसे चाहें इसका प्रयोग कर सकते हैं।

12. दिनांक 14.1.74

प्रभु की इच्छा में रहस्य भी होता है और मंगल भी।

महाराज जी द्वारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना हेतु

आवाहन

श्रीरामकृष्ण आध्यात्मिक सेवा समिति, वृन्दावन

(आइए इस आवाहन में तन, मन, धन से सहयोग दें।)

भारत मेरा घर है, और यहाँ के निवासी मेरे कुटुम्बीजन हैं। मैं वास्तविक रूप से **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की धारणा लेकर आपके बीच में आया हूँ। मैं अपने घर को सुन्दर, सुसज्जित, सुव्यवस्थित एवं परिवार को सर्वांगीण रूप से सुखी देखना चाहता हूँ, यह मेरा स्वप्न बहुत प्राचीन है और इसके साकार होने का समय अब आ गया है। मैं निकट से एवं दूर से मानव की हलचल को अध्ययन करता आ रहा हूँ, बहुत प्रयत्न हुए, हो रहे हैं और होंगे, किन्तु मानवीय अशान्ति दूर नहीं हुई, शान्ति किसे नहीं चाहिए? किन्तु हम शाश्वत "शान्ति" चाहते हैं। उसके लिए दो ही कार्य वांछनीय हैं—

1. अपने को पहिचानना। 2. सृजनहार की शक्ति को पहिचानना।

बन्धुओ! केवल मात्र विचार से कार्य नहीं चलेगा, अत: हम आवाहन करते हैं कि हम यह विचारें, कि वह कौनसी युक्ति है? जिससे हम अपने को पहिचानें। उस युक्ति का एक अंश है— अशुभ कर्मों से छूटना और अशुभ कर्मों से छुटकारे का मात्र एक उपाय तीर्थसेवन और सन्त-समागम ही है। साधारण प्राणी नहीं, हमारे अग्रजों ने भी ऐसा ही किया था, धर्मपुत्र युधिष्ठिर भी महाभारत के अन्त में तीर्थ सेवन को गए थे, भगवान् परशुराम भी भयंकर क्षत्रिय संहार के बाद पिता की आज्ञा के अनुसार तीर्थयात्रा को गए थे। मैं

अपने परिवार वालों को निमंत्रित करता हूँ कि इस महान् देश हित के परम पवित्र धार्मिक तीर्थयात्रा के कार्य में निष्ठ होकर लाभान्वित हों, अत: आप सबसे यही प्रार्थना है कि यात्रा सदस्य के रूप में शीघ्रातिशीघ्र अग्रसर हों एवं इस स्वर्णिम अवसर का पूरा-पूरा फायदा उठावें क्योंकि तीर्थसेवन और संत समागम मात्र ही जघन्य अपराधों को मिटाने की कुञ्जी और प्रायश्चित्त है। नहीं तो इस मौके के बाद आप हाथ मलकर यही सोचेंगे कि—

"अब पछिताए होत क्या? जब चिड़िया चुग गई खेत।"

महाराज जी आध्यात्मिक सेवा हेतु
तीर्थ यात्रा का भी संचालन करते थे।

श्रीरामकृष्ण आध्यात्मिक सेवा समिति, वृन्दावन

भारतीय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विशिष्ट तीर्थयात्रा रेलगाड़ी

अन्तर्ध्वनि

(हमारा पुनीत कर्त्तव्य है, कि हम इस अन्तर्ध्वनि को साकार करें)

अहो मधुपुरी धन्या:।

क्या ये समृद्धिशालिनी है इसलिए? क्या ये भारतीय संस्कृति का केन्द्र है इसलिए? क्या ये विद्या का क्षेत्र है इसलिए? क्या ये कला का केन्द्र है इसलिए? क्या यह प्राचीन पुरी है इसलिए? नहीं मेरे भैया! यह कारे कनुआ की जन्मदात्री है इसलिए मेरे यह अरमान थे, कि मैं अपनी अभिन्नात्माओं के बीच में श्रीकृष्ण महिमा, श्रीकृष्ण सेवा एवं श्रीकृष्ण के स्वरूप का सुखद संदेश दूँ। जगद्सृष्टा ब्रह्मा ने भी यह अनुभव किया है, कि श्रीकृष्ण का यशगान ही सर्व शास्त्रों का सार है।

ऐसा ही अनुभव श्रीकृष्ण-द्वैपायन का है उन्होंने सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, पुराणों के सृजन के बाद भी अपने आपको अपूर्ण सा अनुभव किया एवं वह खोए-खोए से बैठे ही हुए थे कि अकस्मात् देवर्षि नारद का आगमन हुआ और उन्होंने प्रेरित किया कि यह अपूर्णता श्रीकृष्ण के यशगान से ही दूर हो सकती है, इसी आधार पर भगवान् व्यास ने श्रीकृष्ण के पावन चरित्र का निर्माण किया, जो हम सबके बीच में श्रीमद्भागवत के रूप में उपस्थित है।

बन्धुओ! मैं यह चाहता हूँ कि जागतिक विषयों से उपराम होकर हम सब श्रीकृष्ण के सन्मुख आवें और अपने जीवन को कृतकृत्य करें।

हमने जो '**भारत तीर्थ दर्शन**' यात्रा का विशाल सत्संगमय परम पवित्र आयोजन किया है (स्पेशल जो कि पूर्व ज्ञापित तिथि के अनुसार 17 मई 1973 वैशाख सुदी 15 संवत् 2030 को नई दिल्ली से रवाना होगी।) उसमें ही समय-समय पर श्रीकृष्ण की महिमा के सम्बन्ध में अनुभूत संकेत दिए जाऐंगे एवं पावन पवित्र कल्याणमय तीर्थों का सेवन होगा। अन्तत: हम यह बता दें, कि यह यात्रा साधारण यात्रा नहीं है। अपितु श्रीकृष्ण के कार्य को सम्पादन करने वाली है। जो श्रीकृष्ण से प्रेम रखते हैं, वह मैदान में आऐं, हम उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं, एवं यह विश्वास दिलाते हैं, कि उन्हें इस अलौकिक यात्रा में श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने की पात्रता अवश्य मिलेगी। अस्तु!

श्रीमहाराज जी आध्यात्मिक कार्यों हेतु तन-मन के अतिरिक्त आर्थिक सहायता भी प्रदान करते थे।

शुभकामना

गोवर्धन निवासी पं. श्री हरचरनलाल जी उपाध्याय द्वारा रचित श्रीमद्भगवद्गीता पद्य भाष्य प्रकाशन के उद्देश्य से मेरे पास अब-लोकनार्थ प्रस्तुत की गई थी लेखक का प्रयास सराहनीय है। इस पुस्तक से वैष्णव जन अत्यन्त लाभान्वित होंगे, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

यह पुस्तक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द की वाणी है। मानव मात्र के कल्याण के लिए साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण का उपदेशामृत है। जिसे लेखक ने अत्यन्त सुन्दर एवं सरल भाषा में पंक्तिबद्ध किया है। सामान्य व्यक्ति को भी इसे पढ़ने, समझने तथा कंठस्थ करने में और अधिक सरलता तथा सुगमता होगी— ऐसी आशा के साथ—

—दुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी

2

श्रीदिनेशचन्द्र गर्ग द्वारा

समय-समय पर

पूज्य सद्गुरुदेव द्वारा

दिए गए प्रवचनों का

अद्भुत संग्रह

श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग द्वारा समय-समय पर पूज्य सद्गुरुदेव द्वारा दिये गये प्रवचनों का अद्भुत संग्रह

1. परमात्मा विश्व का मूल है

दिनांक 25.05.1984

मूल जब वृक्ष के रूप में परिवर्तित होता है तो अनुसंधान का विषय होता है, समय आने पर वह स्वतः ही अनन्त रूप में प्रकट होकर सार्वजनिक रूप से नेत्रों का विषय तथा रस प्रदान करने वाला होता है। इस प्रकार परमात्मा विश्व का मूल है, जब विश्व के रूप में फैल जाता है तब साधक उसका पता पा जाये ऐसा देखने सुनने में नहीं आया। क्योंकि उसके प्राकट्य का भी समय निर्धारित होता है तब वह अव्यक्त से व्यक्त हो जाता है और साधक की माँग पूरी हो जाती है।

2. सुख-शान्ति की खोज

दिनांक 26.05.1984

सुख व शान्ति किसको नहीं चाहिये। प्रयत्न करने पर भी जब हाथ कुछ नहीं लगता तो बड़ी निराशा होती होगी। मात्र कारण अज्ञान है। प्रिय बन्धु! भौतिकता जो दुःख का ही दूसरा नाम है उसमें सुख की कल्पना? यह तो वंध्या सुत का विवाह वंश वृद्धि के लिये होता जैसा ही प्रतीत होता है। सुख का आश्रय तो एक आत्मा है। आत्मानुभूति के लिए कृतसंकल्प होना अनिवार्य है। केवल यहाँ संकेत देना ही आवश्यक समझते हैं। आत्मा सम और निर्दोष है।

3. ईश्वर विमुखता ही सकल व्याधियों की जननी है

दिनांक 27.05.1984

अस्वस्थ शरीर की अवस्था से कौन अवगत नहीं है। लौकिक रंजन से पूर्णत: वंचित और आधि व्याधि चिर संगिनी बन जाती हैं और निरन्तर उत्पीड़न की अनुभूति, कितना हृदय विदारक दृश्य है। रुग्ण मन का तो अकथनीय इतिहास है। निरन्तर भोग संग्रह की दौड़ धूप, विलासी जीवन एवं मानसिक व्यथाओं से सर्वदा ही जूझते रहना, परिणामत: ईश्वर विमुखता ही हिस्से में आती है। जो सकल व्याधियों की जननी है। यदि आनन्द की अपेक्षा है तो इन्द्रिय संयम, मन पर निर्मल बुद्धि द्वारा नियंत्रण और अन्तराभ्यास परमावश्यक है।

4. जीवन क्या है ?

दिनांक 28.05.1984

जीवन वही है जिसके साथ मरण न हो, राग-द्वेष न हो, कामादि विकार न हो, अभाव का अभाव हो, हर्ष-शोक न हो, अहंता-ममता न हो। वास्तव में जीवन तो इसी अवस्था का नाम है। यह अवस्था क्या प्राप्त हो सकती है? इसका उत्तर है "अवश्य"। स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द आदि महानुभावों की सदा यही अवस्था रहती थी। ऐसे व्यक्ति आत्मलाभ को ही लाभ मानते हैं। आत्म सन्तोष, आत्मरमण ही मात्र कार्यकलाप रहता है।

5. आत्मा ही ब्रह्म है

दिनांक 29.05.1984

यह आत्मा ही ब्रह्म है। इसकी अनुभूति ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। काम परायणता भोग लिप्सा से सम्बन्ध विच्छेद करके ही अध्यात्म साधना सम्भव हो सकती है। प्रिय बन्धु! ऐसा समझ कर ही, कि यह शरीर मिथ्या है किन्तु भ्रम से सत्य प्रतीत हो रहा है, साधना करनी चाहिए। साधन सम्पन्न व्यक्ति के हृदय में ही ईश्वर-विश्वास एवं प्रेम होता है। तत्पश्चात् ईश्वर-अनुभव होता है। केवल बातों से कुछ होने वाला नहीं है।

6. आनन्द की अनुभूति

दिनांक 30.05.1984

उत्पत्ति के साथ विनाश जुड़ा हुआ है। मनुष्य का जन्म होता ही मरण के लिए है। कुछ अवधि मिलती है इस मनुष्य शरीर को परन्तु संसार के गोरख धन्धे में अपना विवेक खोकर भौतिकता का वरण कर लेता है वह और समग्र जीवन इसी ऊहा-पोह में समाप्त हो जाता है। अन्तिम क्षणों में अपनी भूल का अहसास होता है, किन्तु बहुत विलम्ब के बाद पश्चाताप के सिवा शेष कुछ नहीं रहता। परलोक यात्रा के लिए बाध्य होना पड़ता है और वह भी अकिंचन अवस्था में। हमारे विचार में लौकिक उन्नति, उन्नति नहीं बल्कि पतन है। वास्तव में उन्नति का स्वरूप सत्-चित्-आनन्द की अनुभूति है।

7. समर्पण

दिनांक 31.05.1984

इस संसार में प्राय: देखने में आता है कि कोई भी प्राणी सुखी नजर नहीं आता। जिन व्यक्तियों को कुछ बोध है और सुख शान्ति के लिए प्रयास करते हैं वह भी इस समस्या का समाधान नहीं पा सके, कोई तो धन में शान्ति को खोजता है, कोई यश में, कोई भोगों में, कोई संतति में, किन्तु निराश ही होते देखे गये हैं। ऐसा क्यों ? कुछ ऐसा वर्ग भी है जो दु:ख को ही सुख मानता चला आ रहा है। इस सबका आखिरी कारण केवल अविद्या है। यह मानव जगत् इसी की सीमा के अन्तर्गत है। अनुभवी पुरुषों ने इसका उपाय बताया है "समर्पण"।

8. जीवन सफल कैसे हो ?

दिनांक 01.06.1984

जब वह हँसती है, तब हँसता है, रोती है तब रोता है, बोलती है तब बोलता है, बैठती है तब बैठता है, चलती है तब चलता है, सोती है, तब सोता है। यह इतिहास है नारी के क्रीड़ा मृग का—जिसने अपने हाव-भाव तथा

नयनों के कटाक्ष एवं छल कपट द्वारा मनुष्य को अपना दास बना लिया। क्या यह जीवन अभिशाप नहीं है? इस मोह निद्रा से शीघ्र ही जागना आवश्यक है अन्यथा इस परम्परा में युगों-कल्पों-जन्म-जन्मान्तरों का भी पता नहीं लगेगा। यदि, मनुष्य ने जो कुछ अभिमान के प्रांगण में सीखा है वह कोरा अज्ञान है, उसे भूल कर सत्पुरुषों का संग करें तथा शास्त्रों का अनुशीलन करें तो जीवन सफल हो सकता है।

9. जीवन सार्थक कैसे हो?

दिनांक 02.06.1984

जीवन सार्थक बने, ऐसी कामना है तो दैवी सम्पदा को स्वीकार करो और आसुरी का पूर्ण त्याग परमावश्यक है। दैवी सम्पदा ही प्रभु के अनुभव करने का एकमात्र मार्ग है अन्य सब मार्ग अधूरे हैं। भक्ति, कर्म तथा ज्ञान इनका सामंजस्य ही राज मार्ग है और निर्विघ्न है। अनुभवी पुरुषों की यह घोषणा है कि पूर्ण आनन्द तो वहाँ है जहाँ दूसरी भावना किंचित् मात्र न हो। केवल एकत्व ही चरम सत्य है ऐसी निष्ठा हो।

10. क्लेश, अशान्ति व चिन्ता से छुटकारा

दिनांक 03.06.1984

निरन्तर क्लेश, अशान्ति, चिन्ता का ही अनुभव हो। प्राणी को इससे सर्वदा के लिए छुटकारा मिल सकता है, निश्चित सुनिये। पहले तो अनभिज्ञता के दोष से मुक्त हों, तत्पश्चात् साधना में जीवन को लगा दो। यह ध्यान रहे मौखिक ज्ञान से तो असफलता ही हाथ लगेगी। केवल आत्मानुभूति ही अपेक्षित है। शरीर से इन्द्रियाँ परे हैं, इन्द्रियों से मन परे है, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे आत्मा है। उस पार पहुँचने पर नित्यानन्द मिलेगा। सर्वप्रथम कर्म कौशल को प्राप्त करो।

11. साधना के पाँच स्तम्भ

दिनांक 04.06.1984

साधना मन्दिर जहाँ पर आत्म दर्शन होता है उसके पाँच स्तम्भ अनुभवी महापुरुषों ने बताये हैं।

1. समानचित्त, 2. परमशान्त, 3. परहित चिन्तन, 4. सदाचार सम्पन्न और 5. क्रोधहीन। इनको जीवन में लाने के लिये कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझा गया।

1. **समानचित्त :** प्रकृति की हलचल चित्त को प्रभावित न कर सके।
2. **परमशान्त :** कभी उद्वेग को प्राप्त न हो।
3. **परहित चिन्तन :** दूसरों का हित ही उनका सहज जीवन होता है। ऐसे जीवन के उदय के साथ ही आत्मदर्शन होता है। बन्धु! क्रियात्मक जीवन अपेक्षित है।
4. **सदाचार सम्पन्नता :** जीवन का सार ही सत्य हो।
5. **क्रोधहीन :** क्रोध का सर्वदा के लिए अन्त हो जाना।

12. आत्म दर्शन

दिनांक 05.06.1984

सारा जग ही इन्द्रिय सुख की अनुभूति में व्यस्त है और साधन जुटाने की चिन्ता में निमग्न है। यह सब बहिर्मुखता का परिणाम है। आनन्द के लिए किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं। इसके लिए पहले अन्तर्मुख होना आवश्यक है। तत्पश्चात् प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों एवं विषयों का सम्बन्ध समाप्त करना पड़ेगा तब स्वाधीन अन्तःकरण होने पर ही लक्ष्य का निर्धारण हो पायेगा। लक्ष्य के सर्वदा सामने रहने पर ही अध्यात्म साधना क्रियात्मक रूप से चरितार्थ होगी और आत्मदर्शन होगा।

13. आनन्द के मुख्य केन्द्र

दिनांक 06.06.1984

स्थाई आनन्द का केन्द्र श्रीकृष्ण हैं। अतः उनके दर्शन से ही स्थाई आनन्द प्राप्त होता है। बड़े आश्चर्य की बात है वह सर्वत्र, सर्वदा, समान रूप से विराजमान है, किन्तु दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। आश्चर्य, महान् आश्चर्य! आइये विचार करें, आखिर नजर क्यों नहीं आता? बन्धु! कृतसंकल्प नहीं। दूसरे आँखों से, परनारी अवलोकन तथा चिन्तन से मोतियाबिन्द हो गया है और हृदय अनेक प्रकार की अशुभ वासनाओं से मलिन है। अतः उस रूप माधुरी से मानव वंचित है।

14. सर्वत्याग से ईश्वर साक्षात्कार

दिनांक 07.06.1984

बन्धुओ! यह मानव शरीर भोगों के लिए नहीं है, यह तो तप तथा त्याग के लिए है। हमारे विचार में तो सर्वत्याग से ही ईश्वर साक्षात्कार निश्चित है। आइये सर्वत्याग को समझें। विचार करने पर ज्ञात होता है कि समस्त विघ्नों का मूल कारण अहंकार है, इसके त्याग में ही सर्वत्याग निहित है। अहंकार से तात्पर्य है कि देह को आत्मा समझना। इसके अभाव में ईश्वर दर्शन होता है।

15. ईश दर्शन

दिनांक 08.06.1984

लौकिक वैदिक कर्मों में फँसे हुए मन में सदा ही कर्म वासना रहती है जो देह बन्धन का कारण है। प्रभु तो कहीं जाते नहीं किन्तु हमें मिलने का अवसर नहीं मिलता। यदि ईश्वर मिलन का महत्व जीवन में हो तो मिलन हो ही जाता है। जब हम देखते हैं तो पता चलता है ईश्वर की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। लीजिए हम आपका मार्गदर्शन करते हैं, समस्त इन्द्रियों की क्रियाओं को मिथ्या देखिए।

16. सत्संग की त्रिवेणी

दिनांक 09.06.1984

ऐसी अवस्था को प्राप्त करो जहाँ कुछ जानना, करना अथवा प्राप्त करना शेष न रहे। सर्वप्रथम मानव को साधक कोटि में आना पड़ेगा, विषयी जीवन को त्याग कर, तत्पश्चात् कोई दोष न रहे, ऐसा साधन जुटाना होगा। उस अवस्था को प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए प्रेम, सेवा, त्याग का होना जीवन में आवश्यक है। इसका त्रिवेणी संगम केवल सत्संग में ही निहित है। जागो, उठो, चलो और लक्ष्य को प्राप्त करो।

17. कल्याण की विधि

दिनांक 10.06.1984

कल्याण का तात्पर्य आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति एवं पूर्णानन्द की प्राप्ति है। कौन पुरुष ऐसा है जो कल्याण नहीं चाहता? विचार कर देखिए। संसार में मनुष्य अपना आप ही शत्रु है और आप ही मित्र है दूसरा कोई नहीं। जिसने अपना शरीर व इन्द्रियों को जीत लिया वह मित्र है, नहीं जीतने वाला शत्रु है वस्तुतः मनुष्य मोहवश राग-द्वेष में लिप्त और ईश्वर विमुख होकर जीवन भर काम के सम्पादन में लगा रहता है। अन्त में नरकगामी होता है। बन्धुओ! निष्काम होकर प्रभु के लिए कर्म करो। इस रीति से सर्व संकल्पों से मुक्त होकर कल्याण स्वरूप हो जाओगे।

18. आत्मानुभूति

दिनांक 11.06.1984

आत्मदर्शन से ही दुःखों की निवृत्ति होती है। साधक को अपने आपको दर्शनों के योग्य बनाना चाहिए। योगी को ही जीवन में सफलता मिलती है। योग धारण की सिद्धि यथायोग्य जीवन में निहित है अर्थात् न अधिक खाने वाले का, न अधिक भूखे रहने वाले का, न अधिक सोने वाले का, न अधिक जागने वाले का। इसका तात्पर्य यह है कि युक्ताहार और विहार अपेक्षित है।

तत्पश्चात् बुद्धि की सूक्ष्मता के लिए शमन की आवश्यकता है। इन्द्रियों का दमन, तप, दया, तितिक्षा, सत्य तथा ज्ञान एवं वैराग्यादि सम्पत्ति से जीवन को अलंकृत करो और आत्मा को परमात्मा में अभ्यास द्वारा लगाकर लक्ष्य प्राप्त करो।

19. परमानन्द की अनुभूति

दिनांक 12.06.1984

विचार कर देखने से पता चलता है कि नाना प्रकार के क्लेश, अशान्ति एवं दु:ख का हेतु केवल आपका अपना मन है, दूसरा कोई नहीं। यह अनेक वासनाओं और छल-कपट के कारण अपवित्र हो गया है। अब चाहे इसी क्षण, सम्पूर्ण वासनाओं तथा छल कपट का त्याग कर दीजिए इसका परिणाम क्या होगा? आपका मन निर्मल हो जायेगा। आप देखेंगे जिस मन ने आपकी आज्ञा का पालन कभी नहीं किया, आपको सदा धोखा दिया और दु:खी रखा, वही मन आपका दास हो जायेगा और आनन्द का दाता बन जायेगा। इसकी असत्य मान्यतायें त्याग देगा और सत्य को स्वीकार करेगा और अपने स्वरूप में स्थित हो जायेगा। उसी समय आपको परमानन्द की अनुभूति होगी।

20. अहंता ममता का त्याग

दिनांक 13.06.1984

हजारों मनुष्यों में कोई विरला ही प्रभु से मिलने का प्रयत्न करता है और प्रयत्न करने वालों में कोई विरला ही ईश्वर परायण होता है। इस आत्मपरायण प्राणी के ही रागादि कर्म बीज नष्ट होते हैं। सामान्यत: अनेक जन्मों तक घट चक्र में घूमते रहना ही पड़ता है। पूर्व बौद्धिकों में ऐसा संकेत दिया जा चुका है कि समर्पण आध्यात्मिक साधना के लिये अनिवार्य है। समर्पण जो होता है वही फलदायक होता है उसके लिये अहंता ममता का पूर्णतया त्याग हो तत्पश्चात् सब बाधायें हट जायेंगी अर्थात् भय, लज्जा एवं आसक्ति से मुक्त जीवन हो जायेगा और साधना का मार्ग प्रशस्त निश्चय ही होगा।

21. दृष्टिकोण बदलें

दिनांक 14.06.1984

अवैदिक स्वेच्छाकृत प्रवृत्ति की प्रबल धारा में अचेत हुआ न जाने बहता हुआ कहाँ पहुँचेगा? ऐसा देखते हैं कि यह मानव जिसका बोध त्रिगुणमयी माया द्वारा हरण हो गया है। उसे निषिद्ध कर्मों की निरन्तर पुनरावृत्ति से मूढ़ता मिली और आसुरी स्वभाव भी। ऐसी अवस्था में यदि ईश्वर को अपवाद मात्र माना जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। लगता है कि ईश्वर की जीवन में कोई महत्ता ही नहीं दिखती। समय-समय पर भौतिक आवश्यकताओं से सब काम चल जाते हैं। धन ही और भोग ही सर्वस्व प्रतीत होते हैं और उनका अर्जन करना ही मात्र एक कार्य है, शेष कुछ नहीं। परन्तु बन्धुओ! दु:ख, अशान्ति, क्लेश व रोगादि का तो नित्य अनुभव होता है। इससे यह स्वत:सिद्ध है कि आपने गलत मोड़ लिया है अत: शीघ्र दृष्टिकोण को बदलिये और सत्पुरुषों का संग कीजिए एवं लक्ष्य को प्राप्त कीजिए।

22. वासुदेवः सर्वम् इति

दिनांक 15.6.1984

प्रमादवश मनुष्य कुकर्म करता है, इससे उसकी धारणा इन्द्रियों को तृप्त करना मात्र ही है। यह तो सब ही प्राय: जानते हैं कि भोग तो विष्ठा भोगी शूकर, कूकरादि योनियों में भी मिलते हैं। यह मानव देह नाशवान होते हुए भी अत्यन्त मूल्यवान है इससे परमार्थ को प्राप्त किया जा सकता है। विचार द्वारा यह पता चलता है कि यह भ्रान्ति भेद स्वनिर्मित हैं इनको मिटाया जा सकता है। जैसे बच्चे जब घूमते हैं तो उनको घर घूमता नजर आता है। रेल यात्रा के समय वृक्ष दौड़ते नजर आते हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हैं। बालक घूमता है घर नहीं, रेल दौड़ती है वृक्ष नहीं। बन्धुओ! जैसे बादल, भाप, धूप, पानी और बर्फ यह सब जल स्वरूप है ऐसे ही अधियज्ञ, अधिभूत, अधिदेव यह सब वासुदेव स्वरूप ही हैं। नानात्व को त्याग कर एकत्व में निष्ठा रखने से लक्ष्य की प्राप्ति हो जायेगी।

23. परमात्म चिन्तन

दिनांक 16.06.1984

जो परमात्मा सर्वत्र, सर्वदा समान रूप से विराजमान है वह हर प्राणी के अन्त:करण में निवास करता है किन्तु महानाश्चर्य की बात है कि हम उनके दर्शनों से वंचित हैं। आओ, विचार करें कि इसका क्या कारण है? तो ऐसा प्रतीत होता है कि साधनहीनता के कारण उनमें विश्वास ही नहीं है। इसके अतिरिक्त कृत संकल्प नहीं। अन्त:करण मल, विक्षेप तथा आवरण से आच्छादित है। ऐसी स्थिति में साक्षात्कार कैसे सम्भव हो सकता है? अब साधन के सम्बन्ध में अवगत कराना आवश्यक समझकर कुछ संक्षेप में इंगित किया गया। बन्धुओ! मन को शुद्ध करके निरन्तर परमात्मा में लगाओ। उनके नाम, गुण, प्रभाव का श्रवण, कीर्तन, मनन एवं पठन-पाठन द्वारा भजन करो। प्रेम से पूजन करो और साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करो। लक्ष्य अवश्य प्राप्त होगा।

24. सत्संग ही जीवन का सार है

दिनांक 17.06.1984

इस जगत् की कोई सत्ता नहीं, यह अविद्या द्वारा कल्पित है। वास्तव में तो दु:ख-सुख नाम की कोई चीज है ही नहीं फिर भी अनुभव में आती है ऐसा केवल भ्रम से होता है। आइये निश्चय करें कि आनन्दानुभूति करनी है। इसके लिए कृत संकल्प होना अनिवार्य है। सर्वप्रथम जानो, फिर मानो तत्पश्चात् अनुभव करो। इसके लिए निश्चयात्मिका बुद्धि परमावश्यक है। अन्त:करण में जो अनेक कामना वासना हैं, उनका पूर्ण त्याग हो, तब बुद्धि निश्चय करने में समर्थ होगी। इसके बाद में आपको सत्संग सेवन करना होगा। केवल सत्संग से ही आनन्द की उपलब्धि होती है। अन्य किसी मार्ग से नहीं। भगवान् के इस उद्घोष को सदा याद रखो, "मैं यज्ञ, तप, दान, वेद अध्ययनादि से नहीं मिलता। केवल सत्संग से ही सुलभ हूँ" अत: सत्संग ही जीवन का सार है जिससे आत्मानुभूति होगी।

25. जीवन छाया के समान है

दिनांक 17.06.1984

जीवन एक छाया के समान है। उत्पन्न हुआ, बचपन आया, चला गया। इसी क्रम से किशोरावस्था का आगमन फिर तरुण अवस्था तत्पश्चात् वृद्धावस्था जो साथ में मरण का सन्देश लाई। कुछ समय बाद जीवन दीपक स्वप्नवत् अदृश्य हो गया। समीक्षा चली, (जब रिक्तहस्त गये), गमनावस्था भी आगमन के समान ही देखी गई, मध्यावस्था में जीवन निरत ही देखा और कुछ नहीं। वास्तव में जिस देह को सर्वथा मेरी-मेरी सम्बोधन करता रहा उसके द्वारा सुख की लालसा सँजोये रहा। घर, सम्पत्ति, परिवार जो समस्त जीवन के श्रम का परिणाम है उसको भी छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। जिस देह के अभिमान में क्या कुछ अनर्थ नहीं किए, उसने भी साथ नहीं निभाया। बन्धु! हम आपको बता दें मिलने योग्य तो परमात्मा है जो प्राणी मात्र का जीवन है जिसमें हम सब जी रहे हैं किन्तु भूल की भूल में सदा भूले रहे। ओह! कितना घोर अपराध बन गया।

26. नाम-कीर्तन का प्रभाव

दिनांक 18.06.1984

नाम-कीर्तन, गुणों के श्रवण एवं प्रभु के प्रभाव का मनन करने से देखिए मन पर प्रभाव पड़ता है या नहीं। यदि परमात्मा में प्रेम, विश्वास और भक्ति जाग्रत हो गई तो आनन्द का अनुभव प्राप्त करेंगे और जन्म-मरण से मुक्त होकर प्रभु के चरणों में स्थायी स्थान प्राप्त कर लेंगे। किन्तु ऐसा होता नजर नहीं आ रहा है। जैसे अन्य लौकिक कार्य-कलाप होते हैं ऐसे ही आपका तथाकथित भजन है जिससे अनुभव का अनुभव नहीं हो पाता। बन्धु! यह चिन्तनीय विषय है। कहाँ भूल हो रही है उसका अविलम्ब निराकरण कीजिए। आप जानते हैं दो काम एक साथ नहीं होते, संसार का सुख एवं आनन्द एक साथ मिले। आपके मलिन मन से जो प्रयत्न होगा वह निष्फल होगा। अत: धारणा के द्वारा पूर्णत: निष्पाप हो जाइये अर्थात् ऐसी धारणा

कीजिए कि प्रभु अजन्मा, अनादि एवं सर्व लोकों के महेश्वर हैं। आप सकल पापों से मुक्त हो जायेंगे फिर उपासना करके लक्ष्य प्राप्त करें।

27. सर्वभूतहितेरता:

दिनांक 19.06.1984

वह नारायण सब भूतों के हृदय में स्थित, सब का आत्मा एवं सब भूतों का आदि, मध्य, अन्त वह ही है, फिर वह अनुभव में क्यों नहीं आता? वह इतना निकट है। तुलनात्मक दृष्टि से शरीर भी हम से दूर है उससे हमारा वियोग होता ही नहीं किन्तु अज्ञान अन्धकार के कारण अनुभवगम्य नहीं हो पाता। आप सांसारिक इच्छाओं से पृथक् होकर उनसे मिलने की इच्छा करिये। उनकी अनुकम्पा से सत्संग प्राप्त होगा। तत्पश्चात् आप को सत्य के सेवन से उनकी प्राप्ति का मार्ग मिलेगा अर्थात् आप अपने जीवन को उनको समर्पित करके निरंतर उनको भजिये फिर वह बुद्धि योग प्रदान करेंगे जिस योग के द्वारा उनका अनुभव होगा और आप सर्वदा के लिए कृत-कृत्य हो जायेंगे।

28. लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग

दिनांक 20.06.1984

विचार कीजिये-निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता, पथ भ्रष्टता मानव के उद्देश्य की पूर्ति करने में सक्षम नहीं है तो मानव के अन्तस्तल से निश्चितरूप, नकारात्मक ही उत्तर मिलेगा। तब वह कौनसा मार्ग है जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। बन्धु! अनुभवी पुरुषों का सर्वदा एक ही मत है और मूढ़ बुद्धिवालों के अनेक मत और अनेक मान्यताएँ कल्पित की हुई हैं। अत: निश्चित किया हुआ मोक्ष मार्ग तो शास्त्र आज्ञापालन से ही बुद्धिगम्य होगा। समय बहुत कम है अत: आप अनुभवी पुरुषों के सामने अपनी समस्या को निष्कपट भाव से रखें तब समाधान मिलेगा क्योंकि उनका जीवन शास्त्रमय होता है। देखिये-जो लोग मन पर ही विश्वास करते हैं वह तो काल के कलेवा मात्र हैं और

कुछ नहीं। हमारे सम्मुख दो वस्तुयें हैं—जगत् व जगत्पति। जगत्पति की शरण ग्रहण करने से लक्ष्य की प्राप्ति होती है, जगत् से असम्भव है।

29. श्रद्धा-विश्वास का फल

दिनांक 21.06.1984

प्रिय बन्धुओ! वेदमार्ग ही एक मात्र मार्ग है और सब कल्पित हैं जिनके अनुसरण करने से मनुष्य पतन को प्राप्त होता है। वेद प्रभु की वाणी है। इसके अनुसार आचरण करने से मानव अपने लक्ष्य को निश्चित प्राप्त कर लेता है यह नि:सन्देह सत्य है। वेद आज्ञा है कि मनुष्य को निर्दोष होकर ब्रह्म स्वरूप ही हो जाना, करने योग्य कर्त्तव्य है। भैया! प्रभु को प्रसन्न करने के लिए श्रद्धा तथा विश्वास के सुमन चाहिए। फिर आप उनका साक्षात्कार करिये, तत्त्व से जानिये अथवा प्रवेश कीजिए। तत्त्व से जानिये सब कुछ संभव है। श्रद्धा से ही विश्वास उदय होता है और श्रद्धा पूर्वक उनकी लीला, कथा नियम से सुनो, गुणों का कीर्तन करो और सत्पुरुषों का संग करो। ऐसा करने से श्रद्धा का उदय होगा और तत्पश्चात् आपको लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा।

30. प्रभु अपने हैं

दिनांक 21.06.1984

भैया! श्रीकृष्ण अपने हैं, अपने जीवन हैं, प्राण हैं, अपने सगे हैं; अपनी निधि हैं फिर वह न मिलें, सम्भव नहीं। ईमानदारी की बात तो यह है कि हमने उन्हें स्मरण ही नहीं किया। उनको अपना ही नहीं माना। सदा ही पराया माना। अत: उनसे वंचित रहे और अब भी वह कहाँ हैं? ज्ञात नहीं। आप यह सोचते होंगे कि अब श्रीकृष्ण चले गये किन्तु ऐसा है नहीं। यह तो उनकी प्रतिज्ञा है कि ब्रज छोड़कर कभी नहीं जाऊँगा। यदि आप उनको देखना चाहते हो तो नेत्रों को उनके लिए मार्ग में बिछाइये। जैसी आपकी जग से ममता है, विषयों से आसक्ति है ठीक वैसी ही ममता तथा आसक्ति हो। उनसे वियोग का ध्यान आते ही हृदय तड़प जाये, हृदय भर आवे और रुदन चल

पड़े तो मिलने में देर नहीं लगेगी। आप उनकी जग मोहिनी सूरत को अवश्य देखेंगे।

31. आदि पुरुष का संकल्प

दिनांक 22.06.1984

बन्धुओ! जिसको जिज्ञासा होती है उसे ही जिज्ञासु कहते हैं। अर्थात् यह जगत् क्या है? मैं कौन हूँ? और इसका उत्पत्ति करने वाला कौन है? यह सुख-दु:ख क्या है? जीवन-मरण क्या है? यही स्वरूप जिज्ञासा का है। यह तो निश्चय है कि बिना जिज्ञासा के अन्धकार से हट कर प्रकाश में आना सम्भव नहीं। लीजिये आप के सामने कुछ रहस्य का उद्घाटन करें। यह जगत् तो स्त्री पुरुष प्रकृति के संयोग का प्रतिफल है। विचारिये मैं कौन हूँ? यदि शरीररूपी ब्रह्माण्ड में मैं की खोज करेंगे तो मैं नाम की कोई वस्तु नहीं मिलेगी अर्थात् कुछ है ही नहीं। उस आदि पुरुष का संकल्प ही जगत् है। सुख-दु:ख तथा जीवन मरण केवल कल्पना मात्र है तत्त्वत: कुछ भी नहीं। सम्पूर्ण समाधान तो केवल सत्संग से ही हो पायेगा। अत: आप सत्संग सेवन का नियम ग्रहण करें तब समस्या का समाधान होगा।

32. शरीर की तीन गतियाँ

दिनांक 23.06.1984

बन्धुओ! कर्म तो अज्ञान में कल्पित है। इनके द्वारा नित्यानन्द की प्राप्ति नहीं होती उसका आत्मज्ञान ही हेतु है। भैया! आत्म ज्ञान किसी अन्य कारण से उत्पन्न नहीं होता, यह तो स्वत: सिद्ध है। यह उसी को मिलता है जिसकी देहाभिमान, रूप, हठ, हृदय-ग्रन्थि छूट गई है जो सबका सुहृदय, बैरहीन, सबकी आत्मा है। हृदय-ग्रन्थि छूटने के लिए निरन्तर अन्तराभ्यास की आवश्यकता है और देहावस्था पर गम्भीर विचार भी नियम से करना आवश्यक है। आइये! विचार करें जिस देह का अभिमान है, वह क्या है? यह तो अपवित्र वस्तुओं का संघात मात्र है और इसकी तीन ही गति हैं। या तो कीड़े

पड़ेंगे या भस्म की ढेरी अथवा मल के रूप में मिलेगा, फिर आप इसका अभिमान करें, यह खेद की बात है।

33. मिथ्या अभिमान का नाश

दिनांक 24.06.1984

बन्धुओ! मुमुक्षु की दृष्टि में यह शरीर पंचभूत, इन्द्रिय तथा अन्त:करण का संघात केवल अविद्या का कार्य मात्र है और यह विविध अंगों से युक्त दिखने पर भी वास्तव में है नहीं। ऐसी धारणा स्थाई हो जाने पर इस देह में जो 'मैं' मेरेपन का मिथ्या अभ्यास हो गया है वह सर्वदा निवृत्त हो जाता है और वह ब्रह्म रूप हो जाता है। किन्तु जिस दृष्टि का हमने ऊपर संकेत दिया है वह अवस्था केवल सत्संग के द्वारा ही प्राप्त होगी। यह पूर्णत: सत्य है। सर्वप्रथम आपको योग्यता प्राप्त करने के लिए नियम से ब्रह्म महूर्त में शैय्या त्याग करनी चाहिए और शौचाचार का कठोरता से पालन करना अनिवार्य है फिर आप सावधान होकर चलें। आपका मन असत्य चिन्तन न करे, वाणी से असत्य भाषण न हो एवं असत्य कर्म न हो। ऐसी रहनी वांछनीय है।

34. आत्म ज्ञान की प्राप्ति

दिनांक 25.06.1984

बोझ जैसी बात तो ढोने वाले के लिये है और मार्ग चलने वाले के लिये है। भूख-प्यास, हर्ष-शोक, इच्छा, राग-द्वेष तो देहाभिमान लेकर रहने वाले जीव में देखे जाते हैं। जीवन-मरण का सम्बन्ध तो विकारी पदार्थों में नियमित रूप से आता है क्योंकि वह आदि अन्त वाले हैं। बन्धु! आत्मा तो इन धर्मों से सदा ही परे है। जिज्ञासु को आत्मवेत्ता होना चाहिए तभी शान्ति व सुख का अनुभव हो सकता है अन्यथा केवल यह सब अरण्य रोदन के समान ही है। हमने अपने पूर्व बौद्धिक में संकेत दिया है कि आत्मज्ञान किसी कारण से नहीं होता यह तो स्वत: सिद्ध है कि इसके लिये क्रियात्मक जीवन अपेक्षित है सर्वप्रथम साधक को जितेन्द्रिय तथा सत्य-वक्ता होना अनिवार्य है तब ही आत्म ज्ञान की आशा हो सकती है।

35. जीवन का उद्देश्य

दिनांक 26.06.1984

मानव जीवन का उद्देश्य तो भगवत् प्राप्ति है। किन्तु तीनों गुणों के द्वारा भ्रमित किये जाने पर, लक्ष्य दूर हो जाता है और भौतिक जगत् के वन में मार्गच्युत हो जाता है और निरन्तर कामनाओं के पीछे भागना पड़ता है। देखा गया है, कामनाओं का अन्त नहीं है और न ही कुछ प्राप्त होता है। केवल धोखा ही धोखा शेष रहता है अतः मनुष्य को चाहिये अपने साहस को बटोरकर, चित्त को संयम में लगावे और सत्य का सेवन करे। कुछ ही समय में अनुभव होगा कि संसार में अरुचि होकर, उपरामता की ओर मन अग्रसर हो रहा है। लगता है सब कुछ स्वतः ही हो रहा है। आप नियम से श्रीकृष्ण का ध्यान करने का व्रत लें, कुछ ही काल में बुद्धि कृष्णमय हो जायेगी और इन्द्रियों का सन्तुलन होने लगेगा। मन सूक्ष्मता की ओर बढ़ेगा और प्रभु प्रेम उदय होगा।

36. परमधन श्रीकृष्ण हैं

दिनांक 27.06.1984

बन्धुओ! मन को धोखा हुआ है यह संसार जो एक स्वप्न है उसमें सुख दीखता है। भोगों के पीछे दौड़ना कितनी लज्जा की बात है, इनसे तो केवल रोग ही मिलते हैं केवल रोग। क्या धन से भी किसी को शान्ति मिली है? असम्भव। यह तो नाशवान है, अस्थाई है। इसके अभाव में चिन्ताओं से घिरा रहना, प्राप्त करते समय अधर्म का आचरण होता है। कदाचित् कुछ मिल गया तो रक्षा की चिन्ता में शान्ति का बलिदान, भय की उत्पत्ति, जगत् में धनवान भी दुःखी देखे गये और निर्धन भी। ऐसा क्यों? **उत्तर**—भाई! यह धन, धन नहीं धोखा है। **परम धन तो श्रीकृष्ण हैं**। उनके अतिरिक्त धन नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। यह अन्तिम निर्णय है। जल्पना और कल्पना का त्याग करके मन को उनमें लगाओ, निरन्तर चिंतन करो, भजन करो और नियम से सत्संग करो, अवश्य सुख मिलेगा।

37. प्रभु से मिलने का ढंग

दिनांक 28.06.1984

बन्धुओ! जैसे जल का प्रवाह आपने देखा होगा ऐसे ही आप का जीवन भी प्रवाहित हो रहा है और क्रमशः काल की ओर अग्रसर सहज मन्थर गति से बढ़ा जा रहा है। एक दिन इसका अध्याय बन्द हो जायेगा और आपको केवल पश्चाताप के सिवा और क्या हाथ आयेगा किन्तु उससे काम तो चलेगा नहीं। आप को रंगरेलियों से ही फुरसत नहीं। कामनाओं का तांता लगा रहता है और आप इनकी पूर्ति में ही निरन्तर व्यस्त रहते हैं। जरा जागिये, उठिये, चलिये तब ही आप अपने स्थान पर पहुँच सकेंगे, अन्यथा नहीं। आइये चित्त को समाहित करें, इन्द्रियों को जीतें बुद्धि को निश्चयात्मक बनावें और जीवन का निश्चय करें कि क्या करना है। तब विचारने से आपको अभाव खटकेगा। जैसे शरीर का बिना प्राण के कोई महत्त्व नहीं ऐसे **बिना श्रीकृष्ण के जीवन भी निष्फल है**। अतः आप उनके लिये ही कर्म करें, उनके परायण हों। अनासक्त होकर भक्ति करें आप का मिलन होगा।

38. प्रभु के चमत्कार व आविष्कार

दिनांक 29.06.1984

बन्धुओ! हम आपको विद्युत कार्यशाला ले चलें। देखिये यहाँ विभिन्न प्रकार के यंत्र कार्यरत हैं। आश्चर्य चकित करने वाले यंत्र अद्‌भुत रीति से कार्य कर रहे हैं। इनसे अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन हो रहा है किन्तु ध्यान से अवलोकन करने से प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है कि समग्र यंत्र, विद्युत शक्ति द्वारा संचालित हो रहे हैं। ठीक इसी प्रकार इस जग की कार्यशाला में, उत्पादित अनेक प्रकार के विस्मय में डालने वाले चमत्कार-आविष्कार नित्य देखने में आते हैं। जानते हैं यह परमात्मा की शक्ति के द्वारा सम्पन्न होते हैं। प्रभु का अनुभव तो पल-पल में इस जग की कार्यशाला में होता है। किन्तु यदि उनको प्रकट रूप से देखना चाहते हैं तो जीवन-शैली ऐसी हो कि आप उस सच्चिदानन्द

परमात्मा का निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से परमेश्वर के लिये, शास्त्रविधि से नियत कार्य परम श्रद्धा व उत्साह से करें, आप सफल होंगे।

39. नित्यानन्द का अनुभव

दिनांक 30.06.1984

यह आवागमन की परम्परा जो अनादि काल से चली आ रही है और उत्पीड़न, नाना प्रकार के क्लेश, अशान्ति, दु:ख, रोग, शोक एवं अभाव इन सबका मूल कारण केवल अज्ञान है चाहे अविद्या कहिये। इस कारण से इसमें मिथ्या जगत् से सम्बन्ध होने की भ्रान्ति हो गई है। अत: इस भ्रान्ति से छूटने से ही नित्यानन्द के अनुभव का अवसर मिल सकेगा। इस भ्रान्ति से मुक्ति का मात्र एक ही उपाय है वह यह है कि सच्चिदानन्दघन परमात्मा को ही केवल सत्य स्वीकारा जाय। आप जानते हैं स्वीकार करना मन का कार्य है वह ऐसा करने में नितान्त असमर्थ है। श्रद्धा और विश्वास का अभाव होने से मन निर्बल हो गया है अत: कोई दायित्व वहन नहीं कर सकता। इस समस्या के समाधान के लिए एक सहज उपाय यह है कि अपनी मिथ्या मान्यताओं को त्याग दो, मार्ग प्रशस्त हो जावेगा। तत्पश्चात् परमार्थ का मार्ग ग्रहण करें।

40. कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध

दिनांक 01.07.1984

विषयों के अनवरत चिन्तन से विषयों में आसक्ति का होना स्वाभाविक है। विषयासक्ति मनुष्य को विषय लोलुप बना देती है और वह इनको प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है किन्तु सफल न होने पर मनुष्य को भयानक क्रोध उत्पन्न होता है और उसकी ज्वाला में दग्ध होते रहने से मूढ़ता का उदय हो जाता है फिर उसको कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध नहीं रहता। परिणामत: सदा ही दु:खी रहना उसके हिस्से में आता है। **यदि मनुष्य को आनन्द अभीष्ट है तो विषयों का चिन्तन छोड़कर प्रभु का चिन्तन प्रारम्भ कर दे।** यह समझ लेना चाहिए कि इसके सिवा और कोई उपाय है ही नहीं।

नियम का कठोरता से पालन करें। ऐसा आचरण करने से अवश्य शान्ति प्राप्त होगी और विशेष श्रद्धा उत्पन्न होगी और संसार असार प्रतीत होने लगेगा। कुछ समय बाद आपको आत्मानुभव होना निश्चित ही है।

41. हरि: शरणम्

दिनांक 02.07.1984

मरणधर्मा शरीरधारी मनुष्य को क्या करना चाहिए? यह ही एक प्रश्न विश्व के समक्ष है जिसको समझकर मुक्त होना है। जानते हो! वास्तव में क्या हो रहा है? लीजिये हम आपको बताएँ। प्राणी मात्र विपरीत ज्ञान के द्वारा इस नाशवान और क्षणभंगुर शरीर को ही आत्मा मान कर, इसमें सर्वदा आसक्त रहता है और इसके द्वारा ही सुख चाहता है। भला बताइये इस शरीर में सुख कहाँ है? यह **"चाह ही अनेक कामनाओं एवं वासनाओं को जन्म देती है।"** कामनाओं की पूर्ति तो सम्भव नहीं किन्तु इस मृगतृष्णा में फँसकर जन्मान्तरों तक भटकता रहता है। किन्तु शान्ति का स्वप्न तो स्वप्न बनकर ही रह जाता है। इसका समाधान हरि की शरण ग्रहण करके, हरि के निरन्तर चिन्तन से हृदय शुद्ध कर लें। तत्पश्चात् इस देहादि अनित्य पदार्थ से अहं बुद्धि हटाकर अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप अनुभव करें। इसी भाव से भावित रहकर जीवन बितावें।

42. आत्मबोध की अनुभूति

दिनांक 03.07.1984

आज के भौतिकवादी युग में जब लोग **"यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत्"** का आदर्श सामने रखकर आहार, निद्रा, भय, मैथुन को ही सच्चा सुख मानकर चल रहे हैं और विचारने की शक्ति का ह्रास प्रतीत होता है, तब ऐसे समय में जो कुछ घटित हो जाय सो थोड़ा है। चहुँ ओर अन्धकार ही अन्धकार का साम्राज्य है किन्तु लोग इसे उन्नति का युग कहते हैं। खैर! वास्तविकता क्या है? उस पर विचार करें। बन्धुओ! राह दिखाना तो सरल है किन्तु राह

पर चलना कुछ अर्थ रखता है। यह प्रत्यक्ष नजर आता है कि चलने से ही गन्तव्य स्थान पर पहुँचा जा सकेगा। यह निश्चित किया हुआ मत है कि आत्मबोध एवं अनुभूति ही से जीवन का साफल्य है। आप देखिये अग्नि से जल प्रकट होता है किन्तु अग्नि में जल नहीं होता। इसी तरह आत्मा से मूल प्रकृति का आविर्भाव होता है उससे जगत् किन्तु आत्मा में ही मूल प्रकृति नहीं है। आत्मा एक है, स्वयं प्रकाश, व्यापक तथा निर्लेप है। इसके चिन्तन से लक्ष्य प्राप्त होगा।

43. स्वाभाविक कर्म

दिनांक 04.07.1984

परमात्मा से ही सब भूत उत्पन्न हुए हैं और परमात्मा से ही सब जगत् व्याप्त है। ऐसे परमात्म तत्त्व का अनुभव ही मनुष्य के लिए परम सिद्धि के नाम से प्रसिद्ध है। अत: मानव के समक्ष यह समस्या आ खड़ी होती है कि उसको कैसे प्राप्त किया जाय? इस प्रसंग में केवल अनुभवी पुरुषों का मत ही अनुकरणीय है। आइये! हम आपको बतायें कि उस मत की रूपरेखा क्या है? बन्धुओ, स्वाभाविक कर्मों द्वारा ही उनका पूजन करके, उनको प्रसन्न किया जा सकता है, उनकी प्रसन्नता ही आपके अभीष्ट की सिद्धि में हेतु है। वर्णाश्रम द्वारा जो कर्म निर्धारित किये गये हैं वह ही स्वाभाविक कर्म के नाम से ही जाने जाते हैं। अत: आप अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा उनका नियम से पूजन व आराधन कीजिये, आपको आपके लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होगी।

44. प्रभु की अहैतुकी कृपा

दिनांक 05.07.1984

श्री भगवद्धाम का यात्री प्रस्थान करके धाम में कोई-कोई ही पहुँच पाता है। प्राय: बीच में कहीं रह जाता है और यात्रा अधूरी रह जाती है। इसका कारण इस प्रकार है—सर्वप्रथम तो अंहता-ममता की खाई, कामादि विकारों के पर्वत, भोगों की प्रचुरता, ऐश्वर्यादि का आकर्षण, विभूतियों के अतीन्द्रिय

शक्तियों के प्रलोभन से मोहित होकर पथ भ्रष्ट हो जाता है और प्रवाह में ही यत्र-तत्र घूमता रहता है। यह परम्परा कब तक चलती रहेगी? यह अज्ञात है। प्रभु की अहैतुकी कृपा से यदि सत्संग प्राप्त हो जाय तो उसको यह पता चलेगा कि उसका मन प्रभु से पहले से ही अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है वह अपने अन्त:करण में भगवान् को बसा करके साक्षात्कार कर लेगा। ये विभूतियाँ एवं अतीन्द्रिय शक्तियाँ सब तृणवत् हो जावेंगी और वासना सर्वदा के लिए निर्मूल होकर पूर्णकाम हो जावेगी, तत्पश्चात् हरि मिलन हो जावेगा।

45. अनासक्त भाव से चिन्तन

दिनांक 06.07.1984

बन्धुओ! जरा विचार कीजिए कि मानव किस प्रकार संसार में उलझा हुआ है। इसकी रात तो निद्रा में अथवा स्त्री प्रसंग में और दिन धन की चिन्ता तथा परिवार जनों के भरण-पोषण में समाप्त हो जाता है। जिनको यह अपना तथा परम प्रिय मानता है जिनके मोह में समस्त जीवन दु:खी रह कर बिताता है, वह शरीर, स्त्री, पुत्रादि वास्तव में तो नितान्त असत्य हैं किन्तु इनकी आसक्ति में इतना पागल हो जाता है कि दिन-रात इनको काल का ग्रास होते देखकर भी नहीं चेतता, किन्तु जिसको मूल देह का बोध है वह इनमें रहते हुए भी सबसे पृथक् ही अपने को अनुभव करते हुए अपने लक्ष्य को सर्वदा अपने समक्ष रखता है। इसके लिए सुगम उपाय यह है कि अनासक्त भाव से विश्वात्मा, श्रीकृष्ण की लीला-कथा का नियम-पूर्वक श्रवण, कीर्तन तथा मनन करता हुआ अपने कर्त्तव्य का पालन करे। इस प्रकार रहने से लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होगी।

46. शरीर का धर्म

दिनांक 07.07.1984

आप जानते हैं माता का गर्भवास भी नरकवास के समान ही है। यह अज्ञान की परम्परा, जिसके कारण मानव को शान्ति से बैठ कर विचार करने

का अवसर ही नहीं मिलता, तब इस दुःख की परम्परा क्या जाने कब से चली आ रही है, कैसे अन्त हो? हमारे अपने विचार में तो आत्मबोध एवं आत्मशान्ति ही एक मात्र उपाय है। जिसके द्वारा मानव सर्वदा के लिये स्वरूप में स्थित हो जाता है। आइये अब मानव को क्या करना चाहिए यह विचार करें। सर्वप्रथम अपने निन्दनीय शरीर में जो दुःखमय ग्रन्थि अहंता-ममता की पड़ गई है उसको शीघ्र काट दिया जाय, तत्पश्चात् आपको स्वतः ही ज्ञात होगा कि काल की प्रेरणा से वृक्ष पर फल लगता है, ठहरता है, बढ़ता है, पकता है, क्षीण होकर गिर जाता है, इसी प्रकार शरीर की उत्पत्ति, ठहरना, बढ़ना, वृद्धावस्था, क्षीण होना फिर गिर जाना यह गुण शरीर के हैं आत्मा के नहीं, यह जान लेने पर आत्मबोध होगा और लक्ष्य की प्राप्ति हो जायेगी।

47. श्रीकृष्ण को अपना बना लो

दिनांक 08.07.1984

श्रीकृष्ण ही केवल परमानन्दस्वरूप हैं अथवा कृष्ण का दूसरा नाम परमानन्द है। परम पद, जिस पद के अतिरिक्त और कोई पद ही न हो। ऐसे ही परमानन्द जिस आनन्द के सिवा और कोई आनन्द ही न हो। इसका परिचय तो मिल गया किन्तु इतने से समस्या का समाधान नहीं होता। समाधान तो प्रत्यक्ष अनुभूति से सम्बन्धित है। वह ही दिन शुभ है जिस दिन यह कार्य सम्पन्न हो, जब हमारी दृष्टि में श्रीकृष्ण के सिवा और कुछ सोचने तक शेष किञ्चित् मात्र भी रहेगा तब तक अधूरापन खलता रहेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। निरन्तर श्रीकृष्ण चिन्तन से मन, बुद्धि कृष्णमय होने से जीवन ही कृष्णमय हो जायेगा। जहाँ भी आपकी दृष्टि पड़ेगी श्रीकृष्ण ही दिखाई पड़ेंगे। उस बेला का ही सुख, परमानन्द के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ द्वैत नाम की कोई वस्तु ही न रहे। बन्धुओ! यदि सुख अभीष्ट है तो श्रीकृष्ण को अपना बना लो अथवा उनके होकर रहो इतने से ही जन्मों की साध निःसन्देह पूरी होगी।

48. विश्वासम् फलदायकम्

दिनांक 09.07.1984

मनुष्य को अपनी स्थिति का निरीक्षण करना चाहिए। देखने से ज्ञात होगा कि जीवन सार्थक नहीं है, व्यर्थ नष्ट हो रहा है। बड़े खेद का विषय है। आइये, हम आपको बतायें कि क्या करना उचित है। सर्वप्रथम तो इन दुःख मूलक एवं क्षणभंगुर भोगों के भोगने में अपना समय नष्ट न करो, ईश्वर में विश्वास हो ऐसा यत्न कीजिए। विश्वास के अभाव में कोई भी कृत्य फलदायक नहीं होता। साधक श्रेणी में आकर योजनाबद्ध साधना करें तब आप की बुद्धि आस्तिक होगी। उसके बाद प्रत्येक पल अनुभव प्रदान करने वाला होगा। प्रथम तो विपरीत बुद्धि का त्याग तथा दोष का निवारण आवश्यक है। फिर सब कुछ भगवान् का समझ कर समत्व भाव रखते हुए आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग करके भगवत् आज्ञानुसार केवल भगवान् के लिए सब कर्मों का आचरण करें तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीर से सब प्रकार भगवान् की शरण होकर नाम, गुण, प्रभाव सहित उनके स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करें। इस प्रकार की रहनी से कल्याण हो जावेगा।

49. मानव की रहनी

दिनांक 10.07.1984

मानव को अपनी रहनी इस प्रकार नियोजित करनी चाहिए। सर्वप्रथम तो अपने को समस्त व्यसनों से और कुसंग से बचावे। संसार के स्वरूप को जाने। बन्धु! संसार तो दुःख रूप है इसमें दो मत नहीं हो सकते। संसार को दुःख रूप अनुभव करे इससे परित्राण पाने के लिये जीवन को नियमित बनावे, स्वेच्छाचारिता का सर्वदा के लिये त्याग करके यह निश्चय करे कि हरि भजन ही सार है। इससे उत्तम कोई वस्तु न हुई है और न होगी। यह ध्यान रहे कि अन्तःकरण में कोई संशय न रहे और निष्पाप रहे। फिर इस व्यवस्था के अनुसार जीवन बितावे, जीवनकाल में सुखी रहेगा। अन्तकाल में गोलोक में स्थाई स्थान मिल जायेगा। भोगों से अनासक्त होकर यथा आवश्यकता

सेवन करते हुए, छल कपटादि दुर्गुणों से दूर रहे। ब्रह्ममहूर्त में शैय्या त्याग, स्नानादि से निवृत्त होकर हरि-गुणगान मनोयोग से करे, कथा श्रवण करे तथा मनन करे। इस प्रकार की रहनी ही सफलता-दायक है।

50. श्रीकृष्णार्पणमस्तु

दिनांक 11.07.1984

जिसको अच्छा कहा जाता है और बुरा कहा जाता है, गुण कहा जाता है और दोष कहा जाता है, बन्धुओ! यह सब माया के विकार हैं इनसे अविलम्ब परे हो जाओ और देखो इस विश्व को किसने सहारा दिया हुआ है। यह आकाश किसके सहारे खड़ा हुआ है और पृथ्वी को किसने धारण किया हुआ है। यह सब नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमादि किसकी शक्ति से अवलम्बित होकर कार्यरत हैं। यह सब श्रीकृष्ण चन्द्र का प्रताप है। यह आपका शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियादि सब उसमें अनुप्राणित हैं किन्तु आपको प्रपंच में आसक्ति हो गई है और आप बहिर्मुख होकर विस्मृति को प्राप्त हो गये हैं। बन्धुओ! जो प्राणी अपने मूल ध्येय को जानता है वह कभी किसी धोखे में नहीं आता वह अपना सर्वस्व श्रीकृष्ण को समर्पण कर उनसे अपने मन को जोड़, भव से पार हो जाता है।

51. नित्य नियम पालन

दिनांक 12.07.1984

इस असुख, अशान्ति से छुटकारा पाने के लिए जो प्रयत्न, आयोजन, उत्सव तथा सभायें आदि होती हैं, उनके अनुकूल परिणाम नहीं निकले और निराशा ही शेष रही इसका कारण जिज्ञासा की कमी है। किसी दबाव, प्रलोभन अथवा स्वार्थ से सफलता मिल जाये यह तो ठीक ऐसा ही है जैसे जल में मक्खन की कल्पना। सर्वप्रथम तो आस्तिक होना अनिवार्य है, इसके लिए शुद्ध चित्त और साधन सम्पन्नता की आवश्यकता है। तत्पश्चात् जिज्ञासा का प्रश्न आता है। जिज्ञासु को विवेकवान्, वैराग्यवान्, जितेन्द्रिय और मुमुक्षु होना चाहिए। इतने पर प्रभु को पहचानने का अवसर आता है। तभी विश्वास

उदय होता है। फिर भगवत् आज्ञा पालन करने के लिए जिज्ञासु तत्पर होकर चलने का संकल्प लेगा तभी अध्यात्म साधना का प्रारम्भ होगा। नित्य नियम से अभ्यास करते रहने पर हरि मिलन अवश्य होगा।

52. आत्म कल्याण

दिनांक 13.07.1984

कौन अपना कल्याण नहीं चाहता? किन्तु उसके योग्य होना भी आवश्यक है। योग्यता का क्या मापदण्ड है? उसका चित्त सब परिस्थितियों में समान रहे, चाहे दु:ख हो अथवा सुख। मान मिले, अथवा अपमान। स्तुति हो अथवा निन्दा। अन्त:करण में परमशान्ति का निवास हो और आवेश से पूर्णतया रहित जीवन स्वभावत: सदाचार सम्पन्न हो। प्राणी मात्र का हित चिन्तन होता रहे। इसके बाद मानव को प्रभु की शरण ग्रहण करनी चाहिये जिससे अहंता-ममता कामादि विकारों से मुक्त होकर, प्रभु के श्रीचरणों में मन लगाने पर उनके नाम, गुण और प्रभाव, श्रवण, कीर्तन व मनन करे। उनको मन, वचन और कर्म से सर्वस्व अर्पण करके पूजन करे। फिर साष्टांग दंडवत् प्रणाम करने से श्री हरि का मिलन निश्चय होगा जिसमें कल्याण निहित है।

53. संसार से उपरति

दिनांक 14.07.1984

संसार में ऐसा कौन सा सुख है जिसके कारण प्राणी मात्र विवेक खोकर इससे अभिभूत रहते हैं? विचार के नेत्रों से देखने से तो स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि यह केवल पंचभूतों का प्रभाव मात्र ही है, कुछ शेष नहीं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—यह ही पंचभूतों के नाम से जाने जाते हैं। अब आप विचार करें किसमें सुख है? उन्हीं का रचा हुआ चित्त है। इसके द्वारा सुखी होने की इच्छा करना केवल मूढ़ता के सिवा और क्या है? शास्त्रों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि आत्मा ही सुखरूप है वह सत्-चित्-आनन्द है। उसमें ही रमण करना और अनित्य पदार्थों से उदासीन रहना ही निश्चित

किया गया है। बन्धुओ! जीवन स्वत: ही विनाश की ओर बढ़ता जा रहा है। संसार से उपरत होकर हरि का भजन करो—निश्चय कल्याण होगा।

54. विचित्र विडम्बना

दिनांक 15.07.1984

अहो! भगवान् की कितनी विचित्र लीला है। यह जीव संसार के संहार करने वाले काल को देखकर भी नहीं देखता और तुच्छ विषयों के सेवन करने के लिए, सर्वदा पापमय विचारों की उधेड़बुन में लगा रहता है और अपने हाथों ही पिता, पुत्रादि की लाश को जलाकर स्वयं जीते रहने की इच्छा करता है, कैसी विचित्र विडम्बना है। यदि यह मृत्यु के भय से, रोग, शोक से, काम, क्रोध जन्म-मरण व्याधियों से मुक्त होना चाहे तो विश्वात्मा श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करे और देखे श्रीकृष्ण ही सारे जगत् को आकर्षित किये हुए हैं। विश्व की सत्ता इनकी ही सत्ता से प्रतीत होती है। इसकी अपनी कोई सत्ता नहीं। अत: शीघ्र ही श्रीकृष्ण को जीवन सर्वस्व समझकर इनसे प्रेम करें, निश्चय ही भव से पार हो जायेंगे।

55. श्रीकृष्ण के होकर रहें

दिनांक 16.07.1984

जो मानव जीवन निर्वाह के लिए अन्नादि पदार्थों से, जो सहज प्राप्त हो जाय, सन्तुष्ट रहता है उसको मूल सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यह अष्ट सिद्धि आदि तो केवल विघ्नमात्र हैं। विषय एवं इन्द्रिय लोलुप व्यक्ति को कभी भी सुख नहीं मिलता, वह तो निरा पशु है। यह विषमता जो सकल संसार में व्याप्त है और अविद्या आदि क्लेश सभी प्रभु प्रताप से समूल नष्ट हो जाते हैं और स्थाई आनन्द मिलने का अवसर मिल जाता है। वह प्राणी सब ओर से उपरत होकर अपना मन श्रीकृष्ण के साथ जोड़ देता है और सदा ही श्रीकृष्ण में सोता है, श्रीकृष्ण में ही जागता है और श्रीकृष्ण में ही नित्य निवास करता है। अत: वह अनन्त सब प्रपंचों से विमुक्त होकर श्रीकृष्ण रूप ही हो जाता है और जिज्ञासुओं के लिए मार्ग प्रशस्त कर जाता है।

56. सागर सम गंभीर बनो

दिनांक 17.07.1984

सागर को देखो—उसमें सैकड़ों नदियाँ गिरती हैं और हजारों निकलती हैं, कभी बड़ी शान्त अवस्था होती है जिसको 'गम्भीर' का उदाहरण दिया जाता है, कभी क्षुभित अवस्था उदय होती है, ज्वार-भाटा आता है, पानी की लहरें उठती हैं, कभी-कभी उत्ताल तरंगों से तरंगित होता है किन्तु इन अवस्थाओं से सागर में कोई अन्तर नहीं आता। सागर तो सागर ही है। इसी प्रकार अध्यात्म क्षेत्र में भी ठीक ऐसा ही होता है। देह दृष्टि से तो अपने को दास समझा जाता है, जीव दृष्टि से उसका अंश माना जाता है। वास्तव में वह अपना स्वरूप है। ऐसा जान लिया लेकिन अनुभव करना शेष है। प्रत्यक्ष अनुभव से ही समस्या का समाधान होगा, यह निश्चित है। जीवन का नियम हो, मनमानी न हो। कल्पना तथा अनुमानों से परे हो, सत्संग करो अर्थात् सत् का संग करो। जितेन्द्रिय बनो। शुद्ध हृदय से उपासना करो। लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा।

57. दुःख में सुख का भान

दिनांक 18.08.1984

जन्म एक बहुत बड़ा बन्धन है जो कर्मों द्वारा प्राप्त होता है। कर्म भी एक प्रकार का बन्धन है। कर्म के रहस्य से अवगत होने पर ही इससे मुक्ति मिल पाती है अन्यथा आवागमन की परम्परा में ही भटकते रहना पड़ता है। अवधि की कोई सीमा नहीं। परतंत्र मानव तो दुःख को ही सुख मान कर जीवन व्यतीत करता है। उसके लिए दूसरा कोई विकल्प है ही नहीं। आइये! विचार करें कर्म-बन्धन से कैसे छुटकारा मिले? इसके लिए एक ही उपाय है—कर्मों में आसक्ति न हो, उसकी सिद्धि-असिद्धि में समभाव हो, और फल में समभाव हो, बस कर्म से मुक्त हो गये। तत्पश्चात् जन्म भी अन्तिम ही होगा। परिणामत: कैवल्य के अधिकारी हो गये और दुःख की परम्परा से सदा के लिए अवकाश प्राप्त हो गया।

58. प्रभु की महान् अनुकम्पा

दिनांक 19.07.1984

यह देवदुर्लभ मनुष्य देह प्रभु की महान् अनुकम्पा का फल है और यह देह केवल हरि भक्ति के लिये मिली है क्योंकि अन्य देहों से कर्मभोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं बन पाता किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि मनुष्य भी रात-दिन इन क्षणभंगुर एवं नाशवान् भोगों के लिए जो नरक तुल्य हैं, दौड़ता रहता है और मूल्यवान् समय का दुरुपयोग करता है। यदि कदाचित् इसको सत्संग प्राप्त हो जावे तभी इसकी मोह निद्रा भंग हो सकती है और ज्ञात होगा कि अनेक गतियों को प्रकट करने वाली अविद्यारूपी हृदय-ग्रन्थि कट जाने पर ही लक्ष्य प्राप्त करने का अवसर मिल पायेगा और फिर यह धीर पुरुष अपने नश्वर शरीर से किये हुए सम्पूर्ण कर्म भगवान् को समर्पित करके अभयपद को प्राप्त कर सकेगा।

59. भगवान् हर समय प्राप्त हैं

दिनांक 20.07.1984

ऐसी किंवदन्ती चली आ रही है कि परमात्मा से मिलना अत्यन्त कठिन है किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। वह हमारी आत्मा हैं, अपने हैं और सर्वदा, सर्वत्र, समान रूप से विराजमान हैं। फिर कठिनाई कौन सी है, यह समझ में नहीं आता। वह हर समय मिल सकते हैं। आप जानते हैं, 'नहीं' में से 'है' पैदा नहीं हो सकता है और 'है' में 'नहीं' का प्रश्न ही नहीं उठता। उनके लिये तो केवल तड़पन की आवश्यकता है। आप विषयों के लिए जीवन भर तड़पते हैं, किन्तु फिर भी कोई सफलता हाथ नहीं लगती। आप श्री हरि के लिए थोड़े समय ही तड़पकर देखिए, परिणाम आपके समक्ष होगा। किन्तु आप यह कहेंगे तड़पन कहाँ से लावें। बन्धु! न जाने आप का अनुराग कहाँ-कहाँ बिखरा हुआ है, उसे बटोर कर केवल सत्य के साथ जोड़ दें, तड़पन होने लगेगी।

60. शास्त्रों द्वारा कल्याण की प्राप्ति

दिनांक 21.07.1984

यह वाम मार्ग है, जहाँ पर यह धारणा है कि यह संसार स्त्री- पुरुष के संग से इसकी उत्पत्ति हुई है और इसके अतिरिक्त शेष कुछ भी नहीं। भोगों को भोगना ही मात्र पुरुषार्थ है। ऐसी स्थिति में प्रकाश के स्थान पर अन्धकार, ज्ञान की जगह अज्ञान, भक्ति की जगह भोगों की आसक्ति, तप की जगह भोगों का ही बोल-बाला रहेगा अर्थात् सब कुछ अनुमान तथा कल्पना के आधार पर ही निर्भर करेगा। विचारिये! इस प्रकार के जीवन में कहीं सुख, शान्ति खोजने पर अशान्ति ही मिल पायेगी। शान्ति कदापि नहीं। **कल्याण तो शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार जीवन के संचालन में ही है। साधन सम्पन्न जीवन में ही प्रभु के प्रति आस्तिक भाव उदय होते हैं।** श्रद्धा, विश्वास के साथ उनकी उपासना से मल, विक्षेप तथा आवरण का नाश होकर प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त करके कृत-कृत्य हो जाओगे।

61. शरीर का निर्माता ईश्वर है

दिनांक 22.07.1984

भाई! लोगों को ईश्वर पर भरोसा ही नहीं है। अत: आगे प्रसंग कैसे चले, ऐसा कहा जाता है कि ईश्वर किसने देखा है। आओ! ईश्वर को दिखावें, ध्यान से देखिये। बन्धु! अपने आप कोई चीज नहीं बन जाती उसका निर्माता तो होना ही चाहिए। यह स्मृतियाँ जो बनाई जाती हैं जिसके लिए बनाई गईं उसकी याद बनी रहे। यही तात्पर्य होता है। यदि प्रभु को देखना है तो प्रथम अपने शरीर को देखिए, इसका निर्माता कौन है? तो विचारने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है, यह तो ईश्वर कृत ही है। इसका और कोई निर्माता हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, सूर्य तथा चन्द्र आदि का निर्माता ईश्वर ही है। उसके साक्षात्कार से ही आप को सहज सुख मिल सकता है। वह महान् है, आप भी महान् बनिये। आप उससे मिल सकेंगे और आपका समाधान हो जावेगा।

62. लोक कल्याण हेतु कर्म

दिनांक 23.07.1984

जिन पुरुषों का जीवन शास्त्रों की अवहेलना करके कल्पित मार्ग का अनुसरण करते हुए भोगों का संकलन करने में व्यस्त है और उन्हीं में उनकी रति है वह पापायु पुरुष तो केवल भू-भार मात्र ही हैं। अत: जिन पुरुषों की रति आत्मा में है, आत्मा से ही प्रीति है और आत्मा में ही सन्तुष्ट हैं, जिनका सम्पूर्ण भूतों से कोई स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं है उनका किसी कर्म के करने अथवा न करने से कोई प्रयोजन नहीं है। उनको कुछ करने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। तथापि उनसे लोक कल्याण के लिये कर्म होते हैं अर्थात् जिनका केवल परहित ही कर्तव्य रह जाता है जो सम्पूर्ण आसक्तियों से रहित होकर कर्मों का सम्पादन करते हैं वे संसार में जब तक रहते हैं तब तक तो उनका जीवन परम सुखी रहता है। अन्त में वे प्रभु को प्राप्त हो जाते हैं।

63. सत्य से अनुराग

दिनांक 24.07.1984

साहित्य और संग का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। परलोक यात्रा में कामियों का संग नरकगामी बनाता है और साधु संग सहज पार करने वाला सिद्ध होता है। अत: कल्याणकामी मनुष्य को अपना दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि सत्संग के अतिरिक्त सर्वदा असंग रहना है और जहाँ तक अध्ययन का प्रश्न है उसके सम्बन्ध में भी निर्णय लेना परमावश्यक है। महापुरुषों का कहना है कि गीता, भागवत तथा श्रीरामचरितमानस आदि ग्रन्थ साधक के लिये पर्याप्त हैं। प्रारम्भ में क्या करना उचित है? सर्वप्रथम अपने मन को कैद करें, व्यसनों से पूर्ण मुक्त रखें, संशय और वासना को अविलम्ब जीवन से पृथक कर दें। तत्पश्चात् साधना क्रम योजनाबद्ध चलना चाहिए। समय के साथ चलना चाहिए, यह अनिवार्य है। जैसे शरीर में रीढ़ की हड्डी की महत्ता है वैसे सत्य से अनुराग करना है इस प्रकार की रहनी से निश्चय ही जीवन सफल होगा।

64. प्रेम से आत्मसाक्षात्कार संभव

दिनांक 25.07.1984

सत्य तो केवल एक परमात्मा ही है, अत: सत्य की खोज से ही मनुष्य का मूल्य निर्धारित किया गया है। बड़े-बड़े अनुसंधान एवं खोज की गईं, की जा रही हैं और की जाती रहेंगी किन्तु परमात्मा का साक्षात्कार तो किसी विरले को ही होता है। किसको साक्षात्कार होता है? जो अधिकारी होता है। प्रथम तो चरित्रवान् हो, श्रद्धावान् हो तथा विश्वास करने वाला हो और उसके जीवन का सार सत्य हो। सफलता के लिए युक्ति, शक्ति, विवेक और विचार का होना आवश्यक है इनका उपयोग यथासमय और यथास्थान किया जाता है। कोई योग में लगा हुआ है, कोई जप में, कोई ज्ञान-निष्ठ है तो कोई त्यागी। अन्तत: सब ही निराश देखे गये। अनुभवी पुरुषों का तो कहना है कि केवल प्रेम से ही आत्म-साक्षात्कार होता है। मोह के नाश होने पर ही प्रेम प्राप्त होता है। सत्संग और हरिकथा यह दो ही साधन हैं जिनसे मोह नष्ट होकर प्रेम प्राप्त हो जाता है फिर आत्मसाक्षात्कार हो जाता है।

65. काम ही परमशत्रु है

दिनांक 26.07.1984

प्राय: ऐसा देखा गया है कि मानव को पाप, पुण्य का बोध होता है यह जानते हुए भी पाप करता है। ऐसा क्यों? पारमार्थिक यात्रा में यह जानना आवश्यक है। दो ही बाधाओं के कारण वह परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पा रहा है। प्रथम तो पाप-वासना हृदय में निरन्तर वास करती है। द्वितीय सर्वदा सशंकित रहता है अर्थात् पाप वासना एवं संशय से मुक्त होकर हरि का भजन कीजिये, अवश्य ही हरि मिलन होगा। विचारिये! इन दोनों बाधाओं से कैसे छुटकारा हो, इनसे त्राण, यथार्थ ज्ञान होने पर ही सम्भव है। जिस प्रकार राख से अग्नि ढकी रहती है, मैल से दर्पण और जेर से गर्भ आवृत रहता है उसी प्रकार काम से ज्ञान आच्छादित रहता है। यह काम ही परमशत्रु है जो हरि से वंचित रखता है मन और बुद्धि को। इन्द्रियों से परे मन, मन से परे

बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा है—ऐसा जानकर काम को नष्ट कर दें, हरि मिलन होगा।

66. 'मैं' को मिटा दो

दिनांक 27.07.1984

यदि साधक कोटि का मानव शरीर को 'मैं' मानना छोड़ दे और पूर्ण वैराग्यवान् रहकर सांसारिक वस्तुओं की इच्छा न करे, इन क्षणभंगुर तथा नाशवान् भोगों का बिल्कुल चिन्तन न करे, असंग रहे, एकान्त में रहकर मन को प्रभु में लगावे, नामगुण का श्रवण, कीर्तन और मनन करे, स्वाध्याय नियमपूर्वक करे, श्रीहरि का पूजन, मन, वाणी तथा शरीर से करके श्रद्धा और प्रेम अर्पण करें तो बहुत थोड़े समय में ही प्रभु की भक्ति और प्रेम प्राप्त हो जावेगा। यह साधना कठोर नियम पालन करते हुए निरन्तर चलती रहे। जिस अवस्था में प्रभु का मिलन होता है वह आप को शीघ्र प्राप्त हो जावेगी और सदा सर्वदा के लिए कृत-कृत्य हो जाओगे।

67. परमात्मा सर्व व्यापक है

दिनांक 28.07.1984

जैसे बर्फ में जल व्याप्त है तो विचार की आँखों से देखने पर ज्ञात होता है कि जल ने ही बर्फ का रूप धारण किया है। अत: सर्वत्र जल ही जल है दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इसी प्रकार शास्त्रों के द्वारा हमें यह पता लगता है कि परमात्मा सर्व व्यापक है तो लगता है कि ईश्वर ही जग के रूप में व्याप्त है दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं! किन्तु अनेक जन्मों के अभ्यास के कारण हमें नानात्व में ही विश्वास है तो हमारा सुख-शान्ति का स्वप्न कैसे साकार हो। भाई! आपको अनुशासित रहना पड़ेगा, संयम को अपनाना पड़ेगा। मानव उच्छृंखलता को छोड़ दे, अवैदिक स्वेच्छाचारिता से दूर रहे, सत्य वक्ता और जितेन्द्रिय हो तब इसी जीवन में जग के मूल कारण नारायण अनुभव का विषय हो सकते हैं। क्रियात्मक जीवन अपेक्षित है। प्रवचन और पांडित्य से वह तत्त्व सदा ही दूर रहता है।

68. परमानन्द की खोज

दिनांक 29.07.1984

भगवान् का अनुभव भक्तिहृदय मनुष्य को ही प्राप्त हो सकता है। जितनी भी विभिन्न निष्ठायें हैं वह सब भक्ति से ही उत्पन्न होती हैं। भगवान् भक्ति से जितनी जल्दी सन्तुष्ट और प्रसन्न होते हैं उतने और किसी साधन से नहीं, भक्ति तो सदा सब देश में सबको ही सुलभ है। कहो! भक्ति मार्ग में कौन श्रम है? जहाँ योग, जप और तप तथा व्रतादि कुछ भी नहीं। भक्ति तो चित्त की सहज वृत्ति के प्रवाह का नाम है जो केवल प्रभु की ओर स्वभाव से प्रवाहित होती है, जिसको संसार की कोई आपत्ति अथवा विपत्ति अवरुद्ध नहीं कर सकती। इस अवस्था को हम भूल गये हैं और कोई बात नहीं। मन छल, कपट से रहित अर्थात सरल हो, जो कुछ भाग्य से मिल जावे उससे सन्तुष्ट रहे, सदा निर्विकार रहे और नित्य सत्संग का सेवन करें। आप परमानन्द को शीघ्र ही अनुभव करेंगे।

69. एकमात्र प्रभु चरणों में अनुराग

दिनांक 30.07.1984

जैसे गंगा गंगोत्री से निकल कर गंगा सागर में जा मिली, मार्ग में बहुत व्यवधान आये, बाँध-बाँधे गये, नहरें निकाली गईं, पहाड़, खाई तथा नगरों को पार करती हुई सहज ही सागर में विलीन हो गई। ऐसे ही हम भी अपने एकमात्र लक्ष्य प्रभु के चरणों को सहज में ही प्राप्त कर सकते हैं कोई कठिनाई नहीं। विषयों को भूलें, संसार को भूलें, अपने आप को भूलें। भला बताइये! भूलने में क्या परिश्रम करना पड़ेगा। संसार की असारता को देखो—आपको इससे सहज ही अरुचि होकर श्री हरि के चरणों में मन स्थिर हो जावेगा। तब आपके सब कार्य प्रभु के लिये होने लगेंगे। प्रभु की परायणता मिलेगी, भक्ति मिलेगी। अनासक्ति मिलेगी, समदर्शी हो जाओगे। तत्पश्चात् आपको निरन्तर आनन्दानुभूति होती रहेगी, शोक, मोह से दूर चले जाओगे।

70. कर्मयोगी बनो

दिनांक 31.07.1984

आज सहज नास्तिकता का बोलबाला भारत में देखने को मिल रहा है। किसी को विचारने का अवसर ही नहीं। बिना मांझी के नौका की जैसी हालत होती है वैसी ही हालत बिना मार्ग दर्शन के एक राही की होती है। इन्द्रिय लोलुपता किसी को कैसे पनपने दे। कुसंग में बैठकर कुशल की इच्छा करना, ठीक वैसे ही है जैसे एक कायर विजय के स्वप्न देखे। अनुशासन व साधना के बिना, प्रभु में विश्वास ही नहीं हो पाएगा, फिर आपका आद्योपान्त आलाप अरण्यरोदन के सिवा और क्या हो सकता है? फिर ईश्वर आज्ञा की अवहेलना से केवल दम्भ ही हाथ लगता है जिससे पतन के सिवा और क्या प्राप्त हो सकता है? अतः बन्धुओ! शीघ्र अपने जीवन को बदलो। जो नौका क्षतिग्रस्त है जिसमें पानी भरता है उससे पार जाने की कल्पना केवल कल्पना ही है। किनारा बहुत दूर है। मौज-बहार के जीवन को त्याग कर निष्काम कर्म योगी बनो, लक्ष्य सिद्ध होगा।

71. ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो ?

दिनांक 01.08.1984

समस्त सरिताओं व नदियों का पर्यवसान सागर में होता है वैसे ही समस्त कर्मों की अन्तिम पराकाष्ठा ज्ञान है। जिसके जान लेने के बाद और कुछ जानना शेष नहीं रहता तथा पाना भी शेष नहीं रहता। शोक-मोह, जीवन-मरण से मुक्त होकर सच्चिदानन्द स्वरूप ही हो जाता है। उस ज्ञान का स्वरूप क्या है? कैसे प्राप्त किया जा सकता है? —जिस ज्ञान के द्वारा सर्वव्यापी अनन्त चेतन रूप हुआ अपने अन्तर्गत समष्टि बुद्धि के आधार, सम्पूर्ण भूतों को देखेगा अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप में एकीभाव हुआ सच्चिदानन्दमय ही देखेगा। जितेन्द्रिय तत्पर हुआ श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है, ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत् प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त होता है। बन्धुओ! ज्ञान का अनुभव हो उसका क्रम इस प्रकार है-

श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में अनुराग होने से मन शुद्ध हो जाता है तत्पश्चात् भक्ति उदय होती है फिर भक्ति ही ज्ञान के रूप में रूपान्तरित होती है। बस आपको लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

72. समस्या का समाधान कैसे हो ?

दिनांक 02.08.1984

अनेक साधनों तथा प्रवचनों एवं गोष्ठियों की ऊहापोह, अनेक शास्त्रों का अवलोकन, बहुश्रुति आदि प्रयासों से प्रत्यक्ष में अभाव और भ्रम से छुटकारा नहीं हुआ केवल श्रम ही हाथ लगा। अब आप विचार करें, आखिर ऐसा क्यों? प्रकृति के क्षेत्र में तो सर्वदा सबको सहज अनुभव होता है। प्यास लगी, जलपान कीजिए तृषा शान्त। क्षुधा के लिये भोजन कर लेना ही मात्र पर्याप्त है किन्तु अध्यात्म क्षेत्र में बहुत कुछ करने पर भी सामान्य जीवन-स्तर ही देखने में आता है। बहुत दुःख होता है ऐसी निराशाजनक अवस्था को देखकर। बन्धुओ! अनुभवी पुरुषों द्वारा ही समस्या का समाधान हो सकता है उनका कहना है मन, बुद्धि को प्रभु के अर्पण कर दो, परिणामतः मन शुद्ध हो जाऐगा। बुद्धि निश्चयात्मिका हो जावेगी। तत्पश्चात् बुद्धि के द्वारा मन को नियंत्रित करने पर इसके संकल्प-विकल्पादि समाप्त हो जायेंगे। फिर जब यह शास्त्राज्ञा का पालन करेगा कुछ ही समय में हरि मिलन होगा।

73. जीवन मुक्ति का रहस्य

दिनांक 03.08.1984

केवल आत्मदर्शन द्वारा ही जीवनमुक्त पुरुष अपना कल्याण करने में समर्थ हो पाता है। आत्मानुभूति के लिये प्रथम सोपान जीते हुए मुक्त होना है। जीवन मुक्ति का क्रम इस प्रकार है— सर्वप्रथम तो धर्मपालन करने का व्रत लेना होता है, तत्पश्चात् निरन्तर जीवन में धार्मिक आचरणों द्वारा विषयों से विरक्ति हो जाती है उसका परिणाम, सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जिसको सम्यक् बोध हो जाता है उसका मन अचल हो जाता है। हर परिस्थिति में चित्त समान रहता है, चित्त की समानता द्वारा बड़े वरदान के रूप में क्रोध से मुक्ति,

परमशान्ति, परहित चिन्तन एवं सदाचारिता का जीवन में उदय हो जाता है। अब आप विचार करे ऐसे जीवन से क्या नहीं मिल सकता? स्थूल दृष्टि के कारण ही यह सब उपद्रव सहन करने पड़ते हैं। अर्थात् अनेक प्रकार की अस्थिरता, परिवर्तनादि। अब अध्यात्म दृष्टि प्राप्त हो गई, सब प्रकार के आवरण भंग होकर आत्मानुभूति हो गई। लक्ष्य पूरा हो गया।

74. अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति

दिनांक 04.08.1984

स्वाधीन अन्त:करण वाला पुरुष ही परमात्मा को प्राप्त होता है। जिसका अन्त:करण सर्वकाल में शान्त एवं निर्विकार रहता है वह सब, दु:खादि द्वन्द्वों से मुक्त है। कर्म और भोग में जिसकी आसक्ति नहीं है वह सर्व संकल्पों से ऊपर उठ जाता है। अर्थात् संकल्प रहित हो जाता है। वह बेला ही उसके लिये सर्वश्रेष्ठ है। उसकी दृष्टि में वासुदेव के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं रहता। वास्तव में एकत्व ही चरम सत्य है, इस निष्ठा के सिद्ध होने पर अथवा यों कहिये यह भाव सर्वकाल में स्थिर रहे तो उस पुरुष के लिये कुछ भी करना शेष नहीं रहता न कुछ जानना ही बाकी है और न ही कुछ प्राप्त करना है। उसका जीवन तो कृष्णमय होता है। बस यही अन्तिम लक्ष्य है प्राणिमात्र के लिये। उस प्राणी का जीवन धन्य है जिसने जगतीतल पर आकर जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

75. व्यवस्थित जीवन की आवश्यकता

दिनांक 05.08.1984

बन्धुओ! प्रवचनों और उत्सवों में सम्मिलित होने से केवल नीति-रीति का परिचय मिलता है कल्याण नहीं, विचारिये जीवन तो अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ है और अन्त:करण मलिन है अत: सर्वप्रथम जीवन को व्यवस्थित करना परमावश्यक है। सब व्यवहार युक्ति-युक्त होने चाहिएँ, न अधिक शयन करना चाहिए न जागरण। अधिक भोजन निषेध है और न ही भूखा रहना चाहिए। अन्त:करण की शुद्धि भी अनिवार्य है। संक्षेप में वाचक ज्ञान हितकर

सिद्ध नहीं होता, क्रियाशील जीवन ही अपेक्षित है। बोलिए मत; करिये— इससे लाभ होगा। अन्त:करण की शुद्धि के लिए योग धारण ही श्रेष्ठ है। योग का तात्पर्य आसन मुद्राओं से नहीं अपितु मन को प्रभु के चरणों में लगाना, उनके परायण होना। अब योजना बना कर साधना का आरम्भ करें तो लक्ष्य प्राप्त होगा। चलने का विचार ही करते रहने से जन्म-जन्मान्तरों में एक कदम भी नहीं बढ़ सकते। चलने से ही काम बनेगा।

76. सत्य की खोज

दिनांक 06.08.1984

जिस आनन्द के लिये प्राणी मात्र लालायित है वह इन्द्रियातीत है वह सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही अनुभव किया जाता है। अत: अन्त:करण में जो कामना तथा वासना हो उनका पूर्ण त्याग अपेक्षित है। तब बुद्धि सूक्ष्म हो जाएगी। सकल वासना का अभाव, इन्द्रियों तथा उनकी चेष्टाओं को मिथ्या अनुभव करने से ही सम्भव है। अब एकाग्र चित्त से विचारिये कि हमको इनमें समत्व बुद्धि क्यों है? भैया! इनमें ही क्या, समस्त संसार ही भ्रम से सत्य प्रतीत होता है। अनुसंधानीय दृष्टि से ही भ्रम निवारण हो जाता है। आप जरा गम्भीरता से देखिये इस संसार की कोई वस्तु स्थिर नहीं है, सब नाश की ओर बढ़ी चली जा रही हैं। आपके शरीर को लीजिए, उत्पन्न हुआ तो यह शैशव कहलाया फिर तरुणावस्था आई और चली गई, अन्त में वृद्धावस्था ने तो शरीर का ही अन्त कर दिया। यह ही क्रम हर जगह लागू होगा, विचारने से भ्रम का नाश हो जावेगा और सत्य की खोज शुरु होगी और आप सफल होंगे।

77. असत्य का सत्य भासना

दिनांक 07.08.1984

अन्तर रहित प्रभु का चिन्तन मोह-शोक से विमुक्त कर देता है। किन्तु मानव रूप रस की आसक्ति से घिरा हुआ और क्लेश से पीड़ित एवं भय से भीत होने के कारण निरन्तर चिन्तन में सफल नहीं हो पाता। भ्रम के अतिरिक्त शेष कुछ नहीं होता। भ्रम एक घोर अन्धकार होता है उसमें कुछ प्रतीत नहीं

होता, सदा ही सत्य को असत्य और असत्य को सत्य अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में आप देख सकते हैं कि आनन्द उससे बहुत दूर की वस्तु होती है और संसार से निराश ही विदा हो जाता है और बड़ी-बड़ी लालसायें, कामनायें साथ में लेकर जाता है। उसी के आधार पर फिर जन्म-मरण की परम्परा में आबद्ध होना पड़ता है और बोझ ढोते-ढोते समस्त जीवन व्यतीत हो जाता है और सत्य-असत्य क्या है— यह उसके लिये एक समस्या ही खड़ी रहती है।

78. तत्त्वज्ञान हेतु शरणागति

दिनांक 08.08.1984

मन से, वचन से और शरीर से स्वभावत: ही पाप होते रहते हैं। मनुष्य की बुद्धिमानी इसी में है कि रोग तथा मृत्यु के चंगुल में फँसने के पूर्व यह प्रायश्चित्त कर ले अन्यथा यम-यातना भोगनी पड़ेगी और बड़ी दुर्दशा भुगतनी पड़ेगी। प्राय: देखा गया है कि प्रायश्चित्त कर लेने के बाद भी फिर पाप होने लगते हैं और यातनाओं में ही जीवन बीत जाते हैं किन्तु छुटकारा नहीं होता क्योंकि पाप की सृष्टि अज्ञान द्वारा रची जाती है। अत: इसका प्रायश्चित्त तो केवल 'तत्त्वज्ञान' ही है, दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। तत्त्व ज्ञान के लिए भगवान् की शरण लेनी चाहिए। इसकी योजना बस इतनी ही है कि लज्जा, संकोच का त्याग हो और सम्पूर्ण आसक्तियों का अभाव और अहंता, ममता से दूर रहकर भगवत् उपासना में लग जावे, फिर नि:सन्देह भगवत् धाम में निवास होगा।

79. सत्य-असत्य का विचार

दिनांक 09.08.1984

जिस भी भाग्यशाली पुरुष को तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाता है वह शाश्वत आनन्द को प्राप्त कर सदा के लिये कृत-कृत्य हो जाता है। आइये! जरा सत्य-असत्य पर विचार करें। सत्य विचारने से पता चलता है कि सत्य एक तत्त्व है जो अविनाशी, शाश्वत, पुरातन, नित्य है। असत्य जिसकी कोई सत्ता

ही नहीं। वह तत्त्व सत्य भी है और असत्य भी और सत्य, असत्य से परे भी। यह जगत् उसकी परा तथा अपरा प्रकृति का परिणाम है और वह सबका मूल कारण है। तात्पर्य यह है कि सब कुछ वह ही बना हुआ है। उसके अतिरिक्त किञ्चित् मात्र भी कुछ नहीं है। ऐसा अनुभव कर लेने के बाद आप ही बतायें क्या जानना शेष रहता है और क्या पाना। सारांश यह है कि "द्वैतभाव" ही सारे क्लेश, भय, शोक, मोह का हेतु है। जहाँ आप ही आप हैं वहाँ आनन्द के सिवा और कुछ नहीं।

80. दैवी माया का प्रभाव

दिनांक 10.08.1984

मन का चंचल होना और बुद्धि का अस्थिर होना अज्ञान का पर्दा मोटा, भ्रम तथा भ्रान्ति का होना और हर परिस्थिति में असमर्थता का अनुभव होना, किसी भी तरह सफलता न मिलना, यह सब श्रीकृष्ण की दैवी माया के कारण होता है। जिस पर विजय पाना किसी प्रकार भी सम्भव प्रतीत नहीं होता है। केवल उनके शरणापन्न होने से ही इस माया के पार जाया जा सकता है अन्यथा श्रम के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। जब तक बड़े-बड़े तपस्वी, ज्ञानी, दानी, यशस्वी, मनस्वी और मर्मवेत्ताजन तक अपनी साधना को तथा अपने आप को उनके चरणों में समर्पित नहीं कर देते, कल्याण की प्राप्ति नहीं होती। साधारण कोटि के राही के लिये तो कहने की कोई बात ही नहीं है। शरण ग्रहण करने के लिए लोक परलोक की समस्त आसक्तियों का त्याग, अहंता, ममता से रहित, भय से रहित होना परमावश्यक है। इतना होने पर श्रीकृष्ण कृपा करके शरण में ले लेते हैं।

81. अमूल्य समय का सद्-उपयोग

दिनांक 11.08.1984

जीव का निरन्तर विषय-चिन्तन ही उसे वास्तविक प्रेम से वंचित किए रहता है। उसे इस प्रपंच में, जो कि नितान्त मिथ्या है, सुखत्व की भ्रान्ति हो

गई है और राग द्वेष के परिणाम, जो यह सुख दुःख हैं उनसे सन्तृप्त होकर यत्र-तत्र भटकता रहता है। यह सर्वथा दयनीय अवस्था है किन्तु अभिमानवश उसे यथार्थवाद का बोध ही नहीं हो पाता। उसे ऐसा भ्रम बना रहता है कि वह सब कुछ जानता है। अतः वह न कुछ सुनना चाहता है और न जानना ही चाहता है। सर्वदा अविद्या की गोद में विश्राम करता है। बन्धुओ! कैसा अमूल्य समय व्यर्थ की चेष्टा में ही व्यतीत हो रहा है। कितने दुःख की बात है। असलियत तो यह है कि बिना जिज्ञासा के कोई भी सत्य को नहीं जान सका है जो देखा व सुना जाता है जिसका सम्बन्ध भूत से हो या वर्तमान या भविष्य से कुछ भी श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं है। ऐसा जानकर शान्ति को प्राप्त करो।

८२. परमात्मा के अनेक रूप

दिनांक 12.08.1984

विचारने से ऐसा प्रतीत होता है कि सकाम कर्म जिसका फल अर्थ एवं काम है और उनका निरन्तर उपभोग और सदा उनकी प्राप्ति हेतु अनेक प्रकार के अनुष्ठानों में लगे रहना ही प्रभु से विमुख रहने का हेतु है। अतः दृढ़ विचार करके इस मोह की धारा से निकलकर देखे कि एक परमात्मा ने अनेक रूप धारण किये हुए हैं। वह ही त्रिविध सात्विक, राजस और तामस अंहकार और उनके परिणाम स्वरूप पंच महाभूत और दस इन्द्रियाँ और एक मन बना हुआ है और इन्हीं के संसर्ग से जीव कहलाया। परमात्मा एक है और दूसरी कोई वस्तु हो, यह नितान्त असम्भव है। इसका अनुभव श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य और एकाग्रचित व असंग बुद्धिवाले पुरुष को ही हो पाता है। इसके अतिरिक्त तो केवल वाचक ज्ञान मात्र है।

८३. रहनी को व्यवस्थित करें

दिनांक 13.08.1984

वेदों का तात्पर्य श्रीकृष्ण से ही है। यज्ञ श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए

किये जाते हैं। योग भी श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए ही होता है। सब अनुष्ठानों की परिसमाप्ति श्रीकृष्ण में होती है। कर्म, भक्ति और ज्ञान यह भिन्न-भिन्न नहीं हैं। यह तीनों एक ही हैं। इनके अनुसार आचरण करने से श्रीकृष्ण का अनुग्रह मिलता है। सब गतियाँ श्रीकृष्ण में समा जाती हैं। अतः सब कुछ भुलाकर श्रीकृष्ण का ही निरन्तर स्मरण करना चाहिए। यदि आप पूर्ण संयम से रहना सीख लें और मन से, वचन से और कर्म से सत्य का पालन करना सीख लें, तो निश्चय ही आपका लक्ष्य पूरा हो जायेगा। मनुष्य जीवन गृहस्थी का भार-वहन करने के लिए नहीं है। यह देव-दुर्लभ मानव-देह श्रीकृष्ण ने करुणा करके दी है। इसका उद्देश्य भवसागर को पार करके अपनी आत्मा श्रीकृष्ण को प्राप्त करना है। आपने अपनी रहनी को यदि व्यवस्थित कर लिया तो इसी जीवन में श्रीकृष्ण से मिलन हो जायेगा।

84. विनाशी शरीर से अविनाशी की प्राप्ति

दिनांक 14.08.1984

"मन का स्पंदन ही जगत् है।" मन के द्वारा ही बंधन और मोक्ष की कल्पना की गई है। मन को ही भ्रम तथा भ्रान्ति होती है। राग-द्वेष और भय का कारण मन ही है। समस्त विचारों का निर्माता भी मन ही है और भोक्ता भी। आत्मा तो निर्लेप, निर्विकार, निर्गुण स्वयं प्रकाश, व्यापक, सर्वशक्तिमान है, प्रकृति से परे है, सब का साक्षी है, सबका मूल कारण है और स्वयं कारण रहित है। आत्मा अनुभवगम्य है। मन का अविषय और वाणी का अविषय है। जीवन भोगों के लिए नहीं है। इस विनाशी शरीर से अविनाशी को प्राप्त करना है। जैसे धुएँ से अग्नि और जेर से गर्भ ढका रहता है उसी प्रकार काम से ज्ञान ढका हुआ है। इस काम को नष्ट करके विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है जिसके द्वारा आत्मानुभूति होती है। आत्मवेत्ता पुरुष ही सच्चे आनन्द के अधिकारी हैं। प्रवचनों के द्वारा तो कुछ परिचय ही सम्भव हो सकता है।

85. सत्संग एवं हरिकथा श्रवण से सफलता

दिनांक 15.08.1984

यह ऐश्वर्य, भोग, यश, कीर्ति सम्पत्ति और संतति मनुष्य को श्री हरि से अलग कर देती है। ओह! फिर भी मनुष्य इनको ही प्राप्त करने के लिए निरन्तर चेष्टावान देखा गया है। यह मनुष्य का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? कौन जाने कितने जन्मों से यह भूल होती आ रही है। फिर भी वह नहीं चेतता। ऐसा लगता है कि प्रभु की अहैतुकी कृपा से जब सत्संग मिलता है तब मनुष्य का उत्थान होता है। जीवन के विषाक्त होने की वजह से मन तथा बुद्धि स्थिर नहीं रहते और विपर्यय दोष और संशय के कारण सदैव पतन का भय बना रहता है। कल्याणकारी पुरुष को प्रतिज्ञाबद्ध होकर साधना में लग जाना चाहिए। समय थोड़ा है और कार्य बहुत है। अनुभवी पुरुषों का कहना है कि प्रभु के साक्षात्कार से ही क्लेशों से छुटकारा हो पाता है अन्यथा आवागमन के चक्कर में पड़ना ही पड़ेगा। हरि मिलन और किसी उपाय से नहीं होता है, केवल सत्संग का नित्य सेवन और हरिकथा श्रवण ही सफलता प्रदान करने में समर्थ है दूसरा और कोई उपाय नहीं।

86. जीवन का लक्ष्य प्रभु प्राप्ति

दिनांक 16.08.1984

भगवत् प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। अनेक प्रकार के संकट, आपत्ति, विपत्ति, अभाव, रोग, शोक आदि का सृजन लक्ष्य रहित जीवन के लिए ही हुआ है। जिनका लक्ष्य सर्वदा सामने रहता है वह अनायास ही बाधाओं को पार करके साधना में लग जाता है। हम तो ऐसा समझते हैं कि सहजभाव से हरि की शरण लेने से प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं और वह अपना लेते हैं। उसे बुद्धि योग प्रदान कर देते हैं। जिसके द्वारा रूप रहस्य व्यक्त हो जाता है। यथार्थ बोध एवं भगवत् प्रेम प्राप्त कर आनन्द-मग्न हो जाते हैं और अल्पकाल में ही भगवत् प्राप्ति हो जाती है। किंवदन्ती तो ऐसी सुनी जाती है कि प्रभु का

मिलन अत्यन्त कठिन है किन्तु ऐसा है नहीं। उनका मिलना बहुत ही सहज और सरल है। सर्वप्रथम तो कठिनाई के भाव का त्याग करके श्रद्धा और विश्वास से उपासना की जाय तो सफलता मिलेगी।

87. एकत्व में नानात्व का आभास

दिनांक 17.08.1984

स्वरूप विस्मृति के कारण ही भ्रम उत्पन्न होता है, एकत्व में नानात्व भासता है। अकर्ता में कर्तापन का आभास और असंगता में संग का आरोप, अपने मन में परायापन भी भ्रम की ही देन है। निरन्तर आत्म चिन्तन होने से भ्रम से मुक्ति मिल जाती है। तत्पश्चात् रहस्य भी खुल जाता है। पता लगता है वह अपने हैं, अपनी आत्मा हैं, अपने जीवन स्वर्स्व हैं, सगे हैं। जैसे आभूषण स्वर्ण से पृथक नहीं है। महाकाश से घटाकाश वियुक्त नहीं है, इसी प्रकार भक्त से भगवान् कभी अलग नहीं होते। अतः इस विषय को भली प्रकार समझकर प्रभु से प्रेम करो। उनके नाम, गुण तथा प्रभाव का श्रवण कीर्तन और मनन करो। नियम से स्वाध्याय करो और उनका पूजन करो। ऐसे आचरण से वह प्रसन्न हो जावेंगे। वह परम उदार हैं, अपने आपको दे डालो, यह ही आपका लक्ष्य था।

88. श्रीकृष्ण के समान कोई नहीं

दिनांक 18.08.1984

बन्धुओ! श्रीकृष्ण के समान कोई है ही नहीं फिर अधिक तो हो ही कैसे सकता है? मानव को उनकी प्राप्ति—जैसे भाव और प्रेम द्वारा हो सकती है वैसे अन्य साधनों से सम्भव नहीं। उनका प्रेम बड़ी सुगमता से, उनकी महिमा को जान लेने से प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् उनके दर्शन तो निरन्तर होते रहेंगे। उनकी महिमा का वाणी बखान करने में समर्थ नहीं है फिर भी अपने को पवित्र करने के लिए प्रयास करती है। कोटि ब्रह्मा, कोटि विष्णु, कोटि महेश उनसे हर क्षेत्र में न्यून ही ठहरते हैं। चतुराई में कोटि सरस्वती भी उनकी

बराबरी नहीं कर सकतीं। कोटि कामदेव की सुन्दरता श्रीकृष्ण के समक्ष फीकी पड़ती है। ऐसे प्रभु को छोड़कर नाशवान जगत् की ओर जो दौड़ता है उसको शान्ति कहाँ? फिर आत्मसुख तो बहुत दूर की बात है। अतः निश्चय कीजिए अब श्रीकृष्ण के होकर रहेंगे। उनके नाम का जप करेंगे और कुसंग से दूर रहेंगे।

८९. प्रभु मैं तेरा हूँ

दिनांक 19.08.1984

बन्धुओ! श्रीकृष्ण की वाणी से ही पता चलता है कि सब कुछ वासुदेव ही वासुदेव है, शेष कुछ भी नहीं। किन्तु ऐसा अनुभव नहीं होता, केवल भगवान् की माया ही एकमात्र कारण है जिसके द्वारा जीव मोहित होकर शरीर में अहम् बुद्धि कर लेता है और अनेक कामनायें उत्पन्न हो जाती हैं। उनको पूर्ण करने में लग जाता है किन्तु उनका पूर्ण होना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है और जीवन का अन्त हो जाता है। इस परम्परा से छुटकारा केवल सत्संग से ही होता है। आप प्रतिज्ञा करें, नियम से सत्संग सेवन करेंगे, फिर आप अपने लक्ष्य को अवश्य ही प्राप्त कर सकेंगे। जीव मात्र का लक्ष्य भगवत् प्राप्ति ही है। भैया! जप, तप, यज्ञ, शम, दम, व्रत, दान, ज्ञान, वैराग्य, विवेक और विज्ञान इन सबका फल श्रीकृष्ण प्रेम है जो सहज ही सत्संग से प्राप्त हो जाता है। एक गुप्त रहस्य आपको बता दें **श्रीकृष्ण के चरण कमलों में श्रद्धा और प्रेम से दण्डवत् प्रणाम करने से आवागमन छूट जावेगा और यह कहने से कि "प्रभु मैं तेरा हूँ", वह अपना लेते हैं।**

90. संसार में दुःख के सिवा कुछ नहीं

दिनांक 20.08.1984

इस दुःखमय संसार में सिवाय दुःख के और हो भी क्या सकता है, किन्तु फिर भी वह कौन सा आकर्षण है जिसकी वजह से मानव इसमें चिपटा रहता है? जरा इस तथ्य पर दृष्टिपात कीजिए। जब मानव संसार में आता है तो सर्व प्रथम नौ माह माता के गर्भ में रहना पड़ता है। यह गर्भ-वास एक प्रकार से नर्क-वास ही है। जन्मते समय बड़ी पीड़ा सहनी पड़ती है। बचपन में पराधीन रहकर दंड और ताड़ना सहकर समय पूरा किया। तारुण्य के द्वार पर पहुँचे, यहाँ गृहस्थ जीवन का भार ढोया। अनेक प्रकार के क्लेश भुगते, फिर जरा अवस्था ने आ घेरा और बड़ी निर्दयता से जीवन का अन्त ही कर दिया। आदि, मध्य और अंत में दुःख के सिवा और क्या मिलना था। इस दुःख से सदा के लिये छुटकारा "हरिभजन" से ही हो सकता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। ईश्वर में मन लगे ऐसा उपाय करें, प्रभु की भक्ति करें, उनके नाम, गुण और प्रभाव का श्रवण, कीर्तन और मनन करें और प्रणाम करें। इस प्रकार जीवन क्रम बनाने से आप प्रभु को प्राप्त कर लेंगे।

91. पापाचरण का परिणाम

दिनांक 21.08.1984

अनादि, अविद्या से वशीभूत होकर कामना पूर्वक अनेक निषिद्ध कर्मों का आचरण कर यह जीव अपने लिए दुःख की व्यवस्था स्वयं करता है क्योंकि दूसरा दुःख-सुख देने वाला कोई नहीं। आप जानते हैं पाप में शान्ति कहाँ? और यह जीव पापाचरण के कारण कितना निर्बल हो जाता है। यह जानते हुए कि यह दुराचार है फिर भी उससे दूर नहीं हो पाता। आगे चलकर तो उसे पाप-पुण्य का बोध ही नहीं रहता। निरन्तर पाप कर्मों में रत रहता है और उनको ही सुख मानता हुआ शास्त्रों की खुली अवहेलना करने लगता है। अन्धकार और अहंकार से घिर जाता है। अपने आपको सर्वश्रेष्ठ मानने लगता है। क्या इस दयनीय अवस्था से उभरने का कोई उपाय है? हाँ, असत्य का त्याग करें, हरि की शरण ग्रहण करें और सन्तों का संग करें। निरन्तर भगवान् का स्मरण करें। निश्चय ही बेड़ा पार हो जायेगा।

92. प्रभु की अलौकिकता

दिनांक 22.08.1984

सम्पूर्ण सृष्टि की रचना एवं संहार प्रभु की माया द्वारा होता है। वह उनकी एक शक्ति है। ऐसी अनन्त शक्तियों के वे आश्रय है, भला उनको जानने की किसमें सामर्थ्य है। भगवान् शेष जो अपने सहस्र मुखों से उनका गुणगान करते चले आ रहे हैं वह भी उनका पार न पा सके। जो प्राणी अपने आपको और अपने सर्वस्व को उनके श्री चरणों में न्यौछावर कर देता है श्री हरि उस पर दया करते हैं। वह दया का पात्र ही इस माया के स्वरूप को जान पाता है और उसे पार भी कर जाता है। वास्तव में ऐसे पुरुष ही कुत्ते और सियारों के कलेवा रूप इस शरीर में "यह मैं हूँ और यह मेरा है" ऐसा भाव नहीं करते। भला बताइये ऐसे पुरुषों के लिये क्या दुर्लभ है। उनका तो इस संसार में जन्म लेना सफल हो गया। वह शाश्वत शान्त और अचल स्थान सदा के लिये प्राप्त करके कृत-कृत्य हो जाता है।

93. नाम ही सर्वोपरि है

दिनांक 23.08.1984

जो कोई भी इस भव से पार होकर प्रभु को प्राप्त करना चाहे तो वह अपने लक्ष्य को केवल श्रीकृष्ण के नाम स्मरण से ही पा सकेगा। आपको हम यह बता दें, श्रीकृष्ण का नाम परम पावन है जो इस नाम का उच्चारण करता है वह समस्त पापों से तत्काल मुक्त होकर श्रीकृष्ण के सानिध्य में स्थान प्राप्त कर लेता है, यह निःसन्देह सत्य है। यह भी हम आपको बता दें कि सारे यज्ञ, लाखों व्रत, सर्व तीर्थ स्थान, तप, अनेकों उपवास, हजारों वेद पाठ, पृथ्वी की सैकड़ों प्रदक्षिणा कृष्ण नाम जप के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं होतीं। ऐसा भगवान् ने स्वयं कहा है। किसी भी अवसर पर और किसी भी प्रकार मेरा नाम लेने से मनुष्य निश्चय ही परम गति को प्राप्त हो जायेगा। अब आलस्य, प्रमाद, भोग तथा दुराचार को त्याग कर आप प्रभु

में निष्ठा रखकर उनके नाम को पकड़ लो और निरन्तर स्मरण करो, सफलता आपकी है।

94. लक्ष्य हेतु त्रिगुणातीत होना

दिनांक 24.08.1984

जो मानव संशय और पाप वासना से पूर्णतः रहित हो जाता है वह अपने परमार्थ को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। आप जानते हैं यह पाप-पुण्य गुणों के द्वारा रचित हैं। अतः तीनों गुणों को जीतना अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में त्रिगुणातीत होना पड़ेगा। साधारणतः हर मनुष्य से पाप-पुण्य स्वभावतः होते रहते हैं। किसी से कम, किसी से अधिक। इसी कारण से न तो शान्ति ही मिलती है और न सफलता ही। भैया! दृढ़ संकल्प तथा कठोर सहनशील होकर चलिये, फिर जीवन का लक्ष्य जो भगवत् प्राप्ति है, वह अवश्य ही पूरा होगा। जो पुरुष हृदय के उबलते हुए भयंकर क्रोध को आत्म विचार के द्वारा शरीर में ही शान्त कर लेता है, बाहर नहीं निकलने देता, वह काल क्रमानुसार तीनों गुणों पर विजय प्राप्त करके भगवत् प्राप्ति निश्चय ही कर लेता है, यह पूर्णतया सत्य है।

95. नाम नामी में भेद नहीं

दिनांक 25.08.1984

यह कलियुग है जो पाप का मूल है। इसी कारण से मनुष्य स्वभाव से पाप परायण है और अल्प-आयु, मन्द-बुद्धि, मन्द-भाग्य, विषय-लोलुप, मलिन-मन और अजितेन्द्रिय होने के नाते कौन से साधन से यह आत्म-अनुभव प्राप्त करे व सुखी हो, यह एक जटिल समस्या है। किन्तु बन्धुओ, निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। महान् पुरुषों ने दया करके जीव के कल्याण के लिये मार्ग दर्शन किया है, और शास्त्रों का अभिमत भी ऐसा ही है कि जिन हरि का तप हृदय है विद्या शरीर, कर्म आकृति, यज्ञ अंग, धर्म मन और देवता जिनके प्राण हैं वस्तुतः उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। अतः कल्याण-कामी

मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि प्रभु के नाम और प्रभु में कोई अन्तर नहीं है। अतः हरि के नाम का सहारा लेकर अर्थात् उनका होकर उनका स्मरण करता रहे। इस प्रकार की रहनी से निश्चय ही लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा।

96. पूर्णकाम गोपाल की शरण गहो

दिनांक 26.08.1984

तप में कितनी शक्ति है, सीमित ही होगी। यज्ञ में भी जो प्रभाव है उसकी भी कोई सीमा है। योग की शक्ति अनन्त नहीं। सभी साधन अपना सीमित प्रभाव रखते हैं। असीम तो एक नन्द का लाल है जो सारे जग का आश्रय है। मेरे अपने विचार में मनुष्य को केवल उनका ही होकर रहने में कल्याण है अन्यथा कुछ न कुछ अभाव या कमी रहेगी ही। पूर्णकाम तो वह गोपाल की शरण ग्रहण करने से ही हो सकेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। उनके शरण जाने में क्या कठिनाई है? आपको केवल छल छोड़कर मन, कर्म, वचन से उनके होने की केवल धारणा ही तो करनी है। फिर आप देखेंगे कि ज्ञान वैराग्य से संयुक्त भक्ति आपके हृदय में नृत्य कर रही है, प्रेम का सागर उमड़ रहा है, आनन्द की बाढ़ आ रही है, यह ही तो आप चाहते हैं।

97. जन्म-मरण का चक्र

दिनांक 27.08.1984

इस शरीर को 'मैं' मानना और स्त्री, धन-सम्पत्ति आदि में 'मेरे पन' का भाव रखना—यह भी हृदय की ग्रन्थि कही जाती है। इसी के कारण जीव जन्म-मरण की परम्परा को भोगता रहता है। अतः जो मनुष्य अपने जीवन को सफल बनाना चाहे तो अन्तःकरण की सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग दे। कामनाओं का उदय होते रहने और उनकी पूर्ति में ही अनेक जन्म बीत जाते हैं परन्तु इनकी पूर्ति नहीं होती। सत्य तो यह है कि इनका त्याग ही इनकी पूर्ति है। आपको यह भी बतायें कि समस्त कामनाओं के त्याग होते ही तत्काल आप अपने स्वरूप में स्थित हो जावेंगे। यह ही जीवन का लक्ष्य है। बन्धुओ!

कामनाओं का त्याग प्रेम से प्रभु के चिन्तन द्वारा हो जाता है, कोई कठिनाई नहीं होती।

98. 'भूलना' भी एक कला है

दिनांक 28.08.1984

सोलह कलाओं में से तो यह कला है नहीं जो हम बताने जा रहे हैं। यह कला अपने आप में एक रहस्य छिपाये हुए है। भला, वह कौन सी कला है? वह कला है भूलना। भूलना है तो पाप को, व्यभिचार को, निन्दा को, असत्य को, बुराई को, छल-कपट को भूलें। यदि कदाचित् 'आप' अपने आप को भूल गये तो जानते हो आप देखोगे कि आप सन्त हो गये। श्याम के प्यारे हो गये। अब आपको स्मृति प्राप्त हो गई। अहर्निश श्याम के अतिरिक्त अब आपको कुछ याद नहीं रहता। निरन्तर उनकी स्मृति रहने लगेगी।

99. प्रभु मिलन क्यों नहीं होता है?

1. प्रभु से मिलने की इच्छा नहीं है।
2. संशय रहता है।
3. झूठ बोलते हैं।
4. पाप करते हैं।

100. "ॐ शान्ति-शान्ति"

नित्यप्रति किये जाने वाला अन्तर अभ्यास (स्वहस्तलिखित)

तू तेरो यह पिण्ड है, तू तेरे हैं प्राण।
तू तेरी ही आत्मा, तू जग जीवन खान॥
तू तेरो मन बुध चित्त, तू तेरी ही जान।
तू तेरी इस शक्ति ने, रच्यो सकल जहान।
मैं मेरो स्वप्नेहु नहीं, तुम देख लेउ धर ध्यान॥

101. श्रीकृष्ण की नित्यचर्या

श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाते और हाथ मुँह धोकर, अपने मायातीत आत्म स्वरूप का ध्यान करने लगते।

102. निष्काम कर्म

फल और आसक्ति का त्याग कर ईश्वर आज्ञानुसार भगवदर्थ समत्व बुद्धि से कर्म करना ही निष्कामता है।

103. शान्ति का नुस्खा

1. अहंता ममता का त्याग। 2. सदा सत्संग करना।
3. गंगा जल के समान जीवन। 4. अध्यात्म साधना।
5. अपने अहं को प्रभु की इच्छा में मिला कर उनके हाथ का यंत्र अपने को समझना।
6. सदाचार पालन करना। 7. विचार के द्वारा निर्माण।
8. सुरति के द्वारा प्रभु स्मरण। 9. नियम से ध्यान करना।
10. स्वाध्याय नियम से करना। 11. हरि कीर्तन करना।

104. दृढ़ता से स्वीकारें

1. तुम्हारा कोई नाम, धाम नहीं है।
2. तुम सब बंधनों से नित्य मुक्त हो।
3. यह शरीर पंचभूतों से बना है। इससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है।
4. संसारी सुखों का मूल मोह है, इनका आकर्षण मिथ्या है और यह सदाचार से गिराने वाला है।
5. इन्द्रिय भोग दु:ख रूप है।

105. पूज्य पाद जी द्वारा स्वहस्तलिखित प्रार्थना

ब्रज के रखवारे, नन्द दुलारे।
आओ आओ रे, मैं तुम्हें बुलाऊँ॥

दया के सागर, हे नटनागर।
आओ आओ रे, मैं तुम्हें बुलाऊँ॥

गउवों के चरैया, रास के रचैया।
आओ-आओ रे, मैं तुम्हें बुलाऊँ॥

कृष्ण कन्हैया, दाऊ जी के भैया।
आओ-आओ रे, मैं तुम्हें बुलाऊँ॥

106. पावन उपदेश

अक्षय तृतीया शुक्रवार, मई 1987

1. यह शरीर हड्डी, मांस और रुधिर का पिण्ड है। इसे 'मैं' न मानना।
2. स्त्री-पुत्रादि को अपना न मानना।
3. संसार को निरन्तर क्षणभंगुर देखना।
4. इसकी किसी वस्तु को स्थाई न समझना और राग न करना।
5. पूर्ण वैराग्यवान होकर, भगवान् की भक्ति में लगे रहना।
6. भगवत्-भजन ही सब से बड़ा धर्म है निरन्तर उसी का आश्रय लिये रहना।
7. सब लौकिक धर्मों से मुख मोड़ लेना।
8. सदा महात्माओं की सेवा करना।
9. भोगों की लालसा को पास न फटकने देना।
10. दूसरों के गुण-दोष कभी न देखना।
11. भगवान् की कथाओं का श्रवण करते रहना तथा भगवत्सेवा करते रहना।

107. विचारणीय विषय

(क) श्रीरामसुखदास जी के उद्गार 'मुझे भी व्याख्यान देते वर्षों बीत गये पर बीमारी की जड़ यहाँ है, इस का पता जल्दी नहीं लगा, पीछे इस बीमारी की जड़ का पता लगा कि प्रेम की इच्छा ही असली बन्धन है, यह कैसी दुर्लभ बात है।'

(ख) यह एक नियम है कि संसार के साथ मिलने से संसार का ज्ञान नहीं होता। परमात्मा से अलग रहने पर परमात्मा का ज्ञान नहीं होता। संसार से अलग रहने पर ही संसार का ज्ञान होगा।

परमात्मा से अभिन्न होने पर ही परमात्मा का ज्ञान होगा। अतः असत् के साथ मिल जायेंगे तो न सत् का ज्ञान होगा, न असत् का ज्ञान होगा। वास्तव में संसार से आप की भिन्नता है। इस वास्ते संसार से भिन्न होने पर ही सत् का ज्ञान होगा। विकारों को अपने में मानते रहने से असत् से भिन्नता नहीं होती और असत् से मिलना न होने से स्वरूप का बोध नहीं होता। तात्पर्य है असत् का ज्ञान होने से ही असत् की निवृत्ति होकर स्वतः ही सत् में स्थिति हो जाती है।

108. श्वास की नाप

श्वास की लम्बाई 12 अंगुली होती है। एक-एक अंगुल श्वास घटने पर निम्नलिखित उपलब्धियाँ होती हैं।

एक गये निष्कामता, दो के गये आनन्द।
तीन गये कविता भने, वाणी सिद्ध कहन्त॥
दूर दृष्टि हो पाँचवें, गगन गमन हो षष्ठ।
अति वेग सप्तम चले, अनिमादिक गये अष्ट॥
नव में नौ निधि जानिये, दश अनेक वन जाय।
छाया तन की ना रहे, द्वादश हंस कहाय॥

श्रीदिनेशचन्द्र गर्ग द्वारा संग्रहीत 15 घटनाऐं

1. यमराज व महाराज जी का संवाद

एक दिन बाबा अपने मकान की छत पर बैठे हुये थे। उसी समय यह देखते हैं कि आकाश लोक से एक दिव्य प्रकाश का पुंज बाबा के सन्मुख आया। उस प्रकाश पुंज के साथ ही साथ एक बड़ा विशाल भैंसा आया जिसपर यमराज देव विराजमान थे। उनके मुख से तथा शरीर से स्वर्णिम आभा देदीप्यमान हो रही थी। यह सोने सी सदृश आभा थी। यमराज देव ने कहा—"देखो! मैं तुम्हें स्वयं लेने आया हूँ मेरा कोई भी अनुचर तुम्हें लिवा लाने की हिम्मत नहीं करता इसलिये मैं स्वयं तुम्हें लिवाने आया हूँ।" बाबा मौन रहे कुछ न बोले। यमराज देव ने उन्हें तीन-चार बार यह आदेश दिया कि तुम अब अपने समस्त कार्यों को यहीं पर छोड़कर मेरे साथ चलो। बाबा ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। यमराज के ज्यादा आग्रह करने पर बाबा ने मुस्कान भरे चेहरे से यमराज से यह प्रश्न किया कि क्या आप मेरे चलने के लिये 'दादा' (कन्हैया) से अनुमति ले आये हो? यमराज ने कहा 'नहीं'। उसी क्षण यह होता है कि कन्हैया (दादा) की बजती हुई मधुर मुरली तथा पैरों के चलने से नुपूर की ध्वनि बाबा को स्पष्टतया सुनाई दी। यह आवाज आते ही पहिले वहाँ से यमराज देव अर्न्तधान हो गये फिर भैंसा तथा अन्त में स्वर्णिम कान्ति तथा आभा पुंज भी।

2. तुम हमें जान नहीं पाये

दि. 18.05.74

बाबा ने पूज्य माताजी व बालाजी से कहा, "देखो तुम हमें अभी तक नहीं जान पाये, तुम अब भी अज्ञानी बने हुये हो।" इस मँहगाई के जमाने में

लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं, हर प्रकार का आर्थिक अभाव चारों ओर पैसा ही पैसा। लो मैं आज तुम्हें सब राज बताये देता हूँ कि कन्हैया के ऊपर पूर्णतः आश्रित रहने वालों की प्रभु किस प्रकार व्यवस्था करते हैं। उन्होंने माता जी व बाला जी को पूजा स्थल पर बुलाया और दादा (कन्हैया) का खजाना दिखाया। एक दिव्य आसन पर "दक्षिणावर्त" शंख रखा था जो कि मणियों आदि से सुशोभित था तथा जिसमें से दिव्य तेज निकल रहा था। यह शंख स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् के पास था श्री शुकदेव जी के पास रहता है अन्य किसी भी देवता आदि के पास दर्शनार्थ भी उपलब्ध नहीं है।



यह शंख बाबा के पास उपलब्ध है जो कि उन्हें दादा (कन्हैया) द्वारा समर्पित किया गया है। इसी शंख के प्रताप से सभी कुछ होता है। बाबा ने बताया कि तुमने असली वस्तु तो देख ली मगर नकली वस्तु भी देख लो। वह था असंख्य नोटों की गड्डियों का ढेर। बाला ने बताया कि वह इतना था कि शायद उस धनराशि को लेकर देश के महान पूँजीपति टाटा, बिरला आदि से बाबा की तुलना की जाये तो शायद वे उनकी तुलना में अपेक्षाकृत बहुत ही गरीब प्रतीत होंगे। यह एक झलक दिखाने के बाद बाबा ने अपने स्वरूप को समेट लिया। वह दिव्य दक्षिणावर्त शंख बाबा के पास हर समय विद्यमान रहता है। उसी शंख का यह प्रभाव है कि बाबा के पास दारिद्र्य जैसी अशुभ स्थिति नाम मात्र को नहीं है। बाबा का खर्च मेरे अनुमान से लगभग 800-900 रुपये माहवार से कम नहीं है। बाबा ने एक अस्पताल श्रद्धेय श्रीरामकृष्ण परमहंस जी के नाम से (श्री राम कृपा आध्यात्मिक सेवा निकेतन) खोल रखा है। इस अस्पताल में सभी को समान रूप से बड़े प्रेम के साथ निःशुल्क चिकित्सकीय सलाह तथा

औषधि प्रदान की जाती है। इसका सारा खर्च बाबा स्वयं उठाते हैं। मैंने बाबा को कभी भी किसी से माँगते नहीं देखा, हमेशा देते ही देखा है। उनका सारा खर्च दादा स्वयं चलाते हैं। कन्हैया (दादा) ने उनका हाथ सदैव-सदैव के लिये थाम लिया है— ऐसे हैं हमारे परम उदार श्रीकृष्ण।

बाबा इसी दिन शुद्ध देशी घी के दो टीन जिनका मूल्य लगभग 800 रुपये था, बाजार से लाये। बाबा ने यह एक घटना उसी दिन दिखाकर उपरोक्त घटना को सत्य कर दिया। बाला के नाम उन्होंने एक लाख बीस हजार रुपये की धनराशि बैंक में डाल रखी है तथा पूज्य माता जी के नाम भी।

3. शंखनाद

यह घटना सन् 1972 की है। मैं आगरे से बाबा के दर्शनार्थ आया था तथा रात्रि में उन्हीं के पास चटाई पर सोया हुआ था। रात्रि के लगभग 12 बजे का समय था, मैं अर्द्धनिद्रावस्था में था। उसी समय यह देखता हूँ कि बाबा अचानक अपनी चारपाई से उठ बैठे और बहुत देर तक मौन अवस्था में बैठे रहे। उस समय पूज्य माता जी तथा बाबाजी भी जागृत अवस्था में थे। पूज्य माता जी ने बाबा जी से पूछा—"क्या बात है?" बाबा ने कहा—"पकड़ो, क्या बात है?" माता जी ने मुझ से कहा—"कोई विशेष बात है इसीलिए बाबा इतने मौन हैं।" बाबा की इस रहस्यमयी घटना को कोई नहीं पकड़ पाया। बाबा ने अंत में कहा, देखो मैंने एक पुस्तक में "शंखनाद" जागृत करने की विधि को पढ़कर इसका प्रयोग 1-2 दिन में किया है यह शंखनाद ठीक 12 बजे रात्रि में ध्वनित होता है। अतः बाबा को शंखनाद ने स्वतः ही 12 बजे रात्रि में जगा दिया था।

बाबा ने कहा, देखो! इस समय घनघोर शंखों की आवाज मेरे कानों में सुनाई दे रही है। बड़ी भयंकर आवाजें हैं। दादा की लीला है। मैं यह कह नहीं सकता कि बाबा की यह एक अद्भुत लीला थी या अन्य कोई रहस्य भरी

भावना, जिसको कि उन्होंने प्रकट किया। मुझे उस समय रात्रि के ठीक 12 बजे चारों ओर से शंखों की आवाजें सुनाई दीं। मैं यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। मैंने इन शंखों की आवाजों को बहुत देर तक सुना। धन्य हो बाबा, तुम्हारी लीला तुम्हीं जानो।

4. व्रत से प्राप्त अनुभूति

यह घटना 2 अप्रैल 1974 की है। यह दिन नवरात्र समाप्त होने से एक दिन पूर्व का है। बाबा नवरात्र के व्रत को कर रहे हैं। आज व्रत का 10 वाँ दिन था। बाबा ने इन दिनों में सिर्फ शहद, नींबू, पानी आदि का ही शर्बत पिया है। परिवार के अन्य सदस्य, माता जी तथा बालाजी ने भी बाबा के साथ-साथ उपवास किया है। बाबा ने अपने द्वारा इस किए गये व्रत से प्राप्त अनुभूति का सार जो कि माता भगवती ने उन्हें स्वयं निर्णय के रूप में बताया था, निम्न प्रकार से बताया—

(1) संचय का अन्त विनाश

(2) संयोग का अन्त वियोग

(3) उन्नति का अन्त पतन

(4) जीवन का अन्त मृत्यु

इन चारों पहलुओं को मनुष्य को रोजाना दोहरा लेना चाहिए इससे मनुष्य पाप करने से बचा रहता है।

5. माँ भगवती की कृपा

यह घटना नवरात्र व्रत करने से एक दो दिन पूर्व की है, बाबा पर माता भगवती की अचानक कृपा हुई। माता ने पहले महाराजजी को बाबा रामकृष्ण परमहंस देव जी के दर्शन दिखाये। बाबा ने उन्हें स्वयं यह बताया कि मैं शरीर रूप में तुम्हारे सामने नहीं हूँ मगर मैं तुम्हारे पास हमेशा विद्यमान रहता हूँ। तत्पश्चात् बाबा को दुर्गा माँ की गोदी में देखा। बाबा ने अपने निज स्वरूप का अद्‌भुत रूप दिखाया। तथा तत्पश्चात् अन्तर्धान हो गये।

6. यह सब भावना का खेल है

यह घटना 7 मई 1974 की है। बाबा इसी दिन शादी से अजमेर से आये थे। बालाजी से ज्ञात हुआ कि बाबा जी आज ही आये हैं। मंगल का दिन होने की वजह से राधेश्याम जी अभी शाम 6 बजे तक नहीं आये तो बाबा कहने लगे, स्वयं ही उसने यह प्रण लिया है कि मैं हर मंगलवार को यहाँ पर हर हालत में आया करूँगा। "देखो, वह अभी तक नहीं आया है। अभी कच्चाई है इसलिये ऐसी बात है। फिर भी हाँ, ऐसी बात है कि वह इस समय भी टपक पड़ सकता है। अभी कुछ समय और शेष है।" बस बाबा इतना कहकर चुप ही हुये कि उसके ठीक एक मिनट बाद ही राधेश्याम ने दरवाजा खटखटाया और राधेश्याम जी आ गये। बाबा अचानक बोले—

देखो, यदि तुम्हारे आँखें हैं तो "मैं और क्या बताऊँ यह सब भावना का ही तो खेला है।"

मैं आज जब गया तो देखा कि बाबा को बहुत उन्माद चढ़ा हुआ था। बालाजी एक पुस्तक 'स्वामी विवेकानन्द और अमेरिका' नामक मेरे से ले गये थे। उसमें बाबा परमहंस देव जी की पागल-अवस्था को देखकर उन्हें बड़ा भारी उन्माद चढ़ गया। सभी के मध्य चटाई पर बैठे हुये बोले, "देखो सभी में मेरा कन्हैया ही तो है। तुम्हारे बीच में यह शरीर बैठा हुआ है वह बाबा रामकृष्ण परमहंस देव जी का ही प्रतिरूप है।" हंस का बच्चा हंस ही बन सकता है, कौआ नहीं। फिर तुम मुझे शक की दृष्टि से क्यों देखते हो? यह परमहंस देवजी का ही प्रतिरूप तुम्हारे सामने बैठा हुआ है। मैं आज यह पर्दाफाश ही किए देता हूँ। बाबा ने उस दिन अपने स्वरूप का पर्दाफाश करके सभी को चकित कर दिया। उस समय उनकी उन्मादिनी अवस्था थी।

7. जीवन की डोरी प्रभु के हाथ है

एक बार मैं पूज्यपाद जी (बाबाजी) के पास छत पर बैठा हुआ था। उस समय न जाने कितनी पतंगें उड़ रही थीं। दशहरे के आस-पास का समय था।

पूज्यपाद जी बोले देखो, यह पतंग डोरी के सहारे उड़ रही है। और यह डोरी पतंग उड़ाने वाले के हाथ में है। यदि इसका नियन्ता इस डोरी को छोड़ दे तो यह पतंग कदापि नहीं उड़ सकती और यह गिर पड़ेगी। देखो! भैया यही हाल इस जीव का है। इस जीव को प्रभु जैसे चाहें वैसे नचा रहे हैं। इस जीवन की डोरी प्रभु के हाथों में है। प्रभु जब इस डोरी को छोड़ देते हैं तो उसका कहीं भी कुछ भी अस्तित्व नहीं रहता है। वह मृत समान हो जाता है। संसार के भूले-भटके जीवों का यही हाल है। माया रूपी डोरी के सहारे भगवान् सबको नाच नचवा रहे हैं। यह है इस जीव का हाल। जब प्रभु इस जीव को नचाते हैं तो पतंग उड़ाने वाले नियन्ता की ही भाँति जीव को नचाते हैं।

पूज्यपाद जी बोले मैंने कभी भी जीवन में पतंग नहीं उड़ाई है। मगर हाँ इसे मैं उड़ा सकता हूँ। यदि कोई पतंग कटकर गिर जाती है तो मैं उसे कभी लूटने की कोशिश नहीं करता हूँ। इतना कहकर वह मौन से हो गये। कुछ ही क्षणों में मैंने यह देखा कि एक पतंग कट कर कहीं से आयी और उसकी डोरी मेरे तथा पूज्यपाद जी के पास से होकर गुजरी। पूज्यपाद जी बोले "देखा तुमने कुछ तमाशा? यही है तमाशा। आँखें हैं तो देखो पहचानो मुझे।"

8. सातवें दिन हनुमत् दर्शन

यह घटना सन् 1964 की है। पूज्यपाद जी बोले, महावीर (हनुमान) जी शक्ति के उपासक हैं। उन्होंने मुझे साधना के विषय में अनेक बातें बताईं। पूज्यपाद जी बोले मैंने बहुत दिन पूर्व हनुमान जी की उपासना की थी। सात दिन तक मैंने बराबर उनकी उपासना की। सातवें दिन की रात्रि को मुझे उनके अभूतपूर्व दर्शन हुये।

उनका बड़ा विकराल रूप, सुनहरे बाल, विशाल वक्ष:स्थल था। जिस समय वे प्रकट हुये ऐसा भंयकर घनघोर शब्द हुआ कि मानों मेरे कान फटे जा रहे हैं। इस घनघोर भयंकर आवाज के साथ-साथ सारा दृश्य जगत् न जाने कहाँ लोप हो गया। मुझे सारा का सारा जगत् शून्य प्रतीत होने लगा और

सिवाय हनुमान जी के और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता था। ऐसा था उनका विकराल और सुनहरा शरीर जो कि बड़ा ही मंगलदायक व पावन था।

9. माँ के तीन रूप

यह घटना नवरात्र के समय की है। दिनांक 5.4.74 को पूज्यपाद जी को माता के व्रत के समय ही बड़े ही अभूतपूर्व दर्शन हुये। माता को उन्होंने सिंह पर विराजमान देखा। भगवती माता अपने षडैश्वर्य के साथ प्रकट हुईं। भगवती माता ने पूज्यपाद जी से कहा, देखो! मेरे तीन नाम हैं— पहला विन्ध्यवासिनी, दूसरा माँ भगवती और तीसरा है काली माँ। माता ने यह कहा कि जो मेरे इन तीनों नामों का स्मरण करता है, मैं उसके वश में हूँ। उनके सारे मनोरथ स्वयं ही सिद्ध हो जाते हैं। मेरे उपरोक्त नामों का तुम जाप करो। माता ने यह भी कहा कि मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। तुम अब जिसे भी योग्य पात्र समझो उसे अपने जैसा समर्थ बना सकते हो। मैं उसके समक्ष तुम्हारी इच्छानुसार प्रकट हो सकती हूँ। इतना कहकर माता अंतर्धान हो गयी।

10. तुम मेरे प्रतिरूप हो

दिनांक 9.8.74 को मैं बाबा के पास गया। उस दिन वे बहुत ही प्रसन्न मुद्रा में थे और मेरे ऊपर उनकी विशेष कृपा बरस रही थी। इसी तिथि को उन्होंने मेरे एम. ए. की परीक्षा का परिणाम सुना था। यह परीक्षा उन्हीं की प्रेरणा से दी गई थी। मैं और बाबा अलग आँगन में बैठे हुये धर्म प्रसंग की बातें कर रहे थे। बाबा ने कहा, बेटा! लोग रास्ता भूल गये हैं, भटक रहे हैं उन्हें कहाँ पर सच्ची शान्ति व अपार आनन्द प्राप्त हो सकता है— इसे वे नहीं जानते। सच्चा आनन्द तो महापुरुषों के चरणों में हैं। उनकी सेवा किये बिना तथा उनकी श्रद्धा पाये बिना जीव को प्रभु का दर्शन (आत्मसात) कदापि नहीं हो सकता है।

अत: यदि कोई प्रभु दर्शन करना चाहता है तो उसके लिये यह अनिवार्य विषय है कि जिसके प्रति उसे विश्वास हो उसके चरणों में अपना सर्वस्व

अर्पण करके उनकी निष्काम भाव से सेवा करें। यदि वे महापुरुष तुम पर प्रसन्न हो गये तो यह निश्चित समझो कि तुम्हें प्रभु के दर्शन होने में कोई भी बाधा नहीं होगी।

इसी प्रसंग के दौरान उन्होंने कहा, बेटा! मैं एक दिन बैठा हुआ यह सोच रहा था कि इस भूतल पर अब रामकृष्ण परमहंस देव जी कहाँ हैं? वे तो आज से बहुत समय पूर्व ही अपना शरीर त्याग चुके हैं। अत: अब उनके दर्शन कहाँ। मेरे इतना सोचते ही अचानक बाबा परमहंस देवजी मेरे सामने आकर खड़े हो गये और वे स्वयं यह कहने लगे कि अब इस समय में "तुम ही मेरे प्रतिरूप हो!" "तुम्हीं राम हो, तुम्हीं अब कृष्ण हो। तुम स्वयं ईश्वर स्वरूप हो। द्वापर के कृष्ण, त्रेता के राम अब तुम्हीं हो इस नरदेह में।" इतना कहकर बाबा परमहंस देव अंतर्धान हो गये। बाबा मुझे इतना कहकर अपने उसी स्वरूप में स्थित हो गये।

11. गौचारण लीला का प्रत्यक्ष दर्शन

यह घटना दिनांक 15.9.74 की है। आज मैं बाबा के पास "स्वामी रामतीर्थ" की पुस्तक लेकर गया। बाबा ने उसे गले से लगा लिया और शीघ्र ही स्वामी जी के चित्र (प्रतिमा) को प्रणाम करके पूज्य माता जी से कहने लगे, देखो! स्वामी जी को। कितना तेज है इनके चेहरे पर। अब तुम मुझे भी अपने पास से हमेशा-हमेशा के लिये छुट्टी दो। मेरा मन भी अब गृहस्थ छोड़कर जंगल में जाकर रहने का हो रहा है। तत्पश्चात् श्रद्धालु सत्संगीजनों के बीच आकर बैठ गये और कन्हैया के प्यार व अनुराग का वर्णन विशेषकर गोचारण (गौलीला) से सम्बन्धित करने लगे। सत्संग समाप्ति के बाद सभी लोग जा चुके थे सिर्फ हुड़दंग बाबा (परमहंस जी) घर के बाहर उनके आने की प्रतीक्षा में बैठे थे।

उस समय कमरे में सिर्फ तीन प्राणी अर्थात् 'पूज्य बाबा', पूज्य माता जी व मैं स्वयं था। बाबा ने कहा, देखो! मेरा कृष्ण कितना उदार है। हर समय

अपनी कृपा बरसाता ही रहता है। लोग कहते हैं कि इस वृन्दावन में कृष्ण कन्हैया रास किया करता था। गाय चराया करता था। मगर मैं तो यह कहता हूँ कि वह (कृष्ण) तो रोजाना यह काम किया करता 'है'।

अर्थात् 'था' नहीं 'है'—देखो! आज दादा (कन्हैया) ने कृपा की थी और अपनी गौचारण की लीला का प्रत्यक्ष दर्शन कराया। मैंने अपनी आँखों से खूब अच्छी तरह से उन गायों को देखा, साथ में उस ग्वारिया कृष्ण को भी। उसकी झाँकी तो कभी-कभी ही गौओं के बीच देखने को मिली मगर मैंने आज गायों को खूब अच्छी तरह देखा। वे सभी तरह की थीं तथा सुहावनी व सुडौल प्रतीत हो रहीं थीं। इतनी चौड़ी कमर थी कि उन पर एक चारपाई तक बिछाई जा सकती थी। ऐसी थी उनकी कृपा मुझ पर।

12. यह है आज की कमाई

दिनांक 6.10.74 को बाबा बहुत ही गंभीर अवस्था में बैठे हुये थे। उन्होंने मुझे देखकर कहा, "बेटा आज हम तुम्हें उस प्राण-प्यारे कन्हैया का संदेशा सुना रहे हैं जो उन्होंने आज मुझसे कहा है।" इतना कहकर उन्होंने अपने बैग से एक छोटी सी काली डायरी निकाली और उस पृष्ठ को ढूँढने लगे जिस पर उन्होंने कन्हैया के उस संदेश को लिखा था। वह पृष्ठ कई बार पलटने पर भी न मिला तो वे बोले "जब कन्हैया की ऐसी ही इच्छा है और मेरी भी ऐसी ही इच्छा है कि इस संदेशा को हनुमान जी को सुनाया जावे तो भाई वह संदेशा पृष्ठ सामने क्यों नहीं आ रहा है?

राम के रहस्य को हनुमान जी के सिवा कौन जान सकता है। पृष्ठ पलटते समय यह कहते जा रहे थे कि रामजी प्रभु ने एक बार माता जानकी से यह कहा था कि तुम मेरे विषय में हनुमान को बोध करा दो। तब माता जानकी ने हनुमान को आद्योपान्त समस्त लीलाओं का वर्णन सुनाया और अंत में माता जानकी ने हनुमान से यही कहा, वत्स! जो कुछ मैंने कहा, यह सब तो प्रभु राम की लीला मात्र थी। लोक कल्याण की मर्यादा रखने तथा

उसका पालन करने का एक रास्ता मात्र दिखाया था। प्रभु राम जी न तो कहीं वन को ही गये और न रावण पर ही कोई विजय प्राप्त की।

यह सब तो दृश्य मात्र था। "फिर बोले, यह था गुप्त रहस्य। इतना कहते ही डायरी में संदेशा वाला पृष्ठ मिल गया। उन्होंने मुझे डायरी दे दी। उसमें प्रभु ने आज जो पूज्यपाद जी को संदेशा दिया था वह इस प्रकार था। "मुझे आज दिनांक 6.10.74 मध्याह्न में कृष्ण कन्हैया ने बताया कि मेरा स्वरूप निर्दोष, निर्लिप्त तथा अविनाशी है। जो मेरे इस रहस्य को जान लेता है वह मेरा साक्षात्कार कर लेता है।" इस संदेश को पूज्य माता जी को भी पढ़ाकर बाद में बोले भाई यह है आज की कमाई।

13. स्वेच्छा से रूप परिवर्तन

आज दिनांक 24.5.75 को जब मैं वृन्दावन गया तो ज्ञात हुआ कि पूज्यपाद जी तथा माताजी किसी आवश्यक कार्यवश बाहर गये हुये हैं उनकी अनुपस्थिति में हुड़दंग बाबा (परमहंस जी) से दो मर्मस्पर्शी घटनायें जो पूज्यपाद जी से सम्बन्धित थीं मालूम पड़ीं।

प्रथम घटना इस प्रकार थी कि एक बार चार-पाँच माह पूर्व उनके बड़े भ्राता चौमूँ (राजस्थान) से आये। वे कुछ दिन उन्हीं के पास रुके थे, मुझे भी उनसे वार्तालाप तथा दर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ था।

उनकी तबियत एक दिन बहुत खराब हो गयी थी वे अपने बिस्तर पर विश्राम कर रहे थे। उसी समय उन्होंने अपनी नजरों से स्वयं यह देखा कि उनके छोटे भ्राता (पूज्यपाद जी) स्वयं उनके पास आ रहे हैं। बिस्तर के निकट आते-आते वे अपने भौतिक शरीर को लुप्त कर एक तेज पुंज के रूप में उनके सामने खड़े रहे तथा रोगग्रसित व्याधि को समेटकर वहीं पर अन्तर्धान हो गये। उसके कुछ ही समय बाद पूज्यपाद जी स्वयं पुन: उनके सामने हँसते हुये आये और रोग के विषय में पूछा। वे बोले, महाराज आपने यह क्या लीला की, अभी तो आप हँसते हुये आ रहे थे। इससे पूर्व आप मेरे समीप आते-आते

प्रकाश पुञ्ज के रूप में परिणत हो गये। आपने यह क्या लीला की भेष बदलना कब से सीख लिया है? इस पर पूज्यपाद जी मुस्कुरा गये। इस प्रकार से यह भी देखा गया कि वे अपनी इच्छानुसार शरीर परिर्वतन भी कर लेते थे। इस घटना को स्वयं उनके बड़े भ्राता जी ने अपने श्रीमुख से सुनाया था।

14. सुरति शब्द का बोध

दूसरी घटना हुड़दंग बाबा ने यह बताई कि पूज्यपाद जी के पास एक **बाबा सीताराम दास जी** आया करते थे। वे उज्जैन के पास के रहने वाले थे, हठयोग में तथा व्यायाम कला में वे पारंगत थे। वे "सुरति" शब्द के यथार्थ स्वरूप का बोध करना चाहते थे। उन्हें किसी ने यह बोध करा दिया कि तुम्हारे लक्ष्य को प्राप्त करने का ध्येय उक्त महापुरुष (पूज्यपाद जी) ही करा सकते हैं। अत: वे उनके पास ही अल्पकाल तक आये। उन्होंने पूज्यपाद जी से "सुरति" शब्द के विषय में कहा कि मैं इस तुलसीदास जी के रामायणकृत "सुरति" शब्द का यथार्थ बोध करना चाहता हूँ। पूज्यपाद जी ने उन्हें यह निर्देश दिया कि तुम इस "सुरति" शब्द का प्रतिदिन एक लाख नाम तीन मास तक लगातार जप निर्जन स्थान में किया करो। तत्पश्चात् तुम मेरे पास आना, तुम अपने लक्ष्य को पा जावोगे।

यह निर्देश प्राप्त कर बाबा ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया तथा वे अपने बताये हुए कार्य में एकचित्त हो गये, मगर उनसे हर बार यह भूल हो जाती थी कि उन्होंने कितनी बार जप किया है इसकी सुधि उन्हें नहीं रहती थी। अत: वे बीच में ही पूज्यपाद जी के पास आये और अपनी समस्या को उनके सम्मुख रखा। पूज्यपाद जी ने उन्हें यह बताया कि तुम दस कंकड़ी अपने पास रखलो तथा उनके हिसाब से जमीन पर हर सौ होने पर निशान लगाकर अपनी साधना करो। वे इस क्रिया को करने लगे, मगर वे इस बार भी ठीक-ठीक हिसाब रखने में असफल रहे। फिर ठीक दस दिन बाद

जन्माष्टमी के अगले दिन नवमी को उनके पास आये और उन्हें अपनी क्रिया साधना के विषय में अवगत कराया। बाबा सीताराम जी ने यह कहा कि "सुरति" शब्द जाप के समय कन्हैया के आने का-सा आभास होता है। मगर वह रूप ठहरता नहीं है अतः ऐसी कृपा करो कि यह रूप ठहर जाय। मैं उस रूप को बाँध कर आपके सामने लाना चाहता हूँ।

पूज्यपाद जी ने बस इतना ही कहा, "जैसी तुम्हारी इच्छा"। साथ में उन्होंने मूक भाषा में वह चिर आशीर्वाद भी उनको लक्ष्य प्राप्ति का दे दिया जिसे प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े तपस्वी, योगी जन्म भर प्राणपण से अपनी साधना में जुटे रहते हैं। इस आशीर्वाद को प्राप्त कर उनकी कुछ अचेत अवस्था सी हो गई। पूज्यपाद जी ने हुड़दंग बाबा से यह कहा कि आप इन्हें टोपीकुंज रास देखने के स्थान तक पहुँचा आवो। हुड़दंग बाबा उन्हें गंतव्य स्थान तक पहुँचा आए। टोपी कुञ्ज से लौटते समय उन्हें निधिवन के पास भावावस्था में ही महारास के दर्शन हुये। उनके सामने से संसार लोप हो गया तथा सिर्फ दिव्य प्रकाश रूप कृष्ण भगवान् को गोपियों के मध्य रासलीला करते हुये देखा।

दर्शन करने के बाद वे पूर्णतः अचेत अवस्था में हो गये। वे शाम को रोजाना के सत्संग के समय न जाने किस प्रकार से आये। उस समय सत्संग में उपस्थित सभी महानुभावों ने उनके दर्शन उसी अवस्था में किये। वे बिलकुल मौन, शान्त स्वभाव में थे तथा बिलकुल बोल नहीं सकते थे। पूज्यपाद जी को यद्यपि सारी घटना का पूर्ण बोध था तथापि उन्होंने उनका व्यावहारिक दृष्टि से हाल चाल जानना चाहा। पूज्यपाद जी ने उनसे कहा कि यदि आप बोल नहीं सकते तो लिख कर ही बताइये। उन्होंने कागज पर बस इतना ही लिखा कि "हमें आज महारास का दर्शन हुआ है।" कृपया इस बात को अभी किसी से न कहें वरना हमें खतरा है। तत्पश्चात् यह देखा गया कि उन बाबा ने तीन दिन तक कुछ भी खाया पिया नहीं हैं।

पूज्यपाद जी ने उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम हमारे पास रोजाना आकर दूध पी जाया करो तथा भगवान् के भजन में मस्त रहो। अक्सर यह देखा गया कि

बाबा सीतारामदास जी जहाँ आश्रम में पहले रहते थे अब वहाँ अचेत अवस्था में रहने के कारण नहीं दिखते थे। कुछ समय तक न जाने कहाँ से वे पूज्यपाद जी के सत्संग के समय अवश्य उपस्थित हो जाते थे। यह भी पता नहीं था कि वे इस अवस्था में कहाँ रहते थे। इतना अवश्य था कि कुछ समय बाद उन्होंने पूज्यपाद जी से यह प्रार्थना की कि अब वे अपने स्थान उज्जैन जाना चाहते हैं। पूज्यपाद जी से आज्ञा पाकर वे वहाँ चले गये। यह सारी घटना स्वयं हुड़दंग बाबा (परमहंस जी) ने अपनी आँखों से देखी तथा अपने मुख से बताई। बाबा सीताराम जी जाते समय हुड़दंग बाबा से यह प्रार्थना कर गये कि आप रोजाना पूज्यपाद जी को बार-बार मेरा प्रणाम अवश्य बोल दिया करना। हुड़दंग बाबा सत्संग के बाद प्रस्थान करते समय उनके इस संदेश के अनुसार उनका प्रणाम निरन्तर पूज्यपाद के चरणों में आजीवन करते रहे।

15. रहस्यपूर्ण बात

एकबार महाराज जी ने मुझसे कहा कि नाम जप लगातार किया करो। मैंने उनसे कहा महाराज जी, मुझसे नहीं हो पाता है। तो महाराज जी ने अपनी दोनों उँगलियों से मेरे माथे पर एक लकीर सी बनाई और रामचरितमानस की एक चौपाई सुनाई।

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

बस उनका यह कहना था कि जा, मैंने तेरा काम कर दिया। उस दिन से आज तक यह बड़े रहस्य की बात है कि मैं अब प्रयासपूर्वक जप नहीं करता हूँ। अजपा जप अपने आप होता ही रहता है। मुझे कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

सद्गुरु महाराज के अंतरंग अनुभव

(श्रीदिनेशचन्द्र गर्ग जी की डायरी से)

श्रीगुरु महाराज बहुत ही सरल तथा करुणामूर्ति रहे। उन्होंने अपनी ईश्वरीय विलक्षण प्रतिभा को सदैव छिपाये रखा। पुरानी कहावत है कि लाल क्या गुदड़ी में छिप सकता है? यही युक्ति उन पर शत-प्रतिशत चरितार्थ होती थी। उनके श्रीचरणों में इस दास को समय-समय पर जो अंतरंग अनुभव की कतिपय झांकियों का दिग्दर्शन हुआ उसे भक्तजनों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

1. नियमित नित्य यमुना स्नान

श्रीगुरु महाराज ने अपने श्रीमुख से स्वयं यह प्रसंग बताया कि मैं अपने साधनकाल में नित्य प्रति प्रातः 3 बजे (चाहे जाड़ा, बरसात अथवा गर्मी हो) यमुना स्नान को जाता था। एकबार घनघोर रात्रि में बरसात हो रही थी फलतः कहीं भी अँधेरे के कारण कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। उसी समय रात्रि 3 बजे भोर में एक तेजपुंज रोशनी मुझे प्रकाशित कर यमुना जी की राह दिखा रही थी। जब मैं यमुना तट पर पहुँचा तब वह अलौकिक रोशनी गायब हो गई तथा स्नान करने के बाद जब मैं यमुना तट से चला तो पुनः वह रोशनी मुझे मार्ग दिखाती गई तथा गन्तव्य पर पहुँचने पर पुनः अलोप हो गई।

इस दास ने जब उनसे इस अलौकिक घटना का रहस्य जानना चाहा तो वे मुस्कराये तथा कहा कि **यदि पूरी निष्ठा से कोई साधना की जाती है तो ईश्वर पग-पग पर उसकी सहायता करता है।** वह रोशनी नहीं थी अपितु

साक्षात् यमुना महारानी ही थीं। उन्हें साक्षात् यमुना महारानी के कई बार दर्शन हुए। यह बात उन्होंने करुणावश इस दास को बताई। कहा कि यमुना महारानी ने मेरा बहुत बड़ा काम किया है। उन्होंने यमुना महारानी की रज (रेती) भी मुझे दी जो अभी तक सुरक्षित है। कहा कि यह रेती नहीं साक्षात् यमुना जी ही हैं।

2. गोवर्धन में रास का दर्शन

मैं श्रीगोवर्धन जी की परिक्रमा देने गया। परिक्रमा देते-देते भावावेश में रास्ता भटक गया। भटकते-भटकते मैं श्रीगिरिराज महाराज पर्वत की तलहटी की एक गुफा में पहुँच गया। देखा कि वहाँ बड़ा ही दिव्य अलौकिक मणियों जैसा प्रकाश था जिसमें कन्हैया अपने सखाओं के साथ रास-विहार कर रहे थे। वहाँ कुछ महात्मा भी मिले जिन्हें मैंने प्रणाम किया। जिज्ञासा से पूछने पर बताया कि हम तो कृष्ण के सखा हैं, कन्हैया के साथ ही खेलते हैं। हमारा शरीर भी शाश्वत कृष्णकालीन है। इस घटना को कहते-कहते वे सिहर उठते थे।

3. गह्वर वन में प्रिया-प्रियतम का साक्षात् दर्शन

एक बार सन् 1968 में वे बरसाना गये। प्रिया कुण्ड पर रुकने के दौरान ही बरसाना के गहवरवन में एक कुण्ड के पास बैठ गये। उनके साथ पूज्य गुरुमाता तथा द्रौपदी माता (बावली) तथा यह दास भी था। मैंने देखा कि वे एक अजीब सी भावमुद्रा में बैठे अश्रुपात कर रहे थे। काफी समय तक वे इसी भावमुद्रा में बैठे रहे और हम तीनों उन्हें अपलक निहारते रहे। काफी समय पश्चात् जब वे अपनी लौकिक मुद्रा में आये तो भी मौन बैठे रहे। दास की जिज्ञासा करने पर उन्होंने हमें वह अमुक स्थान बताया जहाँ से प्रिया-प्रियतम गलबहियाँ डाले साक्षात् उनको दर्शन देते हुए निकले थे। तत्पश्चात् वे अपने निवास (प्रियाकुण्ड) पर आकर भजन करने लगे।

4. सिद्धि घंटनाद व शंखनाद

जब वे बिहारी जी के पीछे बिहारीपुरा में रहते थे तब संयोगवश यह दास उन्हीं के निवास पर रात्रि में रुक गया। मेरी यह जिज्ञासा थी कि उनकी निजी धार्मिक गतिविधियों तथा अनुभवों को नजदीक से देखा जाय। अतः ग्रीष्मकालीन होने के कारण वे छत पर चारपाई डालकर लेटे हुए थे तथा मैं चटाई पर, उनके श्रीचरणों में लेट गया। इस दास को कहाँ नींद आने को थी? क्योंकि मुझे इस नारायण स्वरूप गुरुदेव को नजदीक से देखना था। देखा कि रात्रि के 12 बजे वे अपनी चारपाई पर बैठे हुए थे मैं भी बैठ हुआ था। बोले बेटा तुम्हें कुछ सुनाई दे रहा है? मैंने कहा कुछ नहीं। फिर बोले ध्यान से सुनो तो मैं बड़ा आश्चर्यचकित था कि वृन्दावन के चारों ओर, आरती जैसा घंटनाद स्वर बड़ी जोर से गुंजायमान हो रहा था। मैंने सोचा कि रात्रि 10 बजे तक सभी मन्दिरों के कपाट बन्द हो जाते हैं फिर रात्रि 12 बजे चारों ओर से यह शंखनाद, घंटनाद की आवाज कहाँ से आ रही है? दास के जिज्ञासा करने पर उन्होंने कृपा करके यह बताया कि यह 'घंटनाद' सिद्धि है। अन्तःकरण शुद्ध होने पर ही यह शंखनाद, घंटनाद स्वर सुनाई पड़ता है। उनका कहना था कि यह स्वर श्रीवृन्दावन धाम में निरन्तर गुंजायमान रहता है, शुद्ध हृदयवालों को ही इसका अनुभव होता है। यद्यपि वे रिद्धि-सिद्धि को ज्यादा महत्व नहीं देते थे तथापि कहते थे कि प्रभु भक्तों के यहाँ ये पानी भरती हैं।

5. गुरु प्रदत्त बीजमंत्र का प्रभाव

एक घटनाक्रम में महाराजजी ने बताया कि जब वे साधनाकाल में थे तब उन्हें श्रीहनुमान जी की सिद्धि का एक बीज मंत्र गुरु कृपा से मिला। उस बीज मंत्र के सिद्ध होने पर उन्हें मात्र तीन दिन में ही श्रीहनुमान जी का साक्षात्कार हो गया। श्रीहनुमान जी का जब उन्हें साक्षात्कार हुआ तब बताया कि हजारों पर्वतों के फटने के समान शोर हुआ तथा उनका रोम-रोम स्वर्ण

का था। इसी कृपा में यह दास बताना चाहता है कि गुरु महाराज ने स्वयं उसे कृपा कर यह रहस्य बताया कि उन्हें तीन बार बालरूप में प्रभु श्रीराम के दर्शन हो चुके हैं। भोले बाबा शंकर, नारदजी, सनकादि ऋषि, श्रीशुकदेव जी, गोस्वामी तुलसीदास जी, अम्बाजी तथा श्रीरामकृष्ण परमहंस देवजी के भी उन्हें कई बार दर्शन हुए। यह दास एक दिन गुरुमाता के चरणों में बैठा हुआ था पास ही गुरु महाराज भी थे। उस समय गुरु महाराज बहुत अधिक प्रसन्न मुद्रा में थे तो मैंने गुरुमाता से इस अद्भुत प्रसन्नता का रहस्य जानना चाहा तो बताया कि आज इन्हें आकाश में विचरते हुए सनकादिकों के दर्शन हुए हैं इसीलिए इतने प्रसन्नचित्त हैं। कृपा करके उन्होंने इस दास को कई बार यह बताया कि श्रीवृन्दावन धाम में नित्यप्रति रासलीला होती है। मैंने उनसे जिज्ञासा की कि क्या आपने रासलीला होते देखा है तो उन्होंने प्रिया-प्रियतम की नित्य रासलीला देखने की हँसकर स्पष्ट मूक सहमति दी। इस प्रकार उन्हें समय-समय पर विभिन्न रूपों में प्रभु का साक्षात्कार होता रहता था। तथा इस दास पर कृपा कर इस रहस्य का पर्दाफाश स्वयं ही कर दिया करते थे। यह रहस्य उन्होंने मुझे दिनांक 29.3.77 को बताया था।

6. श्रीगणेशदास भक्तमाली जी के रूप में साक्षात् श्रीशुकदेवजी

एक बार श्रीगुरुदेव जी ने मोटा गणेश मन्दिर वाले मकान पर श्रीमद्भागवत कथा का आयोजन कराया। व्यास आसन पर श्रीगणेशदास भक्तमाली जी महान् विभूति सुशोभित थे। इस दास ने भी बीच-बीच में कथा सुनी। कथा समाप्ति के कुछ अंतराल के बाद मैंने उनसे जिज्ञासावश इस कथा के बारे पूछा तो उन्होंने बड़े सरल स्वभाव से बिना लाग लपेट के कहा कि-- "मैं तो कथा सुनते सुनते गंगा तट पर पहुँच गया तथा साक्षात् शुकदेव जी महाराज से मैंने यह श्रीमद्भागवत कथा सुनी, जहाँ बहुत से महात्मा भी विराजमान थे।" यह थी उनकी अटूट निष्ठा की एक झलक। यह घटना उन्होंने इस दास को दि. 7.5.78 को बताई थी।

7. मधुर एवं शीतल जल की प्राप्ति

एक बार श्रीगुरुमहाराज चित्तौड़—मीरा मन्दिर के दर्शन को गये। ग्रीष्म का समय था। उन्हें बेहद प्यास लगी थी तथा बिना जल के बेचैन थे। उसी समय एक बालक एक पात्र में जल लेकर आया। बोला जल पिओगे? उन्होंने खूब छककर जल पिया मगर जल की कोई कमी नहीं रही। बताया कि उस शीतलजल में इत्र पड़ा था तथा इतना मधुर जल था कि मैंने अपनी पूरी जिन्दगी में ऐसा मधुर शीतल जल कभी नहीं पिया। जल पिलाने के बाद वह बालक वहीं अन्तर्धान हो गया।

8. माला जप की अटूट निष्ठा

जब गुरुमहाराज साधनाकाल में थे तब वे एक लाख नाम-जप नित्य नियम से करते थे। प्रभु साक्षात्कार होने के बाद भी उनकी नाम-जप में इतनी निष्ठ थी कि वे 1008 मनकों वाली माला से नामजप नहीं छोड़ते थे। यद्यपि उनका अजपाजप चलता रहता था। "श्रीकृष्णः शरणं मम" यह जप सतत (निरन्तर)अजपाजप के रूप में उनकी जिह्वा पर चलता रहा। प्रभु ने एक अलौकिक लीला रची; अचानक उनके पूजा कक्ष में अग्नि प्रज्वलित करके उनकी 1008 मनकों वाली माला को ही जला दिया तब जाकर उनका माला घुमाना बन्द हुआ। ऐसी थी माला जप की अटूट निष्ठा।

9. सद्गुरु कृपा की एक झलक

इस दास की शादी भी गुरु महाराज की ही इच्छा मात्र से हुई थी। मैंने उनसे यह विनम्र अनुरोध किया था कि आपको शादी में आना ही होगा। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार की तथा शादी में पधारे। रिक्शे से उतरकर वे सीधे उस स्थान पर गये जहाँ बारातियों का भोजन तैयार हो रहा था। बस एक मिनट खड़े होने के बाद वे मेरे पास आ गये तथा शादी वाली पूरी रात हम दोनों के पास गृहस्थ धर्म की सारगर्भित बातों पर उपदेश देते रहे। इस दास के श्वसुर जी ने यह बताया कि मैंने लगभग 400 व्यक्तियों के भोजन का

प्रबन्ध किया था। शादी में घराती-बराती लगभग 450 व्यक्तियों ने भोजन किया। वे आश्चर्य में थे मैंने तो मात्र 400 व्यक्तियों का भोजन बनवाया। लगभग 450 व्यक्तियों के भोजन करने के उपरान्त भी लगभग 400 व्यक्तियों का भोजन शेष रह गया। यह थी सद्गुरुदेव की अपार कृपा की एक झलक। वे दास की तीनों पुत्रियों की शादियों में अनुरोध करने पर पधारे भी।

10. समय आने पर सब ठीक हो जायेगा

यों तो गुरु महाराज की सभी भक्तों, अभक्तों पर हमेशा कृपा दृष्टि रहती थी, फिर भी न जाने वे इस तुच्छ दास पर क्यों इतनी कृपा किया करते थे। एक बार मैं उनके श्रीचरणों में बैठा हुआ था। तब तक मेरी तीनों पुत्रियों की शादियाँ नहीं हुई थीं। मुझे देखकर अचानक बोले "तू क्या सोच रहा है? क्यों उदास बैठा है? मैं तेरे दिल की बात को अच्छी तरह जानता हूँ— यही कि तीन-तीन बेटियाँ हैं कैसे इनकी शादी आदि की जिम्मेदारी निभाऊँगा? बोले बेटा! यह सब तू मुझ पर छोड़, समय आने पर सब ठीक हो जायेगा, तू तो केवल भगवान् का भजन कर। गुरु महाराज के इन वाक्यों पर उस समय मैंने ज्यादा गौर नहीं किया। समयानुसार मैं अपनी पुत्री की शादी हेतु वर की तलाश में कई जगह गया, मगर कोई संतोषजनक बात नहीं बनी। अचानक एक दिन प्रात: बेला में लगभग 5 बजे अर्द्धनिद्रा में इस दास को श्रीगोवर्धन में मुखारविन्द के दर्शन हुए तथा यह शब्द सुनाई दिया कि "तू वर की तलाश में कहाँ-कहाँ भटक रहा, लड़का तो यहीं गोवर्धन में ही है।" यह शब्द सुनकर यह दास बहुत ही विस्मित तथा ऊहापोह की स्थिति में उठ बैठा। इस घटना के 3-4 दिन बाद एक लड़का मेरे से आकर बोला कि श्रीगोवर्धन देहात में एक लड़का है आप उसे अपनी पुत्री के लिए देख लीजिए। मैंने इस बात पर ज्यादा गौर नहीं किया। अपितु उस लड़के की बात को सुना अनसुना कर टाल दिया। 4-5 दिन बाद पुनः वही लड़का मेरे समक्ष आकर आग्रह करने लगा कि आप एक बार गोवर्धन में उस लड़के को देख तो लीजिए,

शादी करना न करना यह आपकी निजी बात होगी। कोई जोर जबरदस्ती तो आपसे नहीं कर सकता। इस दास के मन मस्तिष्क में यह विचार आया कि गुरु महाराज ने यह कहा था कि "यह सब तू मेरे ऊपर छोड़।" यह क्या अद्भुत लीला हो रही है कि श्रीगोवर्धन महाराज मुखारविन्द के माध्यम से कि लड़का यहीं गोवर्धन में ही है, कह रहे हैं। इस रहस्य को मैंने अपने किसी परिवारीजन को न बताकर, अमल करने का दृढ़ संकल्प ले लिया। घटना का विस्तार न करते हुए यही कहना है कि गुरु महाराज की प्रेरणा मात्र से यह सब घटनाक्रम चला और इस दास ने अपनी बड़ी पुत्री की शादी गोवर्धन के नजदीक ही एक गाँव में कर दी। लड़का अत्यन्त होनहार तथा उच्च पद से सेवानिवृत्त होकर पुनः सरकारी सेवा में कार्यरत होकर अपने परिवार सहित मथुरा में सकुशल रह रहा है।

गुरु महाराज ने जो वचन कहे उनकी ही प्रेरणा से यह दास कहीं न गया न आया अपितु दोनों पुत्रियों के अच्छे रिश्ते घर बैठे ही आ गये तथा दोनों पुत्रियों की शादियाँ बहुत अच्छे परिवारों में बिना किसी प्रयास के हो गईं। यह सब गुरु कृपा नहीं तो और क्या है?

11. मृत्यु कईबार छूकर चली गई

एक बार यह दास गुरु महाराज के श्रीचरणों में बैठा हुआ था तभी एक प्रसंगवश उन्होंने श्रीरामायण की यह चौपाई कही—

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

यह चौपाई सुनाते ही वे मेरे मस्तक पर अपनी पावन उँगलियों को फेरते हुए बोले कि भजन में वह शक्ति है कि विधाता के मन मस्तिष्क पर लिखे अमिट लेखों को भी मिटाया जा सकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह कि इस दास को मौत कई बार छूकर चली गई मगर गुरुकृपा ने बचा लिया। सन् 2007 में इस दास को हृदयाघात की गंभीर अवस्था में आई.सी.यू. में भर्ती रहना पड़ा। उस समय ऐसा लगा कि गुरु महाराज उसके सामने खड़े होकर यह कह रहे हैं कि "बेटा मेरे होते हुए तेरा बाल बांका भी नहीं हो सकता।"

पुनः इस दास को आई.सी.यू. में रहना पड़ा। डाक्टरों ने सिर्फ दो घंटे की ही लाइफ बताई मगर गुरु कृपा ने हर विषम परिस्थितियों में मेरा साथ नहीं छोड़ा। तभी अचानक यह घटना याद आई कि उन्होंने अपनी पावन उंगलियों से मेरे मस्तक पर लिखी विधाता के विषम लेख को कैसे मिटा दिया? यह घटना दिनांक 30.10.99 की है।

12. वरदहस्त की महिमा

गुरु महाराज ने एक बहुत ही रोचक आध्यात्मिक प्रसंग यह बताया कि जिस साधक की अपने गुरु के प्रति अटूट निष्ठा होती है उसे क्या नहीं मिल सकता है? जयपुर में एक प्रोफेसर माधो सिंह थे जिनके गुरु महाराज श्रीअयोध्या जी में निवास करते थे। वे अपने गुरु महाराज के प्रति बहुत अटूट विश्वास रखते थे तथा उनके प्रति पूर्णरूपेण समर्पित थे। कालान्तर में उनके गुरु महाराज ने इस नश्वर शरीर को छोड़ दिया। श्रीमाधो सिंह अपने गुरु महाराजश्री के चरणों में समय-समय पर तथा हर गुरुपूर्णिमा को श्रीअयोध्या जी जाया करते थे। उन्होंने अपने गुरु महाराज के महाप्रयाण के बाद भी गुरु स्थान पर जाना बन्द नहीं किया। एक बार वे गुरु महाराज के आश्रम में गुरुपूर्णिमा के दिन गए तथा उनके भाव में भाव विभोर होकर रोने लगे। जब वे रोते-रोते बेसुध हो गये तभी श्रीरघुनाथ जी उनके समक्ष प्रगट हो गये तथा उनके सिर पर हाथ रखकर यह मधुर शब्द कहे कि "अब तुम्हारे गुरु महाराज का शरीर नहीं है तो क्या? मेरा वरदहस्त अब सदैव तुम्हारे ऊपर रहेगा। साथ ही यह भी कहा कि गुरु महाराज के रूप में मैं ही तो था।" इस घटना को सुनते-सुनते स्वयं गुरु महाराज इतने भावविभोर हो जाते थे कि उनकी उस दशा को यह दास शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। यह प्रसंग गुरु महाराज ने इस दास को दि. 19.8.79 को बताया।

13. पारदर्शी शिव लिंग का दर्शन

पूज्य गुरुदेव महाराज के एक बहुत ही अंतरंग शिष्य बाबा सीताराम

दास जी से इस दास की दिनांक 6.9.77 को मुलाकात हुई। वे कृपा कर दो बार इस दास के निवास पर उसे कृतार्थ करने हेतु पधारे थे तथा दो-दिन तक रहे भी। गुरु महाराज उस समय श्रीबिहारी जी मन्दिर के पीछे बिहारीपुरा में रहते थे। बाबा सीतारामदास को गुरुमहाराज का निवास स्थान नहीं मालूम था इसलिए वे इस दास के साथ अपने गुरु महाराज जी के दर्शन हेतु दि. 11.9.77 को वृन्दावन पधारे थे। वे उनके पास बहुत लम्बे अंतराल के बाद वृन्दावन गये थे। मैंने कृपापूर्वक बाबा से उनके अंतरंग अनुभवों के बारे में विनम्र अनुरोध किया तो उन्होंने बड़े ही अद्भुत रहस्य से पर्दा उठाया। बोले मैं गुरु महाराज की सेवा में अटूट विश्वास के साथ उनके श्रीचरणों में रहा था अपने को उनके श्रीचरणों में पूर्ण रूपेण समर्पित कर दिया था। "मेरी गुरु निष्ठा तथा मेरे समर्पित (बाबा ने एक ऐसा पारदर्शी शिवलिंग दि. 6.9.77 को दिखाया जैसा अभी तक नहीं देखा गया) भाव को देखकर उन्होंने ऐसी अद्भुत कृपा की कि मुझे कन्हैया की एक झलक दिखा ही दी। उन्होंने बताया कि इस एक झलक को पाते ही मुझे तो तन, मन का कतई भान ही नहीं रहा तथा सात दिन तक मैं एक ही स्थान पर बेहोश की तरह पड़ा रहा। मेरा मन पूर्णरूपेण कृष्णाकार हो गया था तथा बराबर अश्रुपात होता रहता था। खाने-पीने का भी भान नहीं रहा। गुरु महाराज ही अपने हाथों से मुझे एक शिशु की तरह खिलाते-पिलाते थे। कुछ दिन ऐसी ही अवस्था में रहने के बाद उन्होंने ही मुझे चेतना शून्य अवस्था से उबारकर भौतिक धरातल में लाकर खड़ा कर दिया तथा मुझे हर बंधन से मुक्त कर दिया।"

बाबा ने बताया कि उसके बाद उन्हें एक गुफा में श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन हुए, फिर सकरी जगह पर श्रीवैष्णो देवी (माँ अम्बा) के दर्शन हुए। बाबा ने रतलाम के पास गाँव करोदा में एक मन्दिर का निर्माण भी कराया। तत्पश्चात् वे उत्तराखण्ड में साधना हेतु चले गये थे। इस दास के साथ जब बाबा गुरु महाराज के दर्शन हेतु गये थे तब दाढ़ी बढ़ी हुई थी। जब बाबा तथा

गुरु महाराज एक दूसरे के आमने सामने हुए तो एक क्षण रुकने के बाद बोले "अरे तू वही (सीतारामदास) है। इतना सुनते ही बाबा उनके चरणों में गिर पड़े। गुरु महाराज ने भी एक शिशुवत बाबा को अपार स्नेह किया। उस दशा का वर्णन करने की सामर्थ्य इस दास में नहीं है। पूज्य गुरु महाराज ने इसी प्रकार एक दूसरे अंतरंग शिष्य पर कृपा कर प्रभु साक्षात्कार कराया था जिसका विवरण इस दास पर उपलब्ध नहीं है। पूज्य गुरु महाराज ने स्वयं अपने श्रीमुख से करुणावश यह बताया कि उन्होंने दो भक्तों को उनकी अटूट गुरु निष्ठा को दृष्टिगत रखते हुए प्रभु साक्षात्कार कराया है। वे कहते थे कि मुझे कोई पात्र तो मिले, मैं स्वयं उसकी तलाश में हूँ। प्रभु साक्षात्कार इतना सस्ता बाजारू सौदा तो नहीं है कि उसे प्रसाद की तरह बाँटा जाय। सच पूछा जाय तो कमी हमारे ही अन्दर है हमारी पात्रता की कमी है वे तो पूर्णरूपेण हर दृष्टि से सर्वसमर्थ हैं।

न कहीं से दूर हैं मंजिलें, न कोई करीब की बात है॥
जिसे चाहा दर पे बुला लिया, जिसे चाहा अपना बना लिया॥
ये बड़े करम के हैं फैसले, ये बड़े नसीब की बात है॥

14. जो तुम हो वही मैं हूँ

गुरु महाराज ने इस दास पर कृपा कर एक बहुत ही रोमांचक आध्यात्मिक रहस्य श्रीरामायण जी के बारे में दिनांक 8.1.78 को यह बताया। जब श्रीहनुमान जी तथा प्रभु श्रीराम सारी लौकिक क्रिया कर चुके थे तब एक दिन प्रभु श्रीराम ने श्रीहनुमान जी को यह रहस्य बताया कि मेरे द्वारा जो भी लौकिक लीलाएँ की गईं वे सभी काल्पनिक थीं। मैंने तो यह लौकिक लीलाएँ दैवमाया वश संसार को मर्यादा तथा शिक्षा देने हेतु की थी। जो तुम हो वही मैं हूँ मैं ही हनुमान बना हुआ था, मैं ही रावण तथा रामकथा के सभी पात्र। मेरा तथा श्रीसीताजी का तो कभी वियोग होता ही नहीं। यह रहस्य माया-मोह में डूबा हुआ साधारण मानव कैसे समझ सकता है? तथा कैसे

विश्वास कर सकता है? बल्कि इसके विपरीत कुछ भ्रान्तियाँ मन मस्तिष्क पर अवश्य पैदा कर सकता है।

इस दास ने जिज्ञासावश यह जानना चाहा कि यह सब कैसे हो सकता है जो कि साधारण मानव जाति के मन मस्तिष्क से परे की बात है तो उन्होंने कृपा कर बताया कि जब प्रभु कृपापात्र की परमहंस अवस्था होती है तब वह यह रहस्य प्रभु कृपा से ही जान सकता है। इस दास ने जब गुरु महाराज से जानना चाहा कि क्या आपने यह सब रामायण का आध्यात्मिक रहस्य स्वयं अपनी आँखों से देखा है? तो उन्होंने मुस्कराकर इसकी स्पष्ट मूक सहमति दी। इसका प्रमाण यह है कि एकबार गुरु महाराज ने स्वयं अपने श्रीमुख से यह रहस्य उद्घाटित किया कि मैं एक बार स्वयं श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के ध्यान में बैठा हुआ था, देखा तो मेरा भौतिक विग्रह गायब हो गया तथा उसके स्थान पर श्रीराम कृष्ण परमहंस जी विराजमान हो गये तथा मुझसे स्पष्ट कहा कि **"जो तू है वही मैं हूँ।"** इस बात में उपरोक्त प्रभु लीला का रहस्य निहित है। गुरु महाराज इतनी विशाल परमहंस अवस्थाओं की ऊँचाइयों पर थे कि उसका अनुमान साधारण मानव कदापि नहीं कर सकता जब तक प्रभु स्वयं कृपा न करें।

सोइ जानहि जेहु देहि जनाई। जानत तुम्हहि-तुम्हहि होइ जाई॥

15. श्रीपरमहंस जी उर्फ हुड़दंग बाबा

पूज्य गुरुदेव जी की बड़ी ही विचित्र परमहंस अवस्था थी जिसका अनुमान हम जैसे साधारण मनुष्य कदापि नहीं लगा सकते थे। वे बार-बार अपने श्रीमुख से यह कहा करते थे कि लोग प्रभु के स्मरण में मन लगाते हैं और मैं प्रभु के विस्मरण में लगाता हूँ। मगर क्या करूँ कि वह, आँखों से ओझिल होता ही नहीं। श्रीरामायण की यह चौपाई "अब न आँख तर आवत कोऊ।" उन पर शत-प्रतिशत लागू होती है। वर्तमान में भी पूज्य महाराजजी के एक अंतरंग शिष्य श्रीपरमहंस जी हैं जो कि सुदामा कुटी वृन्दावन में निवास करते हैं। पूज्य गुरु महाराज इन्हें प्रेम से 'हुड़दंग' बाबा के नाम से पुकारते थे। इनकी इतनी कठोर साधना थी कि वर्षों तक इन्होंने न तो नमक खाया, न ही मीठा। जल में भिगोकर ही कुछ रोटियाँ खाते तथा ब्रजरज का सेवन करते। गुरु महाराज के मना करने पर ही उन्होंने यह व्रत तोड़ा तथा आज्ञा दी कि ब्रज को छोड़कर कहीं नहीं जाना। वे कहते थे कि तुमने यदि ब्रज को एक बार छोड़ा तो फिर वापिस नहीं आओगे। गुरु महाराज की इस आज्ञा का उन्होंने अभी तक शत-प्रतिशत पालन किया है। वे ब्रज को छोड़कर कहीं भी नहीं जाते हैं। गुरु महाराज की कृपा से उन्हें आज सुदामा कुटी वृन्दावन में सन्त समाज में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इन्हें भी गुरु कृपा से परमहंस अवस्था प्राप्त हो चुकी है। क्योंकि वे कई-कई दिन तक बिना कुछ खाये-पिये प्रभु ध्यान में लीन हो जाते हैं तथा अपनी परमहंस अवस्था को छिपाये रहते हैं। वे संत श्रीराजेन्द्रदास जी महाराज (मलूक पीठाधीश्वर) संत श्रीभगवान्दास जी, संत श्रीसुतीक्ष्णदास जी महाराज (सुदामा कुटी) तथा अन्य सन्तों के भी बहुत प्रिय स्नेह भाजन हैं। गुरु महाराज की इच्छानुसार तथा उनकी प्रेरणा से एक दूसरे शिष्य श्रीराम किंकर जी हैं जो आज भी **'श्रीगंगा गौशाला'** के नाम से संचालित गौशाला में निःशक्त, बीमार, असहाय, बूढ़ी-टेढ़ी लगभग 350 गौओं का अपने अथक प्रयासों से भरण-पोषण निःस्वार्थ भाव से निरन्तर कर रहे हैं।

16. भगवान् का मंगलमय विधान

एक बार जनवरी-फरवरी मास सन् 1980 में वृन्दावन में ऐसी विपदा पड़ी कि खाना बनाने के ईंधन का बहुत ही अभाव हो गया। रसोई गैस उस समय तक ज्यादा प्रचलित नहीं थी। स्टोव का ही ज्यादा प्रचलन था, मगर मिट्टी के तेल की बहुत बड़ी समस्या थी। प्रभु प्रेरणा से इस दास को यह प्रेरणा हुई कि कहीं महाराजश्री को मिट्टी के तेल की जरूरत तो नहीं? इसलिए मैं पाँच लीटर मिट्टी का तेल लेकर उनके पास श्रीटंडन जी वाले मकान में गया। बात बहुत तुच्छ है मगर भाव बहुत ही गहन। मिट्टी तेल को

देखते ही गुरु महाराज की आँखे सजल हो गईं तथा वे आत्मविभोर हो गये। उनका स्वभाव ऐसा था कि वे कभी किसी से, चाहे कितनी भी भयंकर जरूरत हो, कभी माँगते नहीं थे। इस दास ने लगभग 40 वर्षों में उनके श्रीचरणों में बहुत नजदीक से यह देखा कि वे कभी किसी से माँगते ही नहीं। बोले बेटा आज ईंधन (मिट्टी का तेल) के अभाव में भोजन ही नहीं बना है। तूने यह कैसे जान लिया कि आज भोजन नहीं बना है? यह कह कर उन्होंने मुझे अपने गले से लगा लिया तथा अश्रुपात करने लगे। बोले बेटा जब भगवान् राम के पिता श्रीदशरथ जी परमधाम को पधार गये तो उनके लिए एक आँसू भी नहीं बहाये मगर गीध को अपने अंक में भरकर आँसुओं से तर-बतर कर दिया। उन्होंने बताया कि मेरे सत्संग का सही-सही उद्देश्य ही यही है कि मेरे दु:ख पाने से यदि किसी दूसरे का दु:ख दूर हो जाता है तो यह सत्संग सही रूप में जीवन में उतर रहा है। बोले बेटा मैं कभी लौकिक घटना पर नहीं रोता मगर तेरे भाव को देखकर मुझे रोना आ गया। तूने मेरे हृदय की भावनाओं को जाना। इस दास पर अपार स्नेह करते हुए बहुत से आशीषवचन कहे तथा यह दास उनकी अलौकिक भावावस्था देखकर उनके श्रीचरणों में गिर पड़ा। यह घटना दि. 9.2.80 की है। उन्होंने राजा भर्तृहरि तथा भाईजी का प्रसंग सुनाकर यह पद गाया।

"गाय तिजारा, गोपीचन्द, भर्तृहरि रहे वर्ष बारह।
भाई का हेत, बाबा का कुहेत, आधे में कंचन, आधे मे रेत॥"

17. रहस्य की बात

दिनांक 13.8.78 को पूज्य गुरु महाराज ने एक बहुत ही रोचक तथा स्वअनुभवीय प्रसंग सुनाया। यह दास गुरु महाराजजी के श्रीचरणों में जाकर बैठ जाता तो वे कभी-कभी तीन-चार घंटे तक बैठने के बावजूद एक शब्द भी नहीं बोलते थे। मैं उनके श्रीचरणों में प्रणाम करके वापिस मथुरा चला आता था। एक दिन बोले "बेटा! तू कभी नहीं बोलता और चुपचाप उठकर चला जाता है। मन में सोचता होगा कि इतनी दूर से आने पर

आज मुझे सुनने को कुछ नहीं मिला, सभी यही चाहना रखते हुए मेरे पास आते हैं। तुझे मैं एक रहस्य की बात यह बतलाता हूँ कि जिस श्रद्धावान् की अपने गुरु के प्रति अटूट निष्ठा होती है उस गुरु के ध्याननिष्ठ शरीर विग्रह से 'नीली रश्मि' निकलती है और उस श्रद्धालु के अन्तर्मन तथा अन्तर्हृदय में सीधी घुस जाती है और उसका सत्संग पूरा हो जाता है। तुम यह मत सोचना कि तुम्हारा इतनी दूर से आना व्यर्थ गया, मुझे सत्संग में जो कुछ कहना था वह सीधे तुम्हारे अंत:करण में प्रविष्ट हो गया है।" यह सत्य घटना है कि इस दास को जितना आनन्द सुनने में आता था उससे कहीं अधिक मौन सत्संग में। दि. 25.5.80 को उन्होंने यह स्पष्ट कहा कि मेरे पास आने वाला खाली नहीं जायेगा। उसे हर हालत में फल मिलेगा। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि श्रीटंडन जी (मोटा गणेश मन्दिर वाले मकान मालिक) की यह हार्दिक इच्छा थी कि उनका प्राणान्त गुरु महाराज जी के ही सम्मुख हो। उनके प्राणान्त के समय बिना बुलाये ही गुरु महाराज उनके समक्ष आ गये तथा उन्होंने अपने प्राण ऐसे छोड़े मानों वे शरीर पर से कपड़े उतार रहे हों और देखते-देखते उन्होंने श्रीगुरु महाराज के समक्ष अपना शरीर त्याग दिया। तत्पश्चात् गुरु महाराज ने स्वयं उपस्थित होकर अपने हाथों से उनका विधि-विधान से अंतिम संस्कार किया। यह थी उनकी अपने पर पूर्णरूपेण आश्रितों की अंतिम इच्छापूर्ति की सद्भावना।

18. श्रीहनुमान जी का प्रत्यक्ष दर्शन

दिनांक 8.12.79 को गुरु महाराजजी ने एक और रहस्यमयी घटना बताई कि मैं एक दिन प्रात: 10 बजे के लगभग सेवा कुंज में गया। वहाँ मैंने दिव्य वृन्दावन की झलक तथा प्रिया-प्रियतम की भव्य महारास की लीला की भव्य झाँकी देखी। एकबार नन्दगाँव में कन्हैया की गौओं के झुरमुट को अपने सामने निकलते देखा। इसी प्रकार उन्होंने गोपियों के झुरमुट की झाँकी देखी। वे आपस में हास्य-विनोद तथा किलकारियाँ भर रही थीं। गोपियों की साड़ियों के भी उन्होंने दर्शन किए। इस बात की पुष्टि स्वयं गुरुमाता ने भी

इस दास को अवगत कराई। दि. 25.5.80 को बताया कि उन्होंने पहले संस्कृत नहीं पढ़ी थी तथापि प्रभु कृपा से बिना संस्कृत पढ़े स्वयं धाराप्रवाह संस्कृत बोलने तथा वार्तालाप करने लगे। यमुना स्नान करते समय उन्हें श्रीमहावीर जी के साक्षात् दर्शन हुए। गुरु महाराज ने श्रीहनुमान जी महाराज के प्रत्यक्ष दर्शन तथा उनके अद्भुत रूप का विस्तार से वर्णन भी किया। बोले कि मुझे हनुमानजी से सिद्धि का बीज मंत्र मिल गया। उसकी साधना करने पर मात्र एक दिन में ही श्रीहनुमान जी के दर्शन हो गये। गुरु महाराज ने एक घटना यह भी बताई कि मैं अपने बड़े भ्राता (पोस्टमास्टर) के साथ एकबार पिलानी (राजस्थान) जंगल में गया वहाँ एक ब्रह्मचारी बाबा लघु हनुमान जी की आराधना में लीन रहते थे तथा मौन रहते थे। लोगों ने उन्हें बताया कि ये वर्षों से मौन रहते हैं और किसी से भी नहीं बोलते। उन्होंने बताया कि ये बाबा मुझे देखकर हर्ष के साथ गले मिले तथा बोले कि मैं एक साधारण किसान परिवार का हूँ। जहाँ पेट भर भोजन भी नहीं मिलता। जिन्दगी से ऊबकर संसार से विरक्ति हो गई और प्रभु तलाश में अग्रसर हो गया। मुझे लघु रूप में एक महात्मा ने श्रीहनुमान जी की मूर्ति दी जिसकी मात्र 7 दिन की साधना से ही मुझे श्रीहनुमान जी महाराज के साक्षात् दर्शन हो गये तथा कहा कि दर्शन के बाद मैं कहीं भी आता जाता नहीं हूँ बस इसी श्रीहनुमान जी की लघु प्रतिमा के समक्ष हर समय मौन बैठा रहता हूँ। कहते हैं "हरि से हरिजन मिले"। यह कहावत यहाँ साक्षात् परिलक्षित हो रही है।

19. शिष्या के मृत पुत्र को जीवन दान

गुरु महाराज ने यह बताया कि एक माई जो चिढ़ावा कस्बे में रहती थी। जिसकी अटूट निष्ठा एक परम वैरागी संत के प्रति थी। वह नित्य प्रति उनकी सेवा करने तथा दर्शन हेतु जाती थी। उस माई का एकमात्र पुत्र था जो कि उसका एकमात्र सहारा था। दैववश उसका देहावसान हो गया। वह जरा भी विचलित नहीं हुई अपितु जवान बेटे की लाश को घर पर छोड़कर बाबा के दर्शन को चली गई। किसी अन्य श्रद्धालु ने यह बताया कि ये तो आपके

दर्शन तथा सेवा हेतु यहाँ आई है जबकि इसके जवान बेटे की लाश घर पर पड़ी हुई है। यह सुनते ही वह बाबा उस माई के घर उसे साथ लेकर चल दिये जहाँ परिवार के अन्य सदस्य उस जवान बेटे की लाश के पास बैठे रो रहे थे। बाबा उस लाश के पास बैठ गये तथा पीने के लिए छाछ (मट्ठा) माँगने लगे। सभी लोग बाबा के इस अजब व्यवहार से स्तब्धित थे तथापि माई का बाबा के प्रति अटूट श्रद्धा व विश्वास था। छाछ पीने के बाद बाबा ने अपना चिमटा मृत पुत्र को छुआ दिया। देखते ही देखते वह बालक जीवित होकर उठ बैठा तथा सबके देखते-देखते बाबा वहीं अन्तर्धान हो गये। गुरु महाराज बोले ऐसी अटूट निष्ठा तथा विश्वास होने पर क्या नहीं हो सकता। यह बात आम इंसान न तो समझ सकता है और न ही विश्वास कर सकता है।

20. गुरु निष्ठा के सामने प्रशासन को भी झुकना पड़ा

दिनांक 23.3.80 को स्वयं गुरु महाराज ने अपने श्रीमुख से इस दास को बताया कि "मेरे पास सब कुछ है मगर मुझे कोई ऐसा योग्य पात्र नहीं दिखता जिसे मैं इस अमूल्य धन (साक्षात् प्रभु) को दे सकूँ। अन्य जगहों पर माँगने वालों की अगर इतनी श्रद्धा तथा विश्वास होता तो मैं उसे तीसरे आसमान पर ले जाकर रख देता।" इसी क्रम में उन्होंने वृन्दावन के एक संत का प्रसंग भी सुनाया। उस संत की अपने गुरु महाराज के प्रति बहुत श्रद्धा थी तथा अटूट विश्वास भी था। कालान्तर में गुरु महाराज ने अपना यह नश्वर शरीर छोड़ दिया तो उनके सन्त शिष्य ने गुरुजी की समाधि बनवाई। प्रशासन ने अवरोध हटाने की दृष्टि से उस समाधि को वहाँ से हटाने का आदेश दिया। यह सुनते ही वे थोड़े विचलित तो जरूर हुए मगर गुरु भक्ति का स्मरण कर उन्होंने प्रशासन को "यह स्पष्ट चेतावनी दी कि यदि किसी ने भी मेरे गुरु महाराज की समाधि को हटाने का प्रयास किया तो मैं इस वृन्दावन को ही पलट कर रख दूँगा।" उनकी इस गुरुनिष्ठा के आगे प्रशासन को झुकना

पड़ा तथा समाधि को वहाँ से हटाने का आदेश वापिस लेना पड़ा। ऐसी होती है गुरु निष्ठा।

21. दही बड़ा खिलाने से बीमारी गायब

गुरु महाराज ने बताया कि "प्रारब्धानुसार विधान के अंतर्गत अपने इस नश्वर शरीर को रखे हुए हूँ। अपना कार्य पूर्ण करने पर नहीं रहूँगा।" बाबा अमृतनाथ के प्रसंग पर उन्होंने बताया कि उन्होंने झंडा गाड़ दिया कि जो भी प्राणी इस झंडे के नीचे, श्रद्धा व विश्वास रखकर जायेगा वह भवसागर से पार हो जायेगा। कलकत्ता के सेठ परिवार की सेठानी को बाबा अमृतनाथ पर अटूट विश्वास था। एक बार वह असाध्य बीमारी से ग्रसित हो गई। वह बाबा की शरण में गई, तो उन्होंने उसे उसकी असाध्य बीमारी को ठीक करने हेतु दही-बड़ा खिलाया। उसे खाते ही सेठानी की बीमारी सहज ही दूर हो गई। यही दशा पूज्य गुरु महाराज की थी उन्होंने एक मरीज को भावावस्था में गलत दवा दे दी। उस मरीज को उसी गलत दवा देने से अविलम्ब फायदा हो गया। पूछने पर बताया कि "बेटा यह आस्था तथा विश्वास का मामला है।" न जाने क्यों इस प्रसंग को कहकर पूज्य गुरुदेव ने अपने गले की माला अपने गले से उतार कर इस दास के गले में डाल दी।

22. कर्मों का लेखा जोखा

दिनांक 16.3.80 को पूज्यपाद जी ने एक बहुत ही रोमांचकारी और हृदय को छूने वाला प्रसंग बताया कि वे आसनसोल किसी भक्त के आग्रह पर गये और दिनांक 15.3.80 को ही वापिस वृन्दावन आये हैं। लौटते समय ट्रेन में एक भक्त टी.सी. ने यह सच्चा प्रसंग बताया कि एक सेठ के पड़ोस में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। सेठ तथा वह पड़ोसी एक बार कलकत्ता किसी कार्यवश साथ-साथ गये। सेठ के पास एक लाख रुपये थे। ब्राह्मण ने चालाकी से सेठ के एक लाख रुपये पार कर दिये (अर्थात् चुरा लिए) और लौटकर सेठ की पत्नी को दस हजार दिए तथा कहा कि सेठ जी ने मुझे

आपको देने को यह रुपये दिए हैं। फिर बोला कि वे कुछ दिन बाद वापिस आयेंगे। सेठ की पत्नी ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया और सेठ के आने की प्रतीक्षा करने लगी। ब्राह्मण के कोई सन्तान नहीं थी, उसे सन्तान की बड़ी चाहना थी। इधर कलकत्ता से सेठ तथा ब्राह्मण साथ-साथ ट्रेन में चले। ब्राह्मण की नीयत खराब हो गई। उसने रात्रि में सोते समय सेठ को जब ट्रेन एक नदी के ऊपर से गुजर रही थी, धक्का देकर नदी में फेंक दिया तथा वह बहुत खुश होकर अपने घर आ गया। इधर ब्राह्मण की पत्नी गर्भवती हो गई। ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। इधर तो दौलत मिल गई उधर सन्तान की चाह भी पूरी हो गई। कुछ समय पश्चात् ब्राह्मण के घर एक बड़े सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। धीरे-धीरे वह बड़ा होने लगा तथा बीमार रहने लगा। ब्राह्मण ने उसका पूरा इलाज कराया मगर वह ठीक नहीं हुआ। पुत्र के इलाज में जब ब्राह्मण के नब्बे हजार से ऊपर खर्च हो गये तब वह बालक हँसकर कहने लगा कि क्या तुमने मुझे पहचाना? मैं वही सेठ हूँ जिसके तुमने चालाकी से एक लाख रुपये निकाल लिए थे तथा मुझे चलती ट्रेन से नदी में फेंक दिया था। मेरा तुम्हारा पिता-पुत्र का कोई नाता नहीं है। मेरा तुम्हारा हिसाब बराबर हो गया है, इतना कहकर उस बालक ने अपने प्राण त्याग दिए। कर्मों का हिसाब इस प्रकार पूरा हो गया।

23. ना जाने किस भेष में नारायण मिल जाएँ

दूसरी घटना यह बताई कि कानपुर के जिलाधीश के अधीनस्थ एक बहुत ही ईमानदार सत्यनिष्ठ कर्मचारी था जो कोई भी कार्य बिना किसी लालच के नियमपूर्वक सही तरीके से करता था। अनीतिपूर्वक कार्य करने वाले कुछ स्वार्थी तत्वों ने उस कर्मचारी की शिकायत जिलाधीश से की तो उन्होंने स्वयं ही इस कर्मचारी की सारी गतिविधियों की जाँच करने का मन बना लिया। अपनी स्वयं की जाँच से पहले यद्यपि जिलाधीश इस कर्मचारी की सीबीआई, सीआईडी से जाँच करा चुके थे फिर भी उन्हें इन सभी जाँचों से संतुष्टि नहीं थी इसलिए स्वयं जाँच करने जिलाधीश पहुँच गये। जाँच के

दौरान जिलाधीश को वह कर्मचारी नारायण के रूप में कार्य करते दिखा। उसके निवास पर गुप्त रूप से निरीक्षण करने पर उसे उसी समय पूजा करते देखा। जिलाधीश को इस मर्मस्पर्शी घटना को देखकर तत्काल ही वैराग्य हो गया तथा संन्यास ले लिया। पूज्य गुरु महाराज इन दोनों घटनाओं से बहुत अधिक प्रभावित थे। कहने लगे कि **बेटा! मैं जो कुछ कहीं से रहस्य की कमाई कमा कर लाता हूँ उस गाढ़ी कमाई को लाकर घर बैठे तुम्हें दे देता हूँ। साथ ही उन्होंने इस दास को स्पष्ट रूप से कहा कि बेटा तू मेरा सच्चा भक्त है।** यह सुनकर यह दास उनके पावन चरणों पर गिर पड़ा।

24. गोपनीय रहस्य

पूज्य गुरुदेव ने अपनी करुणावश बहुत ही गोपनीय रहस्य स्वयं के बारे में यह बताया कि जब से मेरी परमहंस अवस्था हुई है तब से मुझे साधारण मनुष्यों की भाँति कोई भी संकल्प विकल्प नहीं होते हैं और न ही मुझे कोई स्वप्न दीखता है। मुझे नहीं मालूम कि मैंने कभी असत्य बोला हो या असत्य का सहारा लिया हो, न ही मुझे कभी भी किसी में कोई बुराई दीखती है। **जब से वह कन्हैया नजरों के सामने आया है तब से उसने लौकिक विचारों का अपहरण कर लिया है।** यह प्रसंग उन्होंने इस दास को दिनांक 21.5.78 को बताया।

25. अबला की रक्षार्थ सद्‌गुरु का प्राकट्य

संतों के प्रति उनकी बहुत अटूट आस्था रही। इस विषय में उन्होंने संतों के कई रोमांचकारी प्रसंग बताये।

दिनांक 14.8.80 को यह बताया कि भारत-पाकिस्तान के बँटवारे के समय एक युवक पाकिस्तान से एक तरुणी स्त्री को सद्‌गुरु तेगबहादुर की कसम खाकर अपनी बहिन बनाकर अपने साथ ले आया। रास्ते में उस युवक की नीयत उस तरुणी के प्रति डावाँडोल हो गई। उस समय संत गुरु तेग बहादुर वहीं रास्ते में प्रगट हो गये और उस युवक का काम तमाम कर दिया।

26. प्रत्यक्ष गुरु कृपा

श्रीकरतार जी पूज्य श्रीगुरुदेव के बहुत ही नजदीक तथा कृपापात्र शिष्य थे। वे अक्सर उन्हें बुल्लेशाह के बहुत ही रोचक प्रसंग सुनाया करते थे तथा वे सत्संग में नियमित गुरु महाराज जी के पास आया करते थे। उन्हें गुरु महाराज जी के प्रति बहुत अटूट श्रद्धा व विश्वास था। उन्होंने बताया कि मैंने अपने मकान के एक कमरे को जैसे ही खाली किया, उसकी छत तुरन्त गिर गई। वे उसी कमरे में रहते थे। यह गुरुकृपा नहीं तो और क्या है?

27. कन्हैया का साक्षात्कार

गुरु महाराज ने एक ऐसे परम विरक्त संत का कई बार प्रसंग सुनाया। वे संत कलकत्ता में किसी उच्च पद पर आसीन थे। उन्हें प्रभु कृपा से संसार से विरक्ति हो गई और घर संसार सब कुछ छोड़कर श्रीवृन्दावन धाम आ गये। शरीर पर मात्र कौपीन के अलावा सर्दी-गर्मी तथा बरसात में कुछ भी नहीं पहनते थे तथा प्रतिदिन श्रीवृन्दावन धाम की नियमित परिक्रमा लगाते थे एवं मौन रहते थे। कभी किसी से अन्न-जल नहीं माँगते थे तथा नियम से श्रीबिहारी जी के दर्शन करते थे। उनकी इस अवधूत अवस्था को देखकर बहुत से लोग तो उन्हें पागल ही समझते थे। वे कभी-कभी श्रीबिहारी जी की सीढ़ियों तथा खुले चबूतरे पर लेटकर सभी दर्शनार्थियों की चरण धूलि में लोट लगाया करते थे। कभी कोई श्रद्धालु उन्हें कुछ खाने को देता तो वे सिर्फ एक बार थोड़ा सा प्रसाद रूप में लेते थे तथा फिर पूरे दिन कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे। जब उनकी ऐसी दशा देखी तो उन्हें अन्न-जल देने के लिए स्वतः ही तमाम श्रद्धालु आने लगे। जिसका वे कुछ प्रसाद ग्रहण कर लेते वह अपने को धन्य मानता था। वे कहीं भी किसी दुकान या अन्य स्थान पर लेट जाते तो सर्दी के कारण श्रद्धालु उन्हें कम्बल ओढ़ा दिया करते। सुबह उठकर चल देते थे तथा कम्बल आदि वहीं पर छोड़ जाते। वे बहुत ही निस्पृह तथा परम विरक्त संत थे। पूज्यपाद ने बताया कि एक दिन मैंने उन्हें पकड़ ही लिया

तथा राज की बात जाननी चाही। यद्यपि वे मौन रहते थे तथापि मेरे आग्रह पर बोलकर अपना सब भेद खोल दिया तथा स्पष्ट बताया कि मुझे कन्हैया का साक्षात्कार हो चुका है। संसारी लोगों के समक्ष यह रहस्य बताने से क्या फायदा? आप (गुरु महाराज) उस उच्च अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं इसलिए मैं आपके समक्ष अपना अंतरंग रहस्य बता रहा हूँ।

28. गुरु परीक्षा उचित नहीं

श्रीगुरु महाराज ने एकबार प्रसंगवश बताया कि कभी किसी सच्चे संत या गुरु की परीक्षा नहीं लेनी चाहिए। दिनांक 14.10.79 को उन्होंने बताया कि गुरु गोरखनाथ जी के गुरु महाराज उच्च कोटि के विरक्त संत थे। गोरखनाथ जी को एक बार अपनी आध्यात्मिक शक्ति पर अभिमान हो गया। उनके इस अभिमान को दूर करने के लिए उनके गुरुजी ने यह लीला की कि अपनी गद्दी पर उन्हें बिठाकर स्वयं कहीं चले गये। गद्दी पर बैठते ही गोरखनाथ जी को गद्दी का अभिमान हो गया। इधर इनके गुरु जी ने शादी रचा ली तथा बच्चे भी हो गये। गुरु गोरखनाथ को बड़ा भारी भ्रम अपने गुरु महाराज के प्रति हो गया। उन्होंने इन सब बातों की छानबीन (जाँच-पड़ताल) की तो पता चला कि वे तो सब कुछ छोड़-छाड़ कर धूनी लगाये बैठे हैं। गुरु गोरखनाथ का सारा भ्रम दूर हो गया और वे गुरु महाराज के चरणों में गिरकर इस प्रकार की गई गुरु परीक्षा के लिए माफी माँगने लगे। उनके गुरुजी ने कहा कि तुम्हें गुरु पदवी का अभिमान तथा मेरे प्रति संशय हो गया था इसलिए यह लीला तुम्हारा मोहभंग हेतु रची थी।

29. बीड़ी पीने का रहस्य

एक घटना गुरु महाराजजी ने यह बताई कि एक शिष्य अपने गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा तथा आस्था रखता था। शिष्य को अपनी विद्वत्ता पर गर्व हो गया कि मैं तो धर्म के मामले में अपने गुरु से कहीं अधिक जानता हूँ। उसके गुरु बहुत पहुँचे हुए संत थे तथा निषेध वस्तुओं के सेवन तथा कुरीतियों की

मनाही करते थे। शिष्य के गर्व को खंडित करने हेतु उन्होंने एक ऐसा विचित्र उपक्रम रचा कि वह शिष्य गुरुजी के इस अद्भुत रहस्य को समझ ही नहीं सका। वे एक बार बीड़ी पीने लगे। किसी ने आकर बताया कि तुम्हारे गुरुजी तो अमुक स्थान पर बीड़ी पी रहे थे। यह सुनकर शिष्य को बहुत अधिक भ्रम अपने गुरु के प्रति हो गया। शिष्य के कल्याणार्थ वे इस शिष्य को अपने साथ लेकर बाजार की तरफ निकल पड़े। एक लुहार अपनी धौंकनी से लोहे को गलाकर कुछ औजार आदि बना रहा था। गुरु ने उस शिष्य को अपने साथ उस लुहार की दुकान पर रोक लिया तथा लुहार से कहने लगे कि मुझे बहुत जोर की प्यास लगी है जरा यह लाल-लाल जल (पिघला हुआ लोहा) तो पिला दो। लुहार ने मना किया कि इससे तो आपके तन-बदन में आग लग जायेगी यह पिघला हुआ लोहा है, जल नहीं। गुरु नहीं माने और अपने हाथ की ओट बनाकर गर्म-गर्म पिघलते हुए लोहे को पानी की तरह पी गये। इस भयानक तथा आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर शिष्य के होश उड़ गये और वह अपने गुरु महाराज के श्रीचरणों में गिरकर गिड़गिड़ाने लगा तथा माफी माँगने लगा। शिष्य के गुरुजी ने यह सब अद्भुत लीला करुणावश बीड़ी पीने की उसकी भ्रांति तथा अन्य संशयों को दूर करने हेतु रची थी। साधारण मानव क्या कभी सोच सकता है कि इस प्रकार पिघलते हुए लोहे को पानी की तरह पी लिया जाय? गुरु महाराज बार-बार यही कहा करते थे कि सच्चे गुरु की कभी भी परीक्षा नहीं लेनी चाहिए जब तक कि शिष्य की सही मायने में पात्रता न हो। शिष्य के लिए यह बहुत घाटे का सौदा होगा। उन्होंने अपने जीवनकाल में कभी किसी को शिष्य (चेला) नहीं बनाया। यद्यपि आज भी उनके तमाम शिष्य हैं। वे तो स्पष्ट घोषणा करते थे कि तुम्हें जँचे कि यहाँ कुछ माल है तभी मेरे पास आना। करुणावश उन्होंने इस दास से कहा कि बेटा मैं लोकैषणा, वित्तैषणा तथा पुत्रैषणा को कोसों दूर छोड़ चुका हूँ।

30. जितनी चाहो पुस्तकें लिख सकता हूँ।

जितनी चाहो भीड़ इकट्ठा कर सकता हूँ, जितनी चाहो दौलत इकट्ठी कर सकता हूँ। मगर मुझे इन सब ऐषणाओं का क्या करना है? जब मेरे हाथों परमधन (श्रीकृष्ण) लग गया है तो इन चन्द काँच के टुकड़ों को लेकर अथवा प्रसिद्धि पाकर क्या करूँगा? श्रद्धालु! सच मानिये वे हर समय परमहंस अवस्था में रहते थे। उन्हें कभी-कभी तो रात और दिन का भान भी नहीं रहता था तथा वे कभी खाने पीने को नहीं माँगते थे, चाहे 2-3 दिन भले ही क्यों न हो जाएँ। परिवारीजनों में उनका नाती श्रीगोपाल सबसे ज्यादा उनका (गुरु महाराज का) ख्याल रखता था। अंत समय तक जितनी सेवा अपने बाबा (गुरु महाराज) की श्रीगोपाल ने की, वह बेमिसाल थी। यद्यपि वह बच्चा ही था फिर भी बाबा के प्रति इतना अधिक समर्पित था कि उसने अपना पूरा शैशव काल ही बाबा की सेवा में लगा दिया।

गुरु महाराज कभी-कभी योगियों की खेचरी मुद्रा की बातें किया करते थे जिसमें योगी को कतई भूख-प्यास नहीं लगती। मैंने उनसे पूछा कि क्या आपको यह योग सिद्धि प्राप्त है तो वे हँसकर मौन स्वीकृति दे दिया करते थे। उनके निकटस्थ शिष्य बाबा रामकिंकर (श्रीगंगा गौशाला) जिन्होंने गुरु महाराज की लगभग 28 वर्षों तक अनवरत सेवा की, वे स्वयं बताते हैं कि गुरु महाराज गृहस्थ होते हुए भी परमयोगी हैं। उनकी योग साधना को बाबा रामकिंकर जी ने स्वयं अपनी आँखों से नजदीक से कई बार देखा भी था। ऐसा था परम श्रद्धेय गुरु महाराज का पावन चरित्र।

31. राममय का साक्षात् प्रमाण

यद्यपि यह रहस्य परम गोपनीय है तथापि गुरु महाराज की अहैतुकी कृपा से उन्हीं के श्रीचरणों में उन्हें ही समर्पित कर इसे श्रद्धालुओं को बताना चाहता हूँ कि गुरु महाराज इस समस्त सृष्टि को स्वयं कृष्ण-राममय देखते थे तथा इस दास को भी राममय देखने का आग्रह करते थे तथा श्रीरामायण के

नियमित पाठ पर बहुत बल देते थे। यह अल्प बुद्धि इस समस्त जड़-चेतन को राममय कैसे समझे, संसारी जीव हर बात का प्रमाण चाहता है। यद्यपि इस दास की परम पूज्य गोस्वामी तुलसीदास जी तथा उनके द्वारा सृजित श्रीरामचरितमानस (रामायण) में अटूट आस्था थी। वह पूज्य गोस्वामी जी के गुरु महाराज श्रीनरहरिदास की लीला स्थली शूकरक्षेत्र (कासगंज) गया मगर समस्त सृष्टि राममय होने का साक्षात् प्रमाण नहीं मिला। इस दास ने इस रहस्य को समझने के लिए अपनी तैनाती कासगंज (एटा) में करा ली तथा समय निकालकर बराबर शूकरक्षेत्र में जाता रहा। कुछ अंतराल के बाद यह अद्भुत घटना प्रभु कृपा से हुई कि यह दास अर्द्धनिद्रा में था तभी भोरकाल में श्रीरामायण मेरे समक्ष थी तथा मैं जिस पन्ना को भी पलटूँ सिवाय 'राम' शब्द के कुछ भी नजर न आये। श्रीरामायण की सभी चौपाईयाँ, दोहे, सोरठे आदि उसके स्थान पर सिर्फ 'राम' शब्द ही देखने को मिला। प्रभु राम की तथा श्रीगुरु महाराज की इस दास पर यह अहैतुकी कृपा हुई कि 'राममय' का साक्षात् प्रमाण मिल गया। जागने पर इस दास ने **श्रीरामायण को खोला तथा जगह-जगह से चौपाईयाँ तथा दोहे देखे तो प्रत्येक चौपाई तथा दोहे में 'रा' तथा 'म' शब्द ओत-प्रोत समाहित मिला।** प्रत्येक हिन्दू परिवार में श्रीरामायण जी विद्यमान हैं। श्रद्धालु इस शाश्वत सत्य को स्वयं देख सकते हैं। पूज्य महाराज ने कृपा कर इस दास को 'राममय' होने का साक्षात् प्रमाण दिखा ही दिया। यह उनकी अहैतुकी कृपा नहीं तो और क्या है?

32. परमानन्द की अनुभूति

एकबार पूज्य महाराज आत्मविभोर भावमुद्रा में बैठे हुए थे तथा बिल्कुल परमहंस अवस्था में थे। श्रीरामायण जी का यह प्रसंग चल रहा था कि महाराज दशरथ ने जनक दूतों से यह पूछा कि भैया! क्या तुमने मेरे दोनों पुत्रों को देखा है कि वे कुशल से तो हैं इस पर महाराज ने कहा—

भैया कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीके निज नयन निहारे॥
तब जनक दूतों ने यह शब्द कहे—
देव देखि तब बालक दोऊ। अब न आँख तर आवत कोऊ॥

तब प्रसंगवश इस दास ने उनसे पूछा कि क्या आपने कन्हैया को प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखा है तो उन्होंने बड़ी भक्तिपूर्वक संकेतात्मक रूप में यह कहा कि बेटा! नमक का पुतला समुद्र की थाह लेने गया, लौटकर आया ही नहीं। अब मैं तुम्हें क्या बताऊँ, मेरे पास उस दिव्य आत्मसात, प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए कोई शब्द ही नहीं है, जो इस अवस्था को पा लेता है उस चिर आनन्द का मैं कोई वर्णन नहीं कर सकता। उस परमानन्द की जरा सी भी अनुभूति होने पर यह संसार लोप हो जायेगा तथा तुम सदा-सर्वदा के लिए परमानन्द में डूब जाओगे। ऐसा नशा चढ़ेगा कि वह फिर उतरेगा ही नहीं। ऐसी थी उनकी दिव्य परमहंस अवस्था।

33. नश्वर शरीर का मुख्य उद्देश्य प्रभु मिलन

पूज्य गुरु महाराजश्री का अन्तिम समय में स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उन्होंने जीवन पर्यन्त कभी भी अंग्रेजी दवाइयों का सेवन नहीं किया था। उनकी चेतना शक्ति इतनी प्रबल थी कि शरीर को नश्वर समझकर उस पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते थे। यदि उन्हें तीन-चार दिन तक अन्न या पानी नहीं दिया जाय तो कभी भी नहीं माँगते थे। अत: उनकी तबियत का ख्याल एक शिशु की तरह ही करना पड़ता था। इस कार्य की पूर्ण जिम्मेदारी उनके नाती श्रीगोपाल ने ही अंत समय तक निभाई।

पूज्य महाराजश्री से मैंने कई बार यह आग्रह किया कि आप अपने स्वास्थ्य का ज्यादा नहीं तो थोड़ा सा ख्याल रखा करो तो उन्होंने बड़े सहजभाव में यह कहा कि "बेटा जब नदी पार करनी होती है तब नाव की जरूरत पड़ती है जब नदी पार हो जाती है तो नाव का क्या प्रयोजन?" इस मानव शरीर का मुख्य उद्देश्य 'प्रभु मिलन है।' मैंने उसे पा लिया तब इस नश्वर देह

का क्या ख्याल रखना? प्रारब्ध पूर्ण होने पर यह शरीर स्वत: ही छूट जायेगा। इसलिए इसकी क्या चिन्ता करना? पूज्य गुरु महाराज ने कई बार मुझे यह बताया कि संसारी जीव ईश्वर के लिए ध्यान लगाता है संसार भुलाने के लिए। मगर मेरे साथ यह उल्टा हो रहा कि मैं कन्हैया का विस्मरण करना चाहता हूँ तथा संसार को याद करना चाहता हूँ, मगर मैं क्या करूँ? वह कन्हैया मेरी आँखों से ओझल नहीं होता। 'वह मेरे आँख के दो आँसू बर्दाश्त नहीं करता है और सामने आकर खड़ा हो जाता है।'

जीव स्वार्थी होता है अत: वह अपने ही स्वार्थ की बातें करता है। हमें भी तो पूज्य गुरु महाराज का अपने सिर पर हाथ रखवाकर वरदान चाहिए। इसलिए मैंने उनसे बार-बार स्वास्थ्य सही रखने का विनम्र अनुरोध किया मगर वे ऐसी परमहंस अवस्था में थे कि उन्होंने इस प्रसंग पर कोई टिप्पणी न कर मौन ही रखना उचित समझा।

तथापि मुझसे गुरु महाराज की यह शारीरिक अवस्था नहीं देखी गई तो मैंने अपनी सांसारिक मर्यादा को दृष्टिगत रखते हुए उनके सुपुत्र श्रीभगवत् शरण चतुर्वेदी, जिनका नाम जयपुर के साहित्य जगत् में जाना पहचाना था, उन्हें एकपत्र लिखा। उसकी अंतिम चार लाइनें प्रस्तुत हैं—

आपने चाहा ही नहीं वरना हालात बदल सकते थे।
हमारी आँखों के आँसू आपकी आँखों से निकल सकते थे।
आप रुके रहे झील के पानी की तरह।
दरिया बनते तो बहुत दूर निकल सकते थे॥

इस पत्र को प्राप्त होते ही श्रीभगवत् शरण जी जयपुर से आये तथा विलम्ब के लिए खेद प्रगट किया। उनके सुपुत्र भी मेरे लिए गुरुतुल्य ही थे। **ऐसी थी पूज्य गुरु महाराज की परमहंस अवस्था।**

पूज्य गुरु महाराज के वचनामृत

(संग्राहक : श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग जी)

पूज्य गुरु महाराज का कहना था कि हंस का बेटा हंस ही होता है, कौआ कभी नहीं हो सकता। वे स्वयं को श्रीरामकृष्ण परमहंस देव जी का मानस पुत्र मानते थे।

गुरुदेव जी का सदैव यही कहना था कि जब तक साक्षात् नारायण या पूज्य गुरुदेव सत्संग-प्रवचन की आज्ञा नहीं दें तब तक किसी को ऐसा नहीं करना चाहिए। जो इस मर्यादा का उल्लंघन करके भोले-भाले मायाग्रसित प्राणियों को उपदेश देने का धन्धा करते हैं वे दोनों ही गुरु-शिष्य अन्धकूप में गिरते हैं। इसमें नकली गुरु को बहुत बड़ा अपराध लगता है। वे श्रीरामायण जी की यह चौपाई अक्सर कहा करते थे—

गुरु सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥

बहिरे ने अन्धे का कन्धा पकड़ रखा है इसलिए दोनों ही गिरेंगे। जब तक गुरु ने स्वयं साधना करके आत्मसात् न कर लिया हो, उसे किसी प्रकार प्रवचन आदि करने का अधिकार कदापि नहीं है।

वे अक्सर कहा करते थे बुझे हुए दीपक से बुझे हुए दीपक को नहीं जलाया जा सकता अपितु जले हुए दीपक से बुझे हुए दीपक को जलाया जा सकता है। आत्मसात किया गुरु (जला हुआ दीपक) ही अन्धकार कूप में पड़े हुए प्राणियों (बुझे हुए दीपक) के अन्दर प्रकाश प्रकट कर सकता है। भोले-भाले निरीह प्राणी नकली भेषधारियों के चंगुल में फँसकर अपना अमूल्य जीवन बर्बाद कर देते हैं। मनुष्य वाक्पटुता के जाल में फँस जाता है

तथा असल लक्ष्य से भटक जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि शांति तो मिलती नहीं अपितु नाना प्रकार के भ्रम तथा संशय उत्पन्न हो जाते हैं तथा मृग तृष्णा की तरह निराशा ही निराशा हाथ लगती है। ऐसे मनुष्य ताश के पत्ते की तरह अनेकों गुरु बना लेते हैं। ऐसे संशययुक्त प्राणियों को भगवत् साक्षात्कार तो बहुत दूर, तनिक शांति भी नहीं मिलती। वे श्रीरामायण की यह चौपाई कहा करते थे।

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखेहिं किमि दीना॥

जिन प्राणियों के मनरूपी दर्पण पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, पाखण्ड, द्वेष, मत्सर आदि का मैल जमा हुआ है वे दीन प्राणी कैसे उस परमतत्त्व को समझ सकते हैं तथा उसका साक्षात्कार कर सकते हैं। प्रभु कृपा करें, जीव थोड़ा प्रयास करे, फिर प्रार्थना करे, तत्पश्चात् प्रतीक्षा करे तो सद्गुरुरूपी भगवान् स्वतः उस पात्र (जीव) के पास कृपा करने आ ही जाते हैं। वे स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत कर कहते थे कि "मेरी प्रभु मिलन की तीव्र से तीव्रतम उत्कण्ठा थी तथा यह लालसा थी कि मुझे कोई ऐसा सद्गुरु मिले जिसने स्वयं अपनी आँखों से उस परमपिता परमेश्वर को प्रत्यक्ष देखा हो। प्रभु ने कृपा कर श्रीरामकृष्ण परमहंस देव जी द्वारा दीक्षित ऐसे सद्गुरु को स्वतः ही मेरे निवास पर भेज दिया और मेरी मात्र सात दिन में ही चिर प्रतीक्षित मनोकामना पूर्ण हो गई। इसलिए मैं अब दादा (श्रीकृष्ण) तथा अपने गुरुदेव महाराज की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। दादा मुझे छोड़ता ही नहीं है तथा मुझसे कहता है कि संसार में भूले भटके प्राणियों को स्मरण दिलाकर उन्हें भवसागर से पार कर उन्हें आवागमन के चक्र से मुक्ति दिलाओ। मैं तो दादा की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ तथा प्रभु आज्ञा से गाढ़ी कमाई को अब सबको निःस्वार्थ भाव से बाँट रहा हूँ। जो संस्कारी तथा श्रद्धालु होगा उसे अवश्य लाभ व शांति मिलेगी।

दिनांक 12.2.77 पूज्य गुरुदेव द्वारा स्वहस्तलिखित उपदेश जो साधक को साधना पथ पर प्रभु तक पहुँचाने में अनुपम योगदान देता है—

निर्दोष : मेरा कुछ भी नहीं है।
निष्काम : मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।
असंग : मेरा कोई भी नहीं।
परिणाम : राम में आस्था, श्रद्धा, विश्वास आत्मीयता व भक्ति।

दिनांक 16.1.77 को साररूप में निम्न उपदेश दिया–

1. संग्रह का अन्त– विनाश।
2. संयोग का अन्त– वियोग।
3. उन्नति का अन्त– पतन।
4. जन्म का अन्त– मरण।

दिनांक 6.3.77 को पूज्य गुरुदेव ने बताया कि जीव की प्रमुख तीन माँगें हैं।

1. स्वाधीनता। 2. परमसुखी होना। 3. अभाव रहित होना।

उन्होंने कहा कि यह सभी गुण परमात्मा में विद्यमान हैं। यह संसार इन तीनों शर्तों को पूरा नहीं कर सकता, सिर्फ ईश्वर ही जीव की इन प्रमुख माँगों को पूर्ण कर सकते हैं। ईश्वर की प्राप्ति सत् के संग से होती है। यदि सत् का सच्चा संग मिल जाय तो काम बहुत आसानी से हो सकता है। सत् का सही अर्थ है नित्य सत् अर्थात् परमात्मा। यह भी घोषणा की कि यदि सारे वेदों को कंठस्थ कर लिया जाय, सारे जप, योग, ध्यानादि, उपवास आदि कर लिए जाएँ तो भी परमात्मा नहीं मिल सकते, सिर्फ एक संत के संग से ही वे मिल सकते हैं। (गुरुदेव ने बताया कि "मैंने ध्यान की उस अवस्था को स्वयं देखा है")।

गुरुदेव ने उपदेश दिया कि प्रभु को प्रसन्न करने का सबसे सरल उपाय है उनकी याद में रोना। एकाग्र चित्त तभी होगा जब परदोष दर्शन न किए जाए तथा भोगों का परित्याग कर दिया जाय तथा विरक्त संतों की सेवा तथा उनके

साथ संग अर्थात् सत्संग। हमेशा यह मनोवृत्ति रखनी होगी "राम मेरे हैं मैं राम का हूँ। राममय जगत् को देखने का निरन्तर अभ्यास करना होगा।"

गुरु महाराज के पैर में दि. 8.1.76 को बहुत ही असह्य पीड़ा हो गई थी। उन्होंने कोई औषधि नहीं ली थी अपितु जोर-जोर से हरिनाम लेने लगे। बोले यह हरिनाम वह औषधि है जो भवरोग के साथ जीव के शारीरिक रोगों को भी ठीक कर सकती है।

मुख्य रूप से प्रभु के पावन नाम पतित पावन, भक्तवत्सल, दीनबन्धु एवं करुणा सागर हैं। यों तो प्रभु के अनेकों पावन नाम हैं मगर ये चारों नाम बहुत ही पवित्र हैं जिनके स्मरण मात्र से प्रभु रीझ जाते हैं।

उनका कहना था कि जिस पात्र में छिद्र होता है उस पात्र में जल ठहर ही नहीं सकता। इसी प्रकार जिस व्यक्ति का मन मस्तिष्क तमाम विकारों से भरा हुआ है उसे चाहे जितना बताओ, सब व्यर्थ ही जाता है। इसलिए इन्द्रियों पर, नव द्वारे रूपी झरोखों पर हर क्षण सचेत रहना होगा। शादी काम मर्दन के लिए होती है न कि भोगों को भोगने के लिए। जो शादी को सिर्फ भोग विलास का ही माध्यम समझते हैं, वे मार्ग से भटक जाते हैं। वे **"श्रीरासपंचाध्यायी"** को कामवासना से मुक्ति का सरल उपाय बताते थे तथा नित्यप्रति इसके पाठ पर जोर दिया करते थे।

साधक को अन्तर्मुख, सूक्ष्म दृष्टि तथा यथार्थ दृष्टिकोण रखकर बहिर्मुखता का त्याग कर देना चाहिए। साधारण जीव सदैव लोकैषणा, वित्तैषणा तथा पुत्रैषणा में सदैव फँसा रहता है। वह इस चक्रव्यूह से बाहर निकल ही नहीं पाता है। यदि किसी सच्चे सद्गुरु से संयोगवश भेंट हो जाय तथा साधक की उनके प्रति पूर्ण आस्था तथा विश्वास हो तो इन तीनों ऐषणाओं से सहज ही छुटकारा मिल सकता है। इसमें ज्यादा परिश्रम की आवश्यकता नहीं है। साधक यदि गुरुवचनों में अटूट विश्वास रखकर थोड़ा सा भी प्रयास करे, तो शेष कार्य गुरुकृपा से सहज ही में हो जाता है। यह बात उन्होंने अपने आत्म-अनुभव से बताई। प्रभु से आर्त्तस्वर में कहना कि–

"हे नाथ! **बस तुम्हारा ही सहारा है, तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ।**" यह आर्त स्वर सुनते ही वे कृपासागर दौड़े आयेंगे और तुम्हारी सारी बिगड़ी बात को एक क्षण में बना देंगे। प्रभु को पुकारो तो सही, उनके मार्ग पर चलने वाले भक्त के लिए कौन सी बड़ी बात है।

गुरु महाराज बताते थे कि **तुम अपने निज स्वरूप को पहचानो, तुम काल के भी काल हो।** भाँग न पीने वाले को जिस प्रकार थोड़ी सी भाँग पिला दो तो उसका तुरन्त असर होता है। इसी प्रकार सतत हरिनाम पीने वाले को प्रभु नाम का नशा न हो जाय यह हो ही नहीं सकता। वे बताते थे कि मुझे तो आठों पहर नशा चढ़ा ही रहता है।

"नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन रात"

अतः साधक को जितना बन पड़े प्रभु नाम का स्मरण निरन्तर करते हुए श्रद्धा से हरि भजन ही करना चाहिए। इस घोर कलियुग में जीव कहाँ योग, जप, तप आदि कर सकता है, सिर्फ प्रभु भजन ही उनसे मिलने का सरल से सरलतम उपाय है—

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥

गुरु महाराज एक लाख नाम जप प्रतिदिन करने पर बल देते थे क्योंकि वे स्वयं ही एक लाख नाम जप करते थे।

आत्मा का साक्षात्कार सत्य के बिना नहीं होता। सत्य का पालन मनुष्य भयवश नहीं करता। भय, मुख्यरूप से दो प्रकार का होता है—प्रथम शारीरिक वेदना दूसरा आर्थिक। शारीरिक वेदना में यह भय रहता है कि कहीं शरीर का नाश न हो जाय। जब मन प्रभुमय एकाकार हो जायेगा तो फिर इस शरीर से मोह स्वतः ही छूट जायेगा। दूसरा भय आर्थिक हानि का जिसमें उसे झूठ का सहारा लेना पड़ता है साथ ही परनिन्दा का। **सत्य में ही वह बल है जो जीव को प्रभु के श्रीचरणों तक पहुँचा देता है।** वे अक्सर श्रीमद्भगवद्गीता के इस श्लोक पर बहुत बल देते थे—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

—गीता 2.16

अतः वे प्रभु राम (कृष्ण) से अपना नाता जो आपको अच्छा लगे, जोड़ने पर बल देते थे। नाता जोड़ने पर प्रभु की स्वतः ही याद बिना प्रयास के आवेगी। **"वे अपने हैं, मैं उनके लिए हूँ।"** यह बात सदैव अपने मन मस्तिष्क में रखो।

गुरु महाराज स्वयं गृहस्थी संत थे इसलिए कहते थे कि घर द्वार छोड़ने की कतई जरूरत नहीं है। किले में रहकर जिस प्रकार हर सुविधाओं के साथ युद्ध लड़ा जा सकता, उतना मैदान में नहीं। इसलिए घर-द्वार में सबके साथ रहने पर भी उनमें कतई आसक्ति न रखो। गेरुआ रंग का कपड़ा पहनने पर कुछ नहीं होता। यदि अंतरमन में निरासक्ति है तो सफेद कपड़ा पहनो अथवा गेरुआ। उन्होंने अपने अनुभव से बताया कि गेरुआ रंग वाले असाधु प्रायः दुखी ही देखे। किसी ने अपने परिवार की सामाजिक जिम्मेदारियों को ठीक से नहीं निभाया, कोई पत्नी, पुत्रादि के त्रासादि से त्रस्त होकर भाग खड़े हुए कोई चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि अनैतिक सामाजिक कुरीतियों से बचने के लिए साधु बन गये। ऐसे जीवों को गेरुआ वस्त्रधारी साधु बनने पर कदापि शान्ति नहीं मिल सकती, प्रभु साक्षात्कार तो बहुत दूर की बातें हैं।

दोहा— **काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुखरूप।**
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ परे तम कूप॥

प्रभु से विमुख गृहस्थ के सभी साधन बाधक बन जाते हैं और प्रभु को साथ लेकर चलने से वे ही सब साधन साधक रूप में बन जाते हैं।

हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिय राम तजि काम सब, अस विचारि मन माहिं॥

पूज्य गुरु महाराज का बार-बार यह कहना था कि यदि किसी कमरे में 50 वर्ष से अँधेरा है तो उस अँधेरे को दूर करने में 50 वर्ष नहीं लगेंगे अपितु

एक जलता हुआ दीपक कमरे में लाकर रख दो तो वह 50 वर्ष का अंधकार तत्काल समाप्त हो जायेगा। उनका कहना था कि जीव अनेक योनियों में अपने प्रारब्धवश भटकता रहता है। जब प्रभु असीम कृपा करते हैं तो जीव को यह दुर्लभ मनुष्य योनि मिलती है। इसलिए उनका कहना था कि यह बात सोचकर निराश नहीं होना चाहिए कि जन्म जन्मान्तरों के पाप समूह कैसे नष्ट होंगे ? प्रभु के लिए इन पापों को तत्काल नष्ट करने में कितनी देर लगती है। सिर्फ श्रद्धा तथा अटूट विश्वास का प्रश्न है। यदि जीव का अपने सच्चे सद्गुरु के प्रति यह विश्वास जम जाय तो उसे कुछ नहीं करना पड़ता। बाकी सारा कार्य स्वतः प्रभु सद्गुरु रूप में आकर कर जाते हैं। (वे अपना स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करते थे कि "मेरा काम तो मात्र 7 दिन में ही बन गया")।

दिनांक 20.7.78- गुरु पूर्णिमा। आज गुरुपूर्णिमा के अवसर पर उन्होंने सारों का सार यह अनुपम उपदेश दिया कि तुम इस नश्वर शरीर को हृदय से शाश्वत मानना, किसी से कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। मन में शरीर के शाश्वत मानने का परिणाम यह होगा कि आपके मायाकृत दोष काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सहज ही बिना प्रयास के छूट जायेंगे तथा आपका मन पवित्र हो जायेगा। मन पवित्र होते ही प्रभु राम के चरणारविन्दों में डोरी लग जायेगी। ऐसा होते ही प्रभु आप पर अवश्य कृपा करेंगे तथा आप का मनुष्य जन्म लेना सार्थक हो जायेगा। आपको चिर परमशांति मिलेगी तथा आवागमन का चक्र छूट जायेगा।

दिनांक 14.8.80- भगवान् का एक नाम वासुदेव भी है। वासुदेव अर्थात् वे जड़ चेतन सभी रूपों में हर समय हर जगह विद्यमान हैं। सभी में उनका प्रतिबिम्व झलक रहा है। हर जगह व्याप्त होने के कारण ही उनका नाम वासुदेव पड़ा है।

प्रभु का एक पावन नाम 'सच्चिदानन्द' है अर्थात् सत्, चित्, आनन्द। प्रभु इन गुणों के श्रोत हैं।

पूज्य गुरुदेव ने प्रभु को अतिशीघ्र प्रसन्न करने का एक सरल से सरलतम उपाय यह बताया कि तुम जितना अधिक सरल होओगे; कपट चतुराई छोड़कर सब साधन हथियार डाल दोगे तब तुम पर प्रभु की असीम कृपा अवश्य बरसेगी।

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥

यदि सद्गुरु तुम्हारे इस स्वभाव को देखकर रीझ गये तो तुम पर अवश्य कृपा बरसेगी। सेवा तथा कृपा दो ऐसे अचूक साधन हैं जो कभी भी व्यर्थ नहीं जाते। एक उदाहरण देकर वे बताते थे कि मानो एक दुर्गम किला है और उसमें अनेकों वीथियाँ जिनका कोई अता-पता ही नहीं है। अनजान व्यक्ति उन वीथियों में भटक जाय तो जाने के बाद उनमें उलझ जायेगा और बाहर नहीं आ सकता है। यदि उन वीथियों के साथ-साथ कोई ऐसा छोटा दरवाजा है जिसे वहाँ का रहने वाला जानता है तो वह आसानी से उस दुर्ग की दुर्गम वीथियों में जा भी सकता है तथा छोटे दरवाजे से बाहर भी आ सकता है। ऐसे ही परमार्थ की विषम पगडंडियाँ हैं। जिसने प्रभु को आत्मसात करने के सभी साधन गहराई से समझ लिए हैं, उसके लिए तो यह भवसागर गाय के खुर के समान है। उन्हें श्रीकबीरदास का यह भजन बहुत ज्यादा प्रिय था।

"मन मस्त भयो फिर क्यों बोले
x x x x
साहिब मिल गया तिल ओले"

गुरुदेव का यह कहना था कि जब तुम सभी साधन करके थक जाओ तो सिर्फ सेवा तथा कृपा का ही सहारा लेना। यह अचूक रामबाण है। इसी साधन से मुझे अभीष्ट की प्राप्ति हुई। मैंने सब साधन करके देख लिए हैं, इसलिए यह सबसे सरल व सुगम रास्ता बता रहा हूँ।

ता कहु प्रभु कछु अगम नहिं, जा पर तुम्ह अनुकूल।
तब प्रभाव बड़वानलहि, जारि सकइ खल तूल॥

दिनांक 11.2.79- गुरुदेव आज के दिन बड़े ही विस्मित दशा में थे। स्वयं को राममय तथा सभी को राममय देख रहे थे। **"मैं वही हूँ जो तुम हो।"** श्रीनामदेव महाराज का उद्धरण देते हुए बोले कि उन्हें कुत्ते में भी प्रभु के दर्शन हुए इसीलिए तो वे घी का कटोरा लेकर कुत्ते के पीछे-पीछे भागे। यह राममय वृत्ति तभी हो सकती है जब लोकैषणा, पुत्रैषणा तथा वित्तैषणा से उपराम हो जाओगे। निम्न चौपाई उन्हें बहुत प्रिय थी जिसका वे बार-बार संकेत करते थे।

"सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा॥"

(वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है (तत्त्वमसि) जल और जल की लहर की भाँति उसमें और तुझमें कोई भेद नहीं है)। स्वाधीन व्यक्ति ही प्रभु को प्राप्त कर सकता है, पराधीन कभी नहीं। वे साध्य, साधन, साधक तीनों की एकरूपता पर बल देते थे। नश्वरता पर स्थायी अधिकार कभी नहीं हो सकता। शाश्वतता पर ही प्रभु कृपा से अधिकार हो सकता है। यह तभी होगा जब हम अपने शरीर को शाश्वत समझेंगे। यह प्रभु प्रदत्त शरीर है जो प्रभु तक पहुँचने का साधन मात्र है। शाश्वतता का बोध होते ही मन स्वत: वहाँ से हट जायेगा तथा उसका झुकाव प्रभु की तरफ बिना प्रयास के हो जायेगा।

दिनांक 28.8.79— कभी किसी का विरोध न करो। छोटा आदमी भी वक्त पर काम आ सकता है जैसे प्रेत ने ही गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रभु राममिलन में मदद की। प्रभु का निरन्तर स्मरण करके उनका भजन करो। एक दिन वह आयेगा जब अजपाजप होने लगेगा। अजपाजप होते ही प्रभु विस्मरण नहीं होगा तथा उन्हें तुम हर क्षण अपने पास महसूस करोगे।

प्रभु को वही पा सकता है जिसके एक हाथ में भोग तथा दूसरे हाथ में योग होगा। बिना भोग के योग का यथार्थ भान नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण भगवान् की अनेकों रानियाँ थीं। कहीं वे लड़की की शादी करके विदा के समय रो रहे हैं, कहीं बच्चों के साथ खेल रहे हैं, कहीं रानियों के साथ हास-परिहास कर रहे हैं तो कहीं समाधि लगाकर ध्यान कर रहे हैं। ये सभी

लौकिक कार्य वे अनासक्त भाव से करते थे। **"भोग में योग छिपा रह सकता है मगर योग में भोग कभी नहीं।"**

कमजोर को भगवान् कभी नहीं मिलते। जो अपने गुरु को भगवान् से भी अधिक मानता है उसके लिए मंजिल दूर नहीं। एक समय ऐसा आता है जब गुरु का विग्रह लोप हो जाता है तब स्वयं नारायण ही गुरु रूप में प्रकट हो जाते हैं।

पाँच बातों को जीवन में उतारने से जल्दी काम बनता है— 1. परहित चिंतन। 2. समता। 3. सदाचार। 4. क्रोधहीनता तथा 5. परमशान्त होना।

राग मीठा जहर है जबकि द्वेष कड़वा जहर। सत्य का पालन करने वाले तथा सरल हृदय पर प्रभु बहुत शीघ्र पिघल जाते हैं जैसे कि विभीषण ने कुछ भी नहीं छिपाया तथा अपनी बात सहज तरीके से निष्कपट भाव से रख दी।

सहज पापप्रिय तामस देहा। यथा उलूकहिं तम पर नेहा॥

प्रभु राम उसके सत्य तथा सरल वाक्यों पर रीझ गये तथा उसे अपने गले से लगा लिया तथा लंका का राज्य दे दिया। इसलिए साधक को सत्य का आश्रय लेकर सरल से सरलतम होना चाहिए। तभी प्रभु की कृपा बरसती है। कपटी को तो प्रभु कतई स्वीकार नहीं करते। प्रभु राम ने अपनी सरलता का परिचय देते हुए श्रीरामेश्वर शिवलिंग की स्थापना के समय रावण को बुलाया तथा रावण ने प्रभु की सरलता, विनम्रता को देखकर उन्हें विजयी होने का आशीर्वाद दिया। इसी प्रकार कौरव-पांडव युद्ध में युधिष्ठिर ने अपनी सरलता का परिचय देते हुए युद्ध भूमि में स्वयं श्रीद्रोणाचार्य तथा श्रीभीष्म पितामह के चरणों में प्रणाम किया। दोनों ने ही उन्हें युद्ध में विजयी होने का आशीर्वाद दिया। ये है उदारता तथा सरलता का परिचय।

प्रभु बस इतने से ही रीझ जाते हैं कि जीव निष्कपट भाव से उनके समक्ष हथियार डालकर आत्म समर्पण कर दे। यहाँ की सभी वस्तुएँ अनित्य हैं

जिनका नाश होना अवश्यम्भावी है। जिसका कभी नाश नहीं होता है वह अविनाशी। स्वयं प्रकाशक, दीनबंधु, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर तथा करुणासागर तो एकमात्र प्रभु ही हैं। उन्हीं की शरण जाने पर उनकी अहैतुकी कृपा मिलती है। प्रभु को तो जीव से कुछ भी नहीं चाहिए वे तो सर्वसमर्थ हैं। वे तो सिर्फ इतना चाहते हैं कि जीव सब छल, कपट आदि छोड़कर विनम्र होकर उनके समक्ष आत्म-समर्पण कर दे। जीव की शाश्वत माँग है— आनन्द तथा शाश्वत शांति। ये दोनों ही माँगें तुरंत पूरी हो जाती हैं। प्रभु के लिए कोई भी जीव छोटा-बड़ा नहीं होता। जिसके पास साधन है तथा जिसके पास नहीं है, दोनों पर ही प्रभु की कृपा बरसती है, जैसे शबरी पर। प्रभु का बाना ही जीव का कल्याण करता है।

जीव अपने अभिमानवश लक्ष्य से भटक जाता है। व्यर्थ की अकड़ में रहता है। अभिमान का मोहभंग करने हेतु गुरु महाराज एक बहुत ही सरल व सटीक उपाय बताते थे। मानो अमुक व्यक्ति स्वयं कलैक्टर हो तो यह तो बताओ कि तुम्हारा हाथ कलैक्टर अथवा पैर, पेट, मुँह, आँख, कान, नाक आदि तुम्हारे किस अंग को कलैक्टर की उपाधि दी जाय। ऐसा तो शरीर का कोई भी अंग नहीं है जिसे यह कल्पित उपाधि दी जाय। फिर किस बात की अकड़ तथा अभिमान। एक अनित्य उपाधि का ही सारा बखेड़ा है। तत्त्वत: तो कोई भी अंग कलैक्टर नहीं हो सकता। इस बात पर गहन-चिन्तन व मनन करने पर अभिमान स्वत: ही समाप्त हो जायेगा।

राम रस पीने वाला दीर्घायु तथा नित्य नूतन बना रहता है। यह शरीर प्रभु राम की धरोहर है। इस पर सदैव दृष्टिपात रखो ताकि यह कुमार्ग पर न चला जाय। ऐसा स्वभाव बना लो कि तुम्हें दुनिया का कोई भी प्रलोभन विचलित न कर सके। जीवन में कोई व्रत लो, वरना कुमार्ग पर फिसलने का खतरा बना रहता है। विषयों की तृष्णा ही दुखों का उद्गम स्थान है। स्वजन सम्बन्धियों के प्रति ऐसा भाव रखो जैसे प्याऊ पर पथिकों का इकट्ठा होना। सब जल पीकर अपने-अपने रास्ते विलग-विलग स्थानों पर कूच कर जाते

हैं। संसार को सदैव अनित्य समझोगे तो स्वजनों तथा घर-द्वार तथा भौतिक वस्तुओं से स्वत: ही मन विलग हो जायेगा तथा आपको परमशांति प्राप्त होगी।

श्रीगीता का उदाहरण देते हुए स्वयं गुरु महाराज ने अपने अनुभव की इन बातों पर विशेष बल दिया है—

1. विविध कर्मों का त्याग।
2. **सकाम कर्मों का त्याग।**
3. तृष्णा का त्याग।
4. **सुख के लिए सबों का त्याग।**
5. कर्त्तव्य कर्मों में आलस्य तथा फल की इच्छा का त्याग।
6. **संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में तथा कर्मों में ममता एवं आसक्ति का त्याग।**
7. शरीर, संसार तथा सम्पूर्ण कर्मों की सूक्ष्म वासना तथा अहंकार का त्याग। "परिवार का पालन कर्त्तव्य समझकर करना चाहिए, मगर मोहवश उसमें आसक्ति रखना उचित नही।"

"सकल सृष्टि राधिकामयी है।"

ईश्वर को कौन पा सकता है? "पाप रूपी मोती से पिरोई हुई वासनारूपी तनु संतति जिसके हृदय कमल से ग्रंथित नहीं है अर्थात् जो वासना और पाप से रहित है, वही पा सकता है"

इस अनित्य जगत् से उपरति उसी की हो सकती है जो—

1. आशाओं और चिन्ताओं से रहित है।
2. वासना तथा पाप से रहित है।
3. राग-द्वेष से रहित है।
4. कामादि विकारों से रहित है।
5. जिसका मन चंचल नहीं है।

मन की सप्त भूमिकाऐं—

1. शुभेच्छा— प्रभु साक्षात्कार की भावना।
2. विचारणा— सत्संग द्वारा प्रेरित सदाचार का होना।
3. तनुमानसा— विषय भोगों में आसक्ति का अभाव।
4. सत्यापत्ति— चित्त का आत्मा से तद्रूप होना।
5. आसक्ति— अंतःकरण का समाधि में आना।
6. पदार्थ भावना— पदार्थ का भान न होना।

पूज्य गुरुदेव ने अपनी चरमावस्था पर पहुँचने का वर्णन स्वयं अपनी लेखनी से इस प्रकार किया है—

1. तितिक्षा को बढ़ावा।
2. मन वाणी का संयम।
3. ब्रह्मचर्य का पालन।
4. प्राणों को अपने अधीन करना।
5. प्राणायाम। प्राणायाम द्वारा मन और इन्द्रियों के निरुद्ध हो जाने से वासना जनित बन्धन भी नष्ट हो गया।

(आध्यात्मिक योग की साधना द्वारा श्रीकृष्ण की उपासना..)

"इस प्रकार सदाचार के पालन से श्रीकृष्ण में अनन्य भक्ति हो गई, अनन्य भक्ति द्वारा ही वैराग्य सहित ज्ञान की प्राप्ति हो गई। उस तीव्र ज्ञान द्वारा उन्होंने जीव का उपाधिभूत अहंकार नष्ट कर दिया जो सब प्रकार के संशय-विपर्यय का आश्रय है।"

"पूज्यपाद गुरु महाराज की इस आत्म अनुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध तेइसवां अध्याय श्लोक 10 व 11 से हो जाता है।"

भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा।
भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्य विषयाभवत्॥10॥

अर्थ— इस तरह भगवत्परायण होकर श्रद्धापूर्वक सदाचार का पालन करते हुए निरन्तर साधन करने से परब्रह्म परमात्मा में उनकी अनन्य भक्ति होगी॥10॥

तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्ध—
सत्वात्मनस्तदनु संस्मरणानुपूर्त्या।
ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन
चिच्छेद संशयपदं निजजीवकोशम्॥11॥

अर्थ— इस प्रकार भगवदुपासना से अन्तःकरण शुद्ध सात्त्विक हो जाने पर निरन्तर भगवच्चिन्तन के प्रभाव से प्राप्त हुई इस अनन्य भक्ति से उन्हें वैराग्य सहित ज्ञान की प्राप्ति हुई और फिर उस तीव्र ज्ञान के द्वारा उन्होंने जीव के उपाधिभूत अहंकार को नष्ट कर दिया, जो सब प्रकार के संशय विपर्यय का आश्रय है॥11॥

पूज्य श्रीमलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज द्वारा प्रस्तुत 6 संस्मरण

1. नौकरी से त्यागपत्र

हमारे वृन्दावन में एक महात्मा थे। गृहस्थ ब्राह्मण थे पर वे महान् संत थे पूज्य पं. श्रीदुर्गाप्रसाद जी चतुर्वेदी। वैसे उनको सब साधु लोग 'मोटे-गणेश वाले महाराज'* कहते थे। वृन्दावन में एक मोटे गणेश जी का मन्दिर है वहाँ बहुत वर्षों तक वे विराजे।

मैंने उनके चरणों में बैठकर कई बार सत्संग किया है। हर मंगलवार को सत्संग करते थे, केवल एक घण्टा, बस। किसी ग्रन्थ पर नहीं ऐसे ही जो भगवान् ने उन्हें प्रेरणा की, वे बोलते थे। हमने ऐसी प्रभावशाली वाणी जल्दी किसी की नहीं सुनी। सीधे कलेजे पर चोट करती थी उनकी वाणी। उन्होंने मन, वाणी, क्रिया से जीवन पर्यन्त सत्य का पालन किया और अंग्रेजी शासन में वे रेलवे विभाग में बड़े अधिकारी बन गए। एक दिन ऑफिस में ऐसे ही बैठे थे, युवावस्था थी, नौकरी लगी ही थी, साल दो साल हुआ होगा। ब्राह्मण तो थे ही, समय से सब संस्कार हुए थे। तो ऐसे ही ऑफिस में बैठकर सोचने लगे कि **मनुष्य जन्म का फल क्या है?** बस इसी बात को केवल एक घण्टा सोचा और सोचते सोचते इस निर्णय पर पहुँचे कि भगवान् ने मुझे अपनी प्राप्ति के लिए मनुष्य बनाया है और हम मनुष्य होकर, उसमें भी ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर ये नौकरी-चाकरी के चक्कर में पड़े हैं। अरे राम-राम! जीवन

★ टिप्पणी— पं. दुर्गाप्रसाद जी को **मोटे गणेश वाले महाराज** क्यों कहते थे।
उत्तर— श्रीटंडन जी ने जब अपना मकान बनवाया तो उसी मकान के एक भाग में मोटे गणेश जी का मन्दिर भी बनवाया। टंडनजी ने महाराज जी को अपना मकान रहने हेतु दे रखा था। उसी में वह रहते थे। पहचान की दृष्टि से लोग उन्हें **मोटे गणेश वाले महाराज** कहते थे। उनका मन्दिर से कोई लेना-देना नहीं था। न आप पुजारी थे, और न ही महन्त थे।

का कोई ठिकाना नहीं है। तो एक घण्टे में ही निर्णय करके त्याग पत्र लिख दिया। जो बड़ा अधिकारी था, उसने कहा कि अरे! तुम्हारा दिमाग तो ठीक है, पागल हो गए हो क्या? अंग्रेजी शासन में हिन्दुओं को बड़ा पद नहीं मिलता है। इतने बड़े पद से रिजाइन (इस्तीफा) दे रहे हो क्या बात है?

आप कुछ बोले ही नहीं। फिर कहा, श्रीमान् जी! बस आप इसको स्वीकार कर लो अब हम लौट के नहीं आएँगे। अपनी गृहिणी से भी कह दिया कि मकान, जमीन, जायदाद सब तुम रखो हमको छुट्टी देओ। हम तो अब भजन ही करेंगे, भगवान् ने जिस काम के लिए हमें मनुष्य बनाया है हम तो अब वही करेंगे। दूसरा काम करना ही नहीं, निश्चय कर लिया। गृहिणी भी ऐसी थी, पण्डित जी वशिष्ठ थे तो गृहिणी अरुन्धती थी। वह भी महान् सती थी, महान् पतिव्रता और सर्वथा उनके अनुकूल रहने वाली। उसने कहा कि परमार्थ में अकेले आपका अधिकार है क्या? मैंने आपके चिन्तन में, भजन में, साधन में कभी कोई विक्षेप उत्पन्न किया हो, आपके प्रतिकूल कोई व्यवहार किया हो, हम आपके लिए बाधक हों तब तो आप अपने से पृथक् करें, नहीं तो हम इस सम्पत्ति को लेकर क्या करेंगे?

अरे! हमारा परिणय आपसे हुआ है, न कि मकान, दुकान, जायदाद से हुआ है। तो बिना अपराध मेरा त्याग क्यों? मैं भी भजन करूँगी। बोले, तुम कहोगी अमुक चीज लाओ तमुक चीज लाओ, मैं तो अकेला भूखा, प्यासा कैसे भी रह लूँगा। तब उन्होंने प्रतिज्ञा की कि शरीर संसार के निर्वाह की भूलकर भी मैं एक बात नहीं कहूँगी। मैं चाहे भिक्षा माँगकर अपने शरीर की और आपके शरीर की रक्षा करूँगी पर मैं संसारी बात नहीं कहूँगी। तब आप दोनों युवावस्था में ही वृन्दावन आ गए। माता जी अच्छे परिवार से थीं जो कुछ उनके पास सोना, चाँदी रुपया पैसा था वह सब ले आयीं। धीरे-धीरे खर्च करके उन्होंने निर्वाह किया। माँगना भी किसी से नहीं पड़ा। महाराज जी अन्तिम क्षणों तक एक ही रहनी से रहे।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

इसका जीता जागता उदाहरण थे वे, क्योंकि संसार की प्रवृत्ति थी ही नहीं उनमें। आपको सुनकर आश्चर्य होगा, कई साधकों को उन्होंने भगवत् साक्षात्कार कराया। विचित्र-विचित्र प्रकार के उनके व्रत भी अलग-अलग थे। मानस जी का पाठ किया तो एक दिन भरत व्रत का मन आ गया तो भरतभाव को स्वीकार कर लिया कि रामजी वन चले गए हैं और हम नन्दगाँव में रहते हैं। तीन बजे यमुनाजी में नहा लेते और बस रोते रहते, कुशा बिछाकर भूमि पर शयन करते और जिस पद्धति से चौदह वर्ष तक श्रीराम वन में रहे उसी पद्धति से रहे। वह भी अहर्निश राम-नाम जपते रहते। उन्हें विस्मृति ही हो गयी कि मैं अमुक हूँ, इतना सिद्ध भाव उनको रहा।

2. भावावेश में अयोध्या जाकर सरयू स्नान

एक बार की तो ऐसी विचित्र घटना है महाराज जी मानस जी का पाठ कर रहे थे। भगवत् दर्शन की व्याकुलता थी और मानस जी में आया कि–

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरयू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं वासा॥

यह सुनकर उछल पड़े। धोती पहने बैठे थे शरीर पर उत्तरीय भी नहीं था और गृहिणी को बताए बिना सीधे आसन से उठे, पोथी को भी बन्द नहीं किया। बोले, अरे वाह! भगवान् से मिलने की बात इसमें आ गयी है। चलो भगवान् से मिलने अयोध्या जाते हैं पर भरतभाव की प्रबलता के कारण ऐसी चमत्कृति हुई कि बिना किसी साधन के सदेह वे दूसरे ही क्षण में सरयू के तट पर पहुँच गए। ये भाव की दिव्यता है कि अयोध्या में पहुँच गए और सरयू जी को साष्टांग प्रणाम किया, सरयूजी में स्नान किया और स्नान करके विचार किया।

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं वासा॥

गोता लगाकर बाहर निकले। बोले, भगवान् तो मिले नहीं बाहर निकलने के पश्चात् उन्होंने देखा श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों लालजी सरयूजी में हैं और एक-दूसरे के ऊपर जल उलीच रहे, उछाल रहे हैं। माने भगवान् की लीला का अनुभव हो गया। चारों लाल जी उनको मिल गए, अयोध्या जी में। ठाकुरजी ने हृदय से लगाया और दूसरे ही क्षण में वे देखते हैं कि अपने आसन पर बैठे हैं। वे सरयू जी से निकले थे इसलिये उनकी जो धोती थी उससे जल निचुड़ रहा था। तो उनकी गृहिणी ने आकर के पूछा ये पानी कैसे बह रहा है यहाँ? तब उन्होंने कहा हम तो सरयूजी में नहाकर तथा रामजी से मिलकर आ रहे हैं।

3. गोस्वामी तुलसी दास जी का प्रत्यक्ष सत्संग

एकबार उनके पास हम गए, वह खटिया पर बैठे हुए थे, उस समय उनकी आयु नब्बे वर्ष के ऊपर रही होगी। लगातार नेत्रों से अश्रुधार बह रही थी। तो हम समझ गए कि किसी विलक्षण भावराज्य की लीला में वे हैं। थोड़ी देर बैठे, फिर पूछा महाराज जी! क्या हुआ? तो उन्होंने कहा अरे! बहुत दिनों से भगवान् की कथा सुनने की इच्छा हो रही थी तो अभी-अभी तुलसीदास जी आए थे। इसी खटिया पर बैठकर एक घण्टा राम कथा सुनाकर गए हैं और अमुक प्रसंग सुनाया है। उसी का चिन्तन करके हृदय में बार-बार भाव तरंगें उठ रही हैं। ऐसे थे वह विलक्षण महात्मा।

4. सत्य व्रत का पालन

उनके सामने कोई झूठ बोल नहीं सकता। तुरन्त बोल देते तुम झूठ बोल रहे हो, निकल जाओ यहाँ से। बड़े-बड़े महात्माओं को ऐसा फटकारते थे कि कई बार लोग उनकी बुराई कर देते। अरे देखो! गृहस्थी होकर साधुओं में बिल्कुल श्रद्धा नहीं रखता। लेकिन सच्चाई थी उनके जीवन में। तो ये बात हमने इसलिए बताई कि जिसमें आपको उनकी बात पर विशेष श्रद्धा जग जाय।

5. भजन करने के तीन सूत्र

वृन्दावन में एक जगह मेरी कथा हो रही थी। किसी ने आकर हमसे कहा कि आप मोटे गणेश महाराज जी का नाम कभी-कभी लेते हो, वे इस समय बहुत अस्वस्थ हैं तो हम कथा के बाद उनके पास गए। मैंने उनको प्रणाम किया। हाथ पैर पर सूजन थी, थोड़ी मुख पर भी सूजन थी। ऐसा लगता था अब शरीर ज्यादा दिन रहेगा नहीं लेकिन बैठे थे सावधान और माताजी भी अस्वस्थ थीं वो दूसरे कमरे में बैठी थीं। मैंने प्रणाम किया और प्रणाम करके पूछा महाराज जी! स्वास्थ्य कैसा है आपका? आप स्वस्थ तो हैं? तो उन्होंने नेत्र खोले और नेत्र खोलकर उत्तर क्या दिया? बोले स्वामी जी भजन के तीन ही सूत्र हैं। उनके शब्द हम दुहरा रहे हैं।

श्रीकृष्ण के बनकर, श्रीकृष्ण के लिए, श्रीकृष्ण का भजन करो।

पूरा भजन का सिद्धान्त इन तीन सूत्रों में सिमटा हुआ है। ऐसा कह करके फिर नेत्र बन्द कर लिए। थोड़ी देर बाद फिर हमने पूछा महाराज! दवाई ले रहे हैं? तबियत अच्छी है? सूजन हो रही है? बोले अरे भाई देखो, बार-बार क्या वही बात पूछनी। देखो यदि भगवान् के नहीं बनोगे, शरीर संसार से संबंध जोड़कर रखोगे तो तुम्हारा भजन शरीर संसार में व्यभिचरित होता चला जाएगा। इसलिए सबसे **पहले शरीर संसार की आसक्ति के बन्धन का विच्छेद करो और हम केवल भगवान् के हैं ये बात स्वीकार करो।**

इसलिए पहली शर्त है श्रीकृष्ण के बनकर रहो। बोले भजन तो बहुत लोग करते हैं। बेटा के लिए, बेटी के लिए, पत्नी के लिए, धन के लिए, मकान, दुकान के लिए, व्यापार के लिए। नहीं! श्रीकृष्ण के लिए। भजन का प्रयोजन भी उनके चरण कमलों की प्राप्ति के लिए होना चाहिए और भजन भी उन्हीं का करो। अन्य का आश्रय लोगे तो बोले—

प्रेम गली अति साँकरी यामें द्वै न समाँय।

दूसरा आएगा तो वह बाधक ही बनेगा। वह साधक नहीं होगा। फिर

जेष्ठ पुरिमा

मौन हो गए। लगभग आधा-पौन घण्टे हम बैठे होंगे। अन्त में फिर मैंने एक बार पूछा कि आप आज्ञा करें कहीं आपको हॉस्पिटल ले चलें; डाक्टर को बुलावें, कोई सेवा बतायें। आपका स्वस्थ होना बहुत आवश्यक है। फिर उन्होंने कहा, अरे! एक ही बात बार-बार तुमको समझाते हैं, तुम्हारी समझ में नहीं आती है। **श्रीकृष्ण के बनकर, श्रीकृष्ण के लिए, श्रीकृष्ण का भजन करो और एक बात पक्की कर लो पाँडे तुम्हें द्वारका जानो है।** अर्थात् तुमको इधर-उधर भटकना नहीं श्रीकृष्ण के चरणों में पहुँचना है। ये भीतर से पक्का कर लो।

हम समझ गए कि इनकी देह में स्थिति बिल्कुल नहीं है। ये जहाँ चिन्तन है वहीं से बोल रहे हैं। तो फिर हम प्रणाम करके चले आए। फिर हमें कहीं राजस्थान में जाना था। एक सप्ताह बाद लौट के आए तो पता चला कि उनका शरीर पूरा हुआ। गंगा दशहरा के दिन उनका शरीर पूरा हुआ और फिर एकादशी को उनके संस्कार में यमुनाजी के तट पर हम सम्मिलित भी हो गए।

तो भैया! कहने का मतलब यह है कि भगवत् सम्बन्ध दृढ़ हो **हम केवल भगवान् के ही हैं और केवल भगवान् ही हमारे हैं।** अब प्रश्न उठा ये संसार किसलिए है? जब न हम शरीर हैं और न हमारा संसार है तो भगवान् ने ये चक्कर पीछे लगाया ही क्यों? देखो सच्ची बात यह है कि शरीर संसार भी भगवद् भक्ति में बाधक नहीं है। ये भी बड़ा उपयोगी है। यह उपयोगी न होता तो भगवान् हमको देते ही क्यों? अरे सामान्य संसार का पिता भी अपनी संतान को उत्तमोत्तम वस्तु ही देना चाहता है, व्यर्थ की चीज नहीं देना चाहता है। तो वात्सल्य गुण के समुद्र भगवान् हमको फँसाने वाली बेकार की चीज क्यों देंगे?

भगवान् ने शरीर और संसार अपनी प्राप्ति के लिए हमको दिया है सेवा के लिए, भजन के लिए दिया है। तो जब शरीर संसार को हम भगवान् की

उपासना का साधन न मानकर भोग का साधन मानते हैं, तो ये बाधक हो जाते हैं और जब इनको उपासना सामग्री के रूप में स्वीकार करते हैं तो ये साधन बन जाते हैं।

6. आपके पास अध्यात्म पूँजी कितनी है?

हमारे वृन्दावन में एक बहुत अच्छे सन्त थे— पूज्य श्रीदुर्गाप्रसाद जी महाराज। बहुत अच्छे नाम-जापक सन्त थे। कई बार भगवान् का अनुभव उन्हें हुआ। कोई साधक उनके निकट जाता तो महात्माओं से कड़वा ज्यादा बोलते थे और उनके कड़वा बोलने में भी उनके भीतर प्रेम छिपा रहता था। कड़वा इसलिए बोलते कि, भाई! क्यों इधर-उधर लगे हो, भजन में लग जाओ। जब कोई व्यक्ति साधन सम्बन्धी बात करने आता तो एक ही बात कहते थे, **"जेब में फूट कौड़ी नहीं है बात करोड़ों की करते हो, धक्के खाओगे, मिलेगा कुछ भी नहीं।"**

वे कहते थे कोई व्यापारियों के बीच में बैठकर करोड़ों की बात करने लग जाय और जेब में फूटी कौड़ी न हो तो क्या होगा? व्यापारी कहेंगे कोई सिरफिरा आ गया है। तो वह व्यवसायी धक्का देकर उसको भगा देंगे। वे यह कहा करते थे कि यदि आपके पास, सत्संग की पूँजी, नाम जप की पूँजी है तो बात करो, भजन करो नहीं तो केवल बात करके हमारा समय खराब करोगे तो हमारे पास समय नहीं। जो आता उसको पहले कहते कि भाई! कुछ नियम ले लो, कोई व्रत ले लो, नित्य यमुना स्नान का, नित्य बिहारीजी के दर्शन का, इतना जप करने का। तब हमारे पास आओ।

प्रत्यक्ष घटना

उनके निकट एक संन्यासी महात्मा आए। उन्होंने कहा महाराज जी हमने सुना है आप भगवत्प्राप्ति की बात बताते हैं? तो उनसे भी महाराजजी ने यही कहा तुम्हारे पास पूँजी क्या है? बोले महाराज! पूँजी कुछ नहीं है, दो चीजें हमारे पास हैं। क्या? **मैं सदा-सर्वदा सत्य बोलता हूँ** और मैंने अब

तक अपनी जान में **ब्रह्मचर्य को नष्ट नहीं किया है।** मैं सावधान होकर ब्रह्मचर्य का पालन करता हूँ— ये दो बातें मेरे पास हैं। इसके अलावा मेरे पास कोई पूँजी नहीं है।

इतना सुनते ही महाराजजी प्रसन्नता से उछल पड़े। बोले अरे! **इस कलियुग में इतनी बड़ी पूँजी लेकर बैठा है, कहता है कुछ नहीं है, तेरा काम तो बना बनाया है।**

वे बोले फिर क्या करें? महाराज बोले— 1. असंग हो जाओ, 2. मौन हो करके सवा लक्ष नाम का नित्य जप करो, 3. नित्य श्रीयमुनाजी का स्नान करो और 4. श्रीबिहारी जी का दर्शन करो। काम बन जाएगा।

कितने दिन में? इतने प्रसन्न हुए बोले चार महीने में। इसके बाद वे सन्त भजन में लग गए, तीसरे महीने में ही बिहारीजी के दर्शन करके आ रहे थे तो राधारमण मन्दिर के सामने जो गोल रासमण्डल बना है इस रासमण्डल पर उन्हें रात में महारास का दर्शन हो गया। इसके बाद वे मौन हो गए। रोते-रोते महाराज जी के पास आये। तो महाराजजी ने उनसे पूछा, स्वामी जी क्यों रो रहे हो, काम बना? बोले हाँ, महाराज काम बन गया।

काम बन गया तो इस बात को अपने में छिपाकर उन्मुक्त भाव से विचरण करो। चार महीने का नियम दिया है एक महीने का और नियम पूरा करो। न तो उन सन्त ने इस अनुभव को किसी को बताया, न महाराज ने किसी को बताया। चार महीने पूरे करके जब वे महात्मा चले गए तब महाराजजी ने कहा वे महात्मा आए थे, तीसरे महीने में ही उनका काम बन गया और वे चले गये।

तो कहने का तात्पर्य यही है कि जो सन्तों से हमने सुना है उसके मूल में सार यही है कि मूल में जो पूँजी है वह यही है- सत्संग की पूँजी। सत्संग का फल क्या है? अनन्य निष्ठापूर्वक, दृढ़तापूर्वक भगवान् के शरणापन्न होकर भगवान् के भजन में लग जाना— यही सत्संग का फल है।

श्रीपरमहंस जी द्वारा
प्रस्तुत 12 संस्मरण

संस्मरण-1 : अचाह

महाराज जी कभी किसी से कुछ माँगते नहीं थे। यहाँ तक कि कोई देना चाहता वह भी स्वीकार नहीं करते थे। एक बार महाराजजी के पिता जी गाँव से वृन्दावन आये। साथ में बहुमूल्य आभूषण, हीरा जवाहरात लाये। महाराज जी से कहा यह सब तुम्हारे लिए लाये हैं। इससे अपना गृह खर्च चलाइये। महाराज जी ने कहा, पिता जी हमें कुछ नहीं चाहिए। गृहत्याग के समय ही मैंने सब कुछ छोड़ दिया था। कुछ स्वीकार नहीं किया।

दोहा- जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥131॥

श्रीरामचरितमानस में उल्लिखित दोहा महर्षि **वाल्मीकि जी** के वचनों की पुष्टि करता है।

संस्मरण-2 : अनासक्ति

महाराजजी के बड़े भाई पोस्ट ऑफिस में नौकरी करते थे। जब वह श्रीधाम वृन्दावन आये तो महाराजजी को गृह खर्च, जीवन निर्वाह के लिए अच्छी खासी धनराशि सहर्ष देने लगे। महाराज जी ने कहा भाई, आप को बहुत-बहुत धन्यवाद। हमारी जीवनचर्या सुचारु रूप से चल रही है हमें कुछ नहीं चाहिए। यह त्याग का जीता जागता उदाहरण है।

संस्मरण-3 : सत्य-निष्ठा

महाराजजी रेलवे विभाग में अधिकारी थे। निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे। मालगाड़ी से माल आता-जाता था कुछ कर्मचारी आपस में मंत्रणा करके माल गायब कर देते तथा आपस में पैसे बाँट लेते थे। महाराजजी इन सब कुकृत्यों से दूर, सत्य निष्ठ थे इसलिए वह उसमें सम्मलित नहीं होते।

बेईमान कर्मचारियों ने एकबार षड्यंत्र रचकर एक बहुत बड़ा कीमती पार्सल चलती गाड़ी से नीचे गिरा दिया। इसकी भनक महाराजजी के कानों में पड़ी। उन्होंने उस सामान को उठवाकर सरकारी गोदाम में जमा करवा दिया तथा सम्बन्धित अधिकारियों को सूचना भी दे दी कि अमुक सामान गाड़ी से रास्ते में गिरा मिला। ऐसी थी महाराज जी की सत्यनिष्ठा।

रेलवे विभाग में भ्रष्टाचार व्याप्त था। अतः महाराजजी रेलवे विभाग को **'चोर महकमा'** कहते थे।

संस्मरण-4 : श्रीकृष्ण द्वारा भोजन व्यवस्था

एक बार की बात है। दोपहर में महाराज जी का प्रसाद पाने का समय हो गया। वह प्रसाद पाने बैठे और अचानक ही उनके अन्दर उन्माद उठा और वह उठकर बस-स्टेशन की ओर चल दिए। बरसात का मौसम था। भादों का महीना था। वह बस में बैठ कर गिरिराज जी की तरफ चले गए। गिरिराजजी से चलकर जब दानघाटी पहुँचे तब शाम हो गई थी। वहाँ से पैदल चले, आन्यौर की तरफ परिक्रमा मार्ग से। उस समय परिक्रमा मार्ग पर बहुत बालू (रेत) रहती थी और पैर बालू में धँस जाते थे। जहाँ तहाँ मुर्दों की भस्म पड़ी रहती थी। मार्ग में खूब गढ्ढे थे और बारिश की वजह से उन गहरे गढ्ढों में पानी भी भरा रहता था। आन्यौर के आगे जाकर अँधेरा हो गया तो महाराज जी वहाँ एक झाड़ी में बैठ गए। गिरिराज जी की तलहटी थी और घनघोर अंधेरा था इसलिए अब आगे कहीं नहीं जा सकते थे।

इतनी देर में एक बालक आया और महाराज जी से बोला, 'क्या तू भूखा है?' "महाराज जी ने प्रत्युत्तर दिया कि तुझसे क्या मतलब? वह बालक हँसते हुए फिर बोला, मैं जानता हूँ कि तू भूखा है। अच्छा ठहर! इतना कहकर बालक वहाँ से चला गया और थोड़ी देर में "गरम-गरम पूड़ी, साग और हलुवा लेकर आया और साथ में पीने का स्वच्छ जल भी।" महाराज जी को यह सब देते हुए बोला कि तू यह प्रसाद पा ले और पाकर चल तुझे सोने की अच्छी जगह बताता हूँ। महाराज जी ने भोजन पाया, जल पिया और फिर बालक की ओर देखा। बालक बोला कि देख यहाँ जंगल है। यहाँ हिंसक पशु भी आते हैं। मैं जो जगह दिखाऊँ, वहीं सो जाना। बालक उनको लेकर एक स्थान पर गया और देखा कि एक पत्थर है गुफा के मार्ग पर। वह पत्थर हटाया तो अन्दर महाराज जी क्या देखते हैं कि गुफा में प्रकाश था। दोनों गुफा के अन्दर घुसे तो देखा कि दो पलंग वहाँ बिछे हुए थे।

बालक ने एक की ओर इशारा करते हुए कहा, इस पलंग पर तू लेट जा। जंगल का मामला है दरवाजा अन्दर से बन्द कर ले। कोई कितना भी खटखटाए, तू खोलना मत। इतना कहकर बालक चला गया। महाराज जी गुफा का दरवाजा बन्द करके लेट गए और सो गए। भोर में जब महाराज जी जगे उनकी निद्रा खुली तो क्या देखते हैं कि दूसरे पलंग पर वही बालक सोया हुआ है। वह सोचने लगे, हमने तो दरवाजा खोला नहीं, यह अन्दर कैसे आ गया? इतना कहकर महाराज जी कुछ विचार में पड़ गए। थोड़ी देर में देखते हैं कि बालक भी जाग गया और बालक उनसे बोला, "चलो मैं तुम्हें गोवर्धन के बस स्टैंड तक का रास्ता दिखा देता हूँ।" बालक उनको लेकर के गोवर्धन के बस अड्डे तक आया और बस में बिठा दिया। तब महाराज जी का यह विचार हुआ कि यह कौन था? तो देखा तो बालक वहाँ था ही नहीं। महाराज जी मन ही मन मुस्कुराते हुए सारी लीला जान गए। वह उनका दादा कन्हैया ही था।

संस्मरण-5 : गोपियों का साक्षात् दर्शन

श्रीमहाराज जी ने ग्यारह वर्ष तक नियम से यमुना जी का स्नान किया। एक बार महाराज जी ने मुझको बताया कि जब वह यमुना स्नान करके लौट रहे थे तो उनके मन में भाव आया कि दादा हमने तेरी गोपियों का दर्शन कभी नहीं किया? महाराज जी सखा भाव से रहते थे तो कन्हैया को याद करते हुए बोले कि हमने तेरी गोपियों को कभी नहीं देखा। वह रास्ते में आ ही रहे थे कि समीप की झाड़ियों से हँसने की आवाज आई और महाराज जी क्या देखते हैं कि गोपियाँ प्रेम से, मधुरता से खूब हँसी-ठिठोली करती हुई ठाकुर जी के गाल पर चपत लगा रही हैं। यह देखकर महाराज जी हँसने लगे और तुरन्त ही बोले, "**दादा! हमने तेरी गोपियों का दर्शन कर लिया।**"

संस्मरण-6 : श्रीजी के भोग प्रसाद की प्राप्ति

महाराजजी की बरसाना यात्रा का एक संस्मरण सुनाते हुए परमहंस जी ने कहा कि एक बार महाराज जी बरसाना यात्रा पर थे। जब वह गहवर कुंड पर बैठकर कुंड का दर्शन कर रहे थे, अचानक उनके मन में यह भाव उठा कि श्रीजी हम तो तुम्हारे यहाँ आ गए लेकिन तुम्हारे दर्शन हमको नहीं हुए। थोड़ी देर में देखते क्या हैं कि चिकसौली गाँव की तरफ से हरी साड़ी पहने हुए कई सखियों के साथ परिक्रमा मार्ग से होते हुए श्रीजी मन्दिर की तरफ जा रही हैं। यह देखते ही तुरन्त उनके मन में आया कि श्रीजी आपके दर्शन हो गए।

वहाँ से चलकर जब वह मन्दिर दर्शन के लिए गए, तो एक सेवादार ने उनसे कहा, पंखा डुलाने की सेवा करोगे? पंखा खींचोगे श्रीजी का? तो महाराज जी तुनककर बोले कि हम क्यों पंखा करें? हम जिसके यहाँ आए हैं उसे हमारे ऊपर पंखा करना चाहिए। यह सुनकर वहाँ पर जो आसपास लोग थे, वे थोड़ा गुस्से में आ गए और आँखें लाल-पीली करते हुए उन्हें देखने लगे। लेकिन उसी समय महल के एक कोने में एक महापुरुष खड़े थे। वे

लोगों को शांत करते हुए बोले, क्या तुम सब जानते नहीं कि वह सखा भाव में रहता है? नन्दगाँव को अपना गाँव कहता है इसलिए वह ऐसी बात कर रहा है। वह यहाँ पर मेहमान हैं अतः श्रीजी उसकी सेवा करेंगी। वह श्रीजी की सेवा क्यों करे?

महाराजजी तो वहाँ से उठकर चल दिए और पीली पोखर पर हरगूलाल जी की धर्मशाला में अपने कमरे में आ गए। माताजी, (महाराज जी की पत्नी) ने उनसे कहा चलो कुछ खाने-पीने का इंतजाम किया जाय। तो वह माताजी से बोले, हम क्यों करें? हम जिसके मेहमान हैं, वह ही हमारे खाने-पीने की व्यवस्था भी करेगा। थोड़ी देर में धर्मशाला का मैनेजर एक टोकरी में प्रसाद लेकर आया और महाराजजी से बोला महाराजजी! यह आपके लिए महल से प्रसाद आया है। प्रसाद इतना अधिक था कि सब लोगों ने शाम को तथा रात को वह प्रसाद पाया फिर भी अगले दिन के लिए भी बच गया।

संस्मरण-7 : भगवान् के लिए कोई युग बाधक नहीं

महाराजजी कहा करते थे कि लोग ऐसा कहते हैं कि कलियुग में भगवान् नहीं मिलते, लेकिन सत्य यह है कि भगवान् के लिए कोई भी युग बाधक नहीं है। वह जब चाहें, जहाँ चाहें, जैसे चाहें, जिस युग में चाहें, जिससे चाहें उससे मिल सकते हैं और मिलते हैं। महाराजजी कहते थे कि अकबर के शासनकाल में जैसे गंगा-यमुना में बाढ़ आती है न बरसात में, वैसे ही भगवत् प्राप्त सिद्ध महापुरुषों की बाढ़ आई। महाराजजी आगे स्पष्ट करते हैं कि **महात्मा वह नहीं होता जो गेरुए वस्त्रों में वेश बनाकर रहे। महात्मा वह होता है जो भगवान् को प्राप्त कर ले तथा औरों को भी करा सके। महात्मा न गृहस्थ हैं, न विरक्त हैं।**

महाराज जी कहते थे कि सबसे सुलभ काम है दुनिया में भगवान् को प्राप्त करना, क्योंकि इसके लिए सिर्फ अन्दर से जिज्ञासा होनी चाहिए, अमिट

जिज्ञासा होनी चाहिए और कुछ नहीं चाहिए। केवल यह जिज्ञासा होना कि हमको भगवान् से मिलना है, इसी जन्म में मिलना है, इसी शरीर में मिलना है और इसी शरीर में प्राण के रहते हुए ही मिलना है। बस इतना ही काफी है।

संस्मरण-8 : कृष्ण-बलराम का दर्शन गोचारण करते हुये

महाराज जी एकबार बरसाना से नन्दगाँव जा रहे थे। कुछ एक मील का फासला रहा होगा। महाराज जी के मन में आया कि दादा, हमने तेरी गायों के दर्शन नहीं किए। इतना कहकर वह पैदल ही आगे बढ़ते चले जा रहे थे। थोड़ी देर में सामने से क्या देखते हैं कि गायों का एक झुंड चला आ रहा है। काले, पीले, भूरे, सफेद अनेक रंगों की गायें घर लौट रही हैं। और उसके पीछे-पीछे श्रीकृष्ण और बलराम गैया चराते हुए चले आ रहे हैं।

संस्मरण-9 : कान्ती नामक शिष्या को जीवनदान

परमहंस जी एक और विलक्षण अनुभव बताते हुए कहते हैं, कान्ती नाम की महाराज जी की एक शिष्या थी, एकबार वह कार्तिक के महीने में भैया दूज के दिन स्नान करके आई और उसके बाद गंभीर रूप से बीमार पड़ गई। रोज उनको देखने डॉक्टर आता था और दवाई देकर के चला जाता था। ऐसा लग रहा था कि अब कान्ती देवी के प्राणों की रक्षा नहीं हो पाएगी। उसी समय महाराज जी की धर्मपत्नी 'माताजी' ने और उनके छोटे बेटे गोविन्द शरण ने, जिसको वह बाल सखा कहते थे, उन दोनों ने कहा कि कान्ती जानी नहीं चाहिए। महाराज जी ने कहा, ठीक है! हम आज से इसकी सँभाल करेंगे।

कान्तीदेवी आगे अपना अनुभव बताते हुए बोलीं कि उस रात वह चारपाई पर लेटी थी। अचानक उनको ऐसा लगा कि उनके सिरहाने जैसे हजारों वॉट का बल्ब जल रहा हो, ऐसा प्रकाश हुआ। उस प्रकाश में मुझे राधा और कृष्ण युगल स्वरूप के दर्शन हुए। उनको देखते ही कान्तीदेवी बोली, प्रभु! अब मुझे उठा लो, वेदना सही नहीं जाती। तो ठाकुर जी बोले,

तथा श्रीजी भी बोलीं कि हम लोग कोई स्वतंत्र थोड़े हैं। हम तो भक्तों के अधीन हैं। भक्त की इच्छा नहीं है तो तुम्हें कैसे ले चलूँ? बस इतना कहा और वह सारा दृश्य अन्तर्धान हो गया। उसके बाद ही कान्तीदेवी स्वस्थ हो गईं। फिर बहुत वर्षों तक बिना किसी बीमारी के जीवित रहीं।

संस्मरण-10 : कन्हैया द्वारा दिव्य जल की प्राप्ति

एकबार महाराज जी मीराबाई के दर्शन हेतु मेड़ता गये थे। दर्शन करके मन्दिर से बाहर निकले। प्यास लगी थी लेकिन वहाँ कोई पानी की व्यवस्था नहीं थी। महाराज जी मीराबाई को उलाहना देने लगे। हम आपके यहाँ आये और प्यासे रह गये।

इतने में एक दृश्य दिखाई दिया कि एक प्याऊ है उस पर एक बालक पानी पिला रहा है। महाराज जी ने जाकर पानी पिया ऐसा दिव्य शीतल सुगंधित पानी (जल) उन्होंने अपने जीवन में कभी नहीं पिया था।

वहाँ से रेलवे स्टेशन जाना था। गाड़ी आने के समय में काफी देरी थी। सोचा कि चलो दुबारा पानी पी लें। उस जगह जाकर देखा न प्याऊ था, न बालक दोनों गायब। किसी से पूछा कि यहाँ प्याऊ था कहाँ चला गया। उत्तर मिला यहाँ कभी कोई प्याऊ नहीं था। यहाँ पीने के लिए घी मिल सकता है पानी नहीं, मीरा बाई की कृपा से कन्हैया जी के दर्शन हो गये।

संस्मरण-11 : साधक को रास का प्रत्यक्ष दर्शन

महाराज जी तोष सखा के अवतार थे। वह प्रायः साधक को उसी की प्रणाली के अनुसार सवा लाख नाम जप करने का आदेश देते थे और कहते थे कि यह संकल्प करो कि मैं मन, वाणी और कर्म से सत्य का पालन करते हुए जप करूँगा। अनुष्ठान शुरु करने से पहले हमें बता देना।

सीतारामदास नाम के एक साधक महाराज जी के पास आये और बोले, 'मुझे परमहंसजी की तरह बना दीजिए।' महाराजजी ने सवा लाख नाम प्रतिदिन जपने को कहा। उन्होंने कहा, महाराजजी! मैं जप करता हूँ परन्तु संख्या भूल जाता हूँ। महाराज जी ने कहा गिनती के लिए कंकड़ रख लो।

उन्होंने कहा गिनती करने की याद ही नहीं रहती। तब महाराज जी ने कहा, कोई बात नहीं, जप करते रहो। आज जप करने का दसवाँ दिन था। महाराज जी, सीताराम दास तथा हम बिहारी जी के दर्शन करके बाहर निकले। हरगूलाल धर्मशाला की तरफ से बिहार घाट आए, वहाँ से जय सिंह घेरा होते हुए राधारमण जी के मन्दिर के सामने चबूतरे के पास जहाँ हैण्ड पम्प लगा था आए। महाराज जी हमसे बोले दोपहर हो चुकी है एक बजने वाला है। जाकर पंगत करो। मैं वहाँ से चला आया। सीताराम दास जी को वहीं पर रास के प्रत्यक्ष दर्शन कराये। दर्शन करके उनके अष्ट सात्विक भावों का संचरण हुआ। नव दिन तक वह उसी मुद्रा में भाव-विभोर रहे।

संस्मरण-12 : नन्द का लाला कन्हैया वापस नहीं आया

एकबार महाराजजी पल्सों (परसों) नाम के गाँव गये। वहाँ एक वृद्ध व्यक्ति महाराजजी को मिला। महाराजजी ने उत्सुकतावश उससे पूछा, इस गाँव का नाम पल्सों क्यों पड़ा? यह सुनकर वह व्यक्ति रोने लगा। रोते-रोते उसका गला अवरुद्ध हो गया। महाराज जी ने समझा कि मेरी वजह से इसको कष्ट हुआ है यह सोचकर महाराजजी बड़े व्याकुल हो गये। कुछ समय बाद वह व्यक्ति जब सामान्य दशा में आया तब उसने बतलाया नन्द के लाला कन्हैया ने जाते समय यह आश्वसान दिया था कि मैं परसों वापस आ जाऊँगा। वह बेदर्दी अभी तक नहीं आया। उसी के विरह में रोना आता है।

अबहुँ न आई वह बैरिन परसों।
बीत गए न जाने कितनी बरसों॥

इति शुभम्।

परमपूज्य सद्गृहस्थ सन्त श्रीदुर्गाप्रसाद जी महाराज के सुपौत्र श्रीश्यामदत्त चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत 6 संस्मरण

संस्मरण-1 : यमुना मैया की कृपा से कन्हैया का दर्शन

वर्ष 1996 की बात है। मैं अपनी दादी के पास बैठा था। मैं और दादी बात कर रहे थे, पूजनीय दादाजी के बारे में। दादी ने बताया कि तेरे बाबा जी साधन काल में बहुत व्याकुल रहा करते थे। व्याकुलता प्रभु की खोज की थी, भगवान् से मिलने की तड़प थी। इतनी बैचेनी थी कि रात-दिन का होश ही नहीं रहता था। बाबा का नियम था कि प्रात: 4 बजे उठ जाते थे। यमुना स्नान नित्य करते थे। जब साधन काल चलता तो समय का कोई भान ही नहीं रहता था। दादी ने बताया कि तेरे बाबा जी का काम यमुना मैया ने ही किया था। जब तेरे बाबा जी को जप, तप, पूजा-पाठ, अध्ययन-स्वाध्याय इत्यादि सारे नियम करके भी कोई अनुभव नहीं हुआ तो व्याकुलता—पागलपन बढ़ गया। बहुत पागलपन कृष्ण से मिलने का, व्याकुलता कृष्ण से मिलने की।

रात को 4 बजे उठ जाया करते थे। रोते-चिल्लाते-हाय-हाय करते, हे कृष्ण! कब मिलोगे? रोज यमुना स्नान शुरू किया। आँधी-तूफान कुछ भी आये पर उनको स्नान करने जाना ही है। उस समय वृन्दावन में चारों ओर जंगल ही जंगल था। टूटी गड्ढे वाली पगडंडियाँ व रास्ते थे, सड़कें नहीं थीं। ये बात होगी कोई सन् 1940 के लगभग की। तब के वृन्दावन और आज के वृन्दावन में जमीन आसमान का अन्तर है। सुबह 2 बजे चारों ओर अँधेरा रहता था। यमुना स्नान इसलिये शुरु किया कि यमुना जी भगवान् श्रीकृष्ण

की चतुर्थ पटरानी हैं। अब बाबा जी नित्य स्नान करते और यमुना जी से प्रार्थना करते कि, हे माँ! कन्हैया तो तेरी हर बात मानता है। अगर आप उनसे कहेंगी तो दादा मना थोड़े ही करेगा। तू मेरी माँ है, मैं तेरी गोदी में रोज आता हूँ। क्या आप मेरा काम नहीं करोगी? अब तो यह रोज का नियम हो गया था यमुना स्नान का, माँ से प्रार्थना करने का, उनके आगे रोने का धीरे-धीरे यह क्रम बढ़ता ही चला गया। रात-दिन कृष्ण का चिन्तन और यमुना जी से प्रार्थना।

एक बार दादाजी 4 बजे प्रात: की जगह 2 बजे ही उठ गये। उनको लगा कि 4 बज गये हैं। अब क्या यमुना स्नान की ललक जो थी। आँधी तूफान चल रहा था, बारिश हो रही थी और बाबा चल दिये। अम्मा ने रोका, अरे कहाँ जा रहे हो? आप आँधी, तूफान, बारिश और अँधेरे में। बाबा ने कहा स्नान का समय हो गया है।

अब बाबा निकल गये, बाबा अँधेरे में चलते जा रहे थे तभी पीछे से एक प्रकाश बराबर चल रहा था और बाबा अपनी धुन में चले जा रहे थे। यमुना जी पहुँच गये, स्नान किया और घर वापिस चल दिये। पीछे-पीछे वही टार्च का सा प्रकाश भी चल रहा था। बाबा जब घर आये तो अम्मा बोली अरे आप स्नान कर आये क्या? आप इतने अँधेरे में स्नान कैसे कर आये? अभी तो 4 बजे हैं। लगता है आप 2 बजे ही निकल गये। बाबा बोले, अरे अँधेरा कहाँ था। एक टार्च का प्रकाश मेरे साथ चल रहा था। यह कहते ही बाबा बोले, अरे यह क्या इतनी रात में अँधेरे में, बारिश में, तूफान में यह प्रकाश लेकर कौन चल रहा था? अन्दर से आवाज आई। अरे वह कोई और नहीं कन्हैया टार्च लेकर चल रहा था। इस प्रकार यमुना मैया ने बाबा का काम बनाया। बोलो जय श्रीकृष्ण! जय माँ यमुने!

संस्मरण-2 : पीली पोखर पर राधारानी के दर्शन

बाबा अक्सर बरसाना जाया करते थे। कहते थे कि राधारानी के धाम जाकर उनको एक असीम शान्ति का अनुभव होता था। एक बार बाबाजी

पीली पोखर पर राधाकृपाकटाक्ष का पाठ कर रहे थे। पाठ करते-करते मन में विचार आया क्या पीली पोखर पर मुझे मेरी माँ दर्शन नहीं देंगी? इतना सोचना था कि बाबा रोने लगे— व्याकुल हो गये और राधा-राधा का जाप करने लगे। तभी पीले-वस्त्र में बहुत ही मनमोहक एक सुन्दर स्त्री छम-छम पायल बजाती हुई वहाँ से निकली।

बाबा बोले, अरे इतनी सुनसान जगह पर इतनी सुन्दर स्त्री अकेले कहाँ जा रही है? इसके बाद बाबा के अन्दर से आवाज आई अरे जिनकी तू याद कर रहा था, वही पीले वस्त्र में पीली पोखर पर श्रीराधारानी थी। इस प्रकार माँ राधारानी ने बाबा को पीली पोखर पर दर्शन दिये।

संस्मरण-3 : श्रीकन्हैया द्वारा बाबा जी को दिव्य प्रसाद

दादी ने बताया कि साधन काल में प्रभु से मिलने का पागलपन बढ़ता जाता था। कभी भी, किसी भी वक्त घर से निकल जाया करते थे। एकबार 2-3 दिन के लिए कहीं चले गये। जब वापिस आये तो बताया कि गोवर्धन गिरिराज जी निकल गये थे— गोविन्द की तलाश में। उस वक्त बारिश का समय था। जगह-जगह गड्ढे हुआ करते थे। बहुत टेढ़े-मेढ़े रास्ते हुआ करते थे। निकल गये गिरिराज जी और कृष्ण-कृष्ण करते रहे। 2-3 दिन भूखे-प्यासे बारिश में रात-दिन गिरिराज जी की परिक्रमा करते रहे। एक बार रात्रि के 2 बजे थे। कृष्ण-कृष्ण करते हुये बारिश में भागे जा रहे थे। आगे एक भयंकर गड्ढा था तभी पीछे से 8-10 साल के बच्चे ने बाबा का हाथ पकड़ा और कहा, अरे बाबा कहाँ जा रहा है? आगे देख कितनौ बड़ो गड्ढौ है। गिर जाऔगो? बाबा होश में आये वह बालक बाबा को एक गुफा में ले गया और बाबा से बोला, अरे बाबा तैने तो 2-3 दिन से कछु न खायो। लै कछु खा लै और उस बालक ने एक पोटली बाबा को दी। उस पोटली में दिव्य प्रसाद था। बाबा ने बताया ऐसा दिव्य प्रसाद मैंने कभी नहीं खाया था। पोटली देकर वह बालक गायब हो गया। बाबा ने देखा, अरे इतने तूफान में, बारिश में 8-10 साल का वह बालक कौन है जिसने इतना स्वादिष्ट भोजन मुझे कराया? तभी

बाबा के अन्दर से आवाज आई, अरे! यह कोई और नहीं तेरा कन्हैया था। अब क्या था, यह अनुभव करके तो बाबा पागल जैसे हो गये। अरे कन्हैया आया और मैं उसे पहचान भी नहीं पाया, हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे कृष्ण!

संस्मरण-4 : संन्यासी को मार्गदर्शन

एक साउथ इण्डियन संन्यासी महात्मा रोज सायंकाल बिहारी जी के मन्दिर जाया करता था। उसकी उम्र लगभग 35 साल की रही होगी। बहुत तेजस्वी महात्मा था। बाबाजी को ढूँढता हुआ एक दिन वह बिहारी जी मन्दिर पहुँचा। बाबा का नाम ले-लेकर पूछ रहा था कि वे कहाँ मिलेंगे? पहले बिहारी जी के मन्दिर पर इतनी भीड़, आज की-सी नहीं होती थी। कुछ गिने-चुने लोग ही दर्शन करने जाते थे। तब उस संन्यासी को एक गुसाईं जी ने बताया कि एक महाराजजी आते हैं 7:30 बजे शाम को। "डाक्टर-साहब" कहते हैं हम उन्हें।

बाबा होम्योपैथी के डाक्टर भी थे। बाबा जब बिहारी जी के मन्दिर पहुँचे तो संन्यासी को गुसाईं जी ने बाबा के बारे में बताया। बाबा को देखते ही वह संन्यासी साष्टांग बाबा के चरणों में गिर गया और बोला, मैं साउथ से आया हूँ। आपके बारे में मुझे स्वप्न में किसी ने कहा कि तुम वृन्दावन में जाओ, वह आपका काम करेंगे तो मैं वहाँ से भागा-भागा आपसे मिलने आया हूँ, मेरा काम करिये। बाबा ने कहा, स्वामीजी तुम अभी तक वैसे ही हो। स्वामीजी ने जवाब दिया, हाँ महाराजजी मैं अभी तक वैसा ही हूँ जैसा माँ के गर्भ में था। बाबा ने कहा अरे स्वामी! तू यहाँ क्या कर रहा है? जल्दी जा यमुना जी पर तेरा कोई इंतजार कर रहा है। वह संन्यासी तुरन्त यमुना जी की ओर दौड़ा और वहाँ से श्रीकृष्ण उसे अपने साथ ले गये।

संस्मरण-5 : दादी-बाबा लक्ष्मीनारायण हैं

यह घटना मेरे सामने की है। तब मैं गौरा नगर में रहता था। बाबा-दादी उस समय वृद्धावस्था में थे। एकबार स्वयं मुझे स्वप्न हुआ कि जिनको तू

अपना दादी-बाबा समझता है, पता है वे कौन हैं? तू जानता है? मैंने कहा, कौन हैं? उधर से आवाज आई वह लक्ष्मी-नारायण हैं। यह दृश्य देखकर मैं उठ गया, सुबह 7:30 बजे होंगे। मैं दादी-बाबा के पास गया, दादी-बाबा बैठे हुए थे, दादी पलंग पर बैठी थी। बाबा कुर्सी पर बैठे थे। मैंने दोनों के चरण पकड़े और कहा, बाबा मैं पहचानता हूँ, आप कौन हो? बाबा बोले, बता कौन हूँ? मैंने कहा, आप दोनों लक्ष्मी-नारायण हैं। अब बाबा और दादी एक-दूसरे को देखकर मुस्कराने लगे और मैं खड़ा-खड़ा उनको देखता रहा। जय श्रीकृष्ण॥

संस्मरण-6 : कन्हैया के दर्शन की विधि?

मैंने एक दिन बाबा से पूछा, कन्हैया के दर्शन का कोई सरल उपाय बताओ? बाबा ने कहा 3 लाख नाम जप रोज और मन, वचन, कर्म से सत्य का पालन करने से आज भी 9 दिन में कन्हैया के दर्शन हो सकते हैं। इसका लाभ कई साधकों ने उठाया। बाबा की वाणी सत्य हुई।

परमपूज्य सद्गृहस्थ सन्त श्रीदुर्गाप्रसादजी महाराज के सुपौत्र श्रीगोपालदत्त चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत 3 संस्मरण

संस्मरण-1 : मन्दिर में बाबा, ठाकुर जी के साथ खेलते हुये

मेरा जीवन बाबा के साथ ही बीता। बचपन में मैं तो ज्यादातर बाबा के पास ही रहता था। एकबार की बात है कि बाबा मुझसे बोले, बेटा! आज तू मेरे बगल में ही सो जा। मैं शायद चौदह या पंद्रह वर्ष का रहा होउँगा, तो मैं बाबा के बगल में ही सो गया। रात में लगभग दो-ढाई बजे का समय रहा होगा। मैं देखता क्या हूँ कि बाहर मोटे गणेश मन्दिर में खूब तेज प्रकाश हुआ और मेरे बाबा ठाकुरजी के साथ खेल रहे हैं। बचपन की यह घटना मुझे आज भी याद है। सुबह जैसे मेरी आँख खुली तो बाबा ने कहा, तूने कुछ देखा था क्या? तो मैं बोला, हाँ बाबा! मैंने देखा था कि आप ठाकुरजी के साथ खेल रहे हैं। तो बाबा ने कहा, यह बात सिर्फ अपने तक ही रखना। मैंने यह रहस्य अब तक गुप्त रखा। अब आज उनकी जीवनी प्रकाशित हो रही है, अत: मैं उक्त घटना का राज खोल रहा हूँ।

संस्मरण-2 : बाबा की दृष्टिपात मात्र से मोमबत्ती स्वत:जल पड़ी

जब हम मोटे-गणेश मन्दिर वाला घर छोड़कर गौरानगर में बाबा के साथ रहने लगे थे। तब मेरी उम्र लगभग पच्चीस-तीस वर्ष के बीच रही होगी। हम बाबा के साथ रहते थे और बाबा मेरे हाथ का बना हुआ खाना खाते थे। एक दिन की घटना है कि संध्या का वक्त था। शायद 6 या 7 बजा होगा। सिलेंडर की गैस खत्म हो गयी थी। मैं स्टोव पर खाना बना रहा था। माचिस

की एक तीली जलाई और उससे मैंने मोमबत्ती जलाई। लेकिन हवा का एक तेज झोंका आया और मोमबत्ती बुझ गई। मैं देखता हूँ कि बाबा ने एक दृष्टिपात किया उस मोमबत्ती की तरफ और उस तूफानी हवा में मोमबत्ती स्वतः जल पड़ी। मैंने जैसे ही बाबा की तरफ आश्चर्य से देखा, बाबा ने कहा, बेटा! तू अपना काम कर ले, जल्दी से प्रसाद बना ले।

संस्मरण-3 : बाबा द्वारा बालक को जीवन दान

एक बार की बात है, बाबा के एक शिष्य बाबा के पास आए। वे बहुत दुखी थे। फिर अचानक रोने लगे। बोले, बाबा मेरा एक ही बेटा है और कैंसर की तकलीफ से गुजर रहा है। आप कुछ ऐसा करिए कि वह हमारे पास ही रहे। वह चला न जाए। उसके बिना हमारा कोई सहारा नहीं। बाबा अचानक से एक दिव्य उन्माद से उठ खड़े हुए बोले, जा मैं गोविन्द से कह दूँगा। तेरे बेटे को कुछ नहीं होगा। तू सीधा अस्पताल जा। तुझे वह आराम से, प्रेम से कुछ खाता हुआ मिलेगा। बात सही निकली। जैसे ही वह सज्जन बाबा को प्रणाम करके अस्पताल पँहुचे तो उन्होंने अपने बेटे को बैड पर बैठे चाय, बिस्कुट खाते हुआ देखा।

श्रीश्यामसखा बाबा द्वारा
प्रस्तुत 4 संस्मरण

संस्मरण-1 : श्रीबाँकेबिहारी छद्म रुप में

महाराज जी! यानी पंडित दुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी, जब मोटे गणेश वाले मन्दिर के मकान में रहते थे तो वहाँ उन्होंने होम्योपैथिक दवाइयों की एक डिस्पेंसरी खोली थी और वह वहाँ निःशुल्क दवाइयाँ देते थे। प्रायः प्रतिदिन वहाँ श्रीबाँकेबिहारी छद्म वेश में, बालक के रूप में आते थे और चूसने वाली मीठी गोली माँग कर ले जाते थे। महाराजजी जब उनसे पूछते कि लाला आपका नाम क्या है? आपके पिता का क्या नाम है? तो बालक जवाब देता माँ बाप तक मत जा। **"मैं स्वामी हरिदास जी को लाड़लो, बाँकेबिहारी हूँ"** और यह कहकर हँसते हुए चला जाता। वह प्रायः प्रतिदिन ही आता और मीठी गोलियाँ माँगता। बाबा कहते जा, चला जा। जब तुझे कोई रोग नहीं है तो दवाई किस बात की दूँ? एक बार महाराज जी ने उनसे पूछा कि आपको क्या रोग लगा है? तो वह बालक बोला—**"जो रोग श्रीजी को लगा है, वही रोग मेरे को लग गया है।"** यह कह कर हँसते हुए होम्योपैथी की मीठी गोली लेकर चलता बना।

संस्मरण-2 : किशोरी जी अष्टसखियों के साथ

यह संस्मरण मुझे परमहंसजी ने बरसाना यात्रा के दौरान ही सुनाया था। बाबा कहते हैं कि मोटे गणेश वाले महाराज जी, जब बरसाना की यात्रा में जाते और गहवर कुंड की तरफ जाते, तो गहवर कुंड के पास जाकर के जोर से पुकारते, **"माँ मैं आ गया हूँ।"** वह किशोरी जी को माता मानते थे। कहते

थे मित्र की अर्धांगिनी के रूप में किशोरी जी प्रेम तत्त्व स्वरूपा हैं और जगत् की माता हैं। वहाँ जाकर जब वे पुकारते, "**माँ मैं आ गया हूँ**", तो किशोरी जी अष्ट सखियों सहित प्रकट हो जातीं और उनका हाथ पकड़कर अपने महल की ओर ले जातीं। आस-पास परिक्रमा करने वाले लोग, केवल यही देखते थे कि मोटे गणेश वाले महाराज जी ने लगता है कोई नशा किया है, क्योंकि चलते हुए उनके पैर लड़खड़ाते थे।

होता यूँ था कि किशोरी जी और उनकी अष्ट सखियाँ तो किसी को दिखती नहीं थी, केवल महाराज जी दिखते थे। जब उनको पकड़कर ले जाया जाता था, तो उनके पैर लड़खड़ाने लगते थे। बात भी सही है। किशोरी जी और उनकी अष्ट सखियों को भौतिक आँखों से तो देखा नहीं जा सकता। दिव्य दृष्टि और कृपा की दृष्टि जब हो जाती है तभी उनका दर्शन हो सकता है। महल में ले जाकर उनको बड़े प्रेम से आसन पर विराजमान करके खूब स्वादिष्ट प्रसाद किशोरी जी पवाती थीं।

संस्मरण-3 : रहस्यमय डायरी

बरसाने में पीली पोखर के पास प्रिया कुंड है। वहाँ पर सेठ हरगूलाल की एक हवेली है। उस हवेली में मोटे गणेश वाले महाराज जी को सेठ हरगूलाल ने एक कमरा दिया था। जब कभी वह प्रिया कुंड जाते और उस कमरे में बैठते, तो देखते कि किशोरी जी अपनी आठों सखियों के साथ महल से निकलती हुई आ रही हैं और प्रिया कुंड में स्नान करने गई हैं। वे सब आपस में बातचीत भी कर रही हैं। महाराज जी को वह सारा दृश्य दिखाई पड़ता था और बातचीत भी सुनाई पड़ती थी। उसको महाराज जी एक डायरी में लिख लिया करते थे। बाद में महाराज जी ने परमहंस जी को बताया था कि माँ जो अपनी लीला दिखाती हैं और जो बातें बताती हैं। उन सबको मैंने इस डायरी में लिखा है। **परन्तु यह डायरी किसी के पास नहीं जाएगी, क्योंकि यह अति रहस्यमय है। मेरे शरीर के साथ ही यह अन्तर्धान हो जाएगी।**

संस्मरण-4

परम आदरणीय परमहंस जी सन् 1972-73 ई. से महाराज जी के सत्संग का लाभ उनके जीवन पर्यन्त उठाते रहे। प्रतिदिन सत्संग का समय सायंकाल 4 बजे से 6 बजे तक निर्धारित था। साप्ताहिक सत्संग प्रति मंगलवार को होता था। इसमें मथुरा से भी लोग आते थे। जब महाराज जी—

1. बिहारी जी मन्दिर के पास किराये के मकान में।
2. मोटे गणेश जी वाले (टंडन जी के) मकान में।
3. रेतिया बाजार वाले मकान में।
4. सिंडीकेट बैंक, प्रताप बाजार वाले मकान में।
5. अन्त में अपने निजी मकान गौरानगर में रहते थे। परमहंस जी सुदामा कुटी से पैदल उल्लिखित स्थानों पर समय से पहुँच कर सत्संग का लाभ उठाते रहे। एकबार श्रीमहाराज जी ने परमहंस जी को 'हुड़दंग स्वामी' कहकर पुकारा तब से सभी लोग परमहंस जी को हुड़दंग बाबा कहने लगे।

जीवन चरित के लेखक
पूज्य श्रीनवेलीशरण जी महाराज का हस्तलेख

सामान्य मनुष्य अपने समय का दुरुपयोग प्रायः खेल-तमाशा, आलस्य अथवा व्यर्थ आलाप में कर देते हैं। इनमें भी व्यर्थ आलाप से ही सर्वाधिक नुकसान होते देखा जाता है। श्रीमहाराजजी अपने विद्यार्थी जीवन में इन प्रवृत्तियों से सर्वथा दूर रहे। उनके जीवन में व्यर्थ आलाप आदि का कभी कोई स्थान नहीं था। इस विषय में मङ्गलीय सुमन में उनका यह उपदेश वाक्य संकलित है— "बिना आवश्यकता कतई मत बोलो। अधिक बोलने से असत् बातें मुँह से अवश्य निकलेंगी जो श्रीकृष्ण से दूर ले जाने वाली हैं।"

सत्सङ्ग, सदाचार, सत्यनिष्ठा तथा श्रीकृष्णभक्ति ये दिव्य गुण श्रीमहाराजजी के व्यक्तित्व की आधार शिला थे जिन्हें उन्होंने बाल्यकाल से ही निष्ठापूर्वक हृदयङ्गम किया। श्रीकृष्णभक्ति के प्रति उनकी अभिरुचि सत्सङ्ग के माध्यम से विकसित होती चली गई, किन्तु इसके पीछे पूर्व जन्म के संस्कारों का भी अतिशय महत्त्व था। श्रीमहाराजजी का नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के प्रति बाल्यकाल से ही आकर्षण था जो सत्सङ्ग के द्वारा निरन्तर पुष्ट होता चला गया। सत्य और सदाचार के प्रति उनकी आत्मिक निष्ठा और उसके अनुरूप उनके पवित्र आचरणों से इस आकर्षण को रक्षा और पोषण प्राप्त हुआ, जिससे इसकी सतत् वृद्धि हुई। समयानुसार यह आकर्षण गहन-गम्भीर निष्ठा का रूप धारण करता हुआ उनके अन्तर में श्रीकृष्ण भक्ति के रूप में पुष्पित-फलित हुआ। यह प्रेमा-भक्ति ही सभी सद्ग्रन्थों के उपदेशों का सार-सर्वस्व है तथा मानव-जीवन का चरम लाभ है।

3

समत्व योग

आध्यात्मिक प्रवचनों का महत्त्वपूर्ण संकलन

पूर्व प्रकाशित पुस्तक का
द्वितीय संस्करण

समत्व योग

संकलन कर्त्री

द्रोपदी देवी 'बाबली'

सम्पादन

भगवतशरण चतुर्वेदी

न्योछावर (मूल्य)

'श्रीकृष्ण मिलन की चाह'

प्रथम संस्करण सन् 1967 में आलोक प्रकाशन, जयपुर
द्वारा प्रकाशित तथा मयूर प्रिन्टर्स, जयपुर द्वारा मुद्रित

प्रथम संस्करण

सम्पादकीय

पूज्य महाराजश्री द्वारा 'नित्य सत्संग' में जन कल्याण की भावना से प्रेरित होकर की गई सुमन वर्षा के कुछ पुष्प यहाँ संकलित किए गये हैं।

श्रीमती द्रोपदी बहिन ने स्नेह और निष्ठा से महाराज जी के प्रवचनों का यह अंश, सत्संगियों और स्नेहियों के मार्गदर्शन हेतु संकलित किया है।

प्रस्तुत संकलन में महाराजश्री के अपने अनुभवों पर आधारित ज्ञान किरणों का समावेश है जो विभिन्न तापों से त्रस्त एवं अंधकार में आवृत्त मानवता को आनन्द और प्रकाश दे सकेगी।

इसी विश्वास के साथ यह संकलन श्रीकृष्ण मिलन के पथिकों एवं अनुरागियों को अभिवादन सहित समर्पित है।

निर्जला एकादशी

ज्येष्ठ सं. 2024 वि.

भगवतशरण चतुर्वेदी

विषय सूची

1. सत्य के साथ एकता

भजन करने वाले साधक को सर्वप्रथम भजन के स्वरूप को जानना होगा। भजन का स्वरूप संख्या अथवा वजन नहीं है, भजन का स्वरूप है भगवत्-नाम का मन के साथ स्पर्श होना। यह तब होता है जब इन बिखरी वृत्तियों को चारों ओर से समेट कर अन्तर्मुख हों। फिर वृत्ति को किसी एक स्थान पर भृकुटि के मध्य अथवा हृदय में कहीं भी टिकाना और तब जिस प्रकार भोजन को खूब चबाकर खाने से लाभ होता है उसी प्रकार नाम को खूब प्रेम से, मनोयोग से लेना, चाहे आधे घंटे में एक माला हो। यह आधे घंटे की एक माला उन पचास मालाओं से अधिक लाभप्रद होगी जो खींचा-खाँची करके की जाती है। मनोयोग से की हुई एक माला ही नाम के साथ मन का स्पर्श करा देने में समर्थ होती है।

प्रभु-मिलन के अभिलाषी को अपने जीवन का 'ऑडिट' अर्थात् जीवन के लेखे-जोखे का निरीक्षण करते रहना चाहिये। इस निरीक्षण में दो बातों पर ध्यान देना होता है; पहली देहासक्ति और दूसरी आत्मासक्ति। यदि साधक की देह में आसक्ति अधिक है तो उसमें मायाजनित सभी विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, अविवेक आदि होंगे जो पतन की ओर ले जाने वाले हैं, प्रभु से विमुख करने वाले हैं और यदि आत्मासक्ति की ओर झुकाव है तो ज्ञान, वैराग्य, विवेक, धैर्य, शान्ति आदि गुणों का निवास होगा, जो प्रभु-मिलन में सहायक होते हैं। आत्मा स्वयं श्रीकृष्ण ही है, उसके प्रति आसक्ति मुक्ति है और देह के प्रति आसक्ति है बन्धन, चौरासी की भटकन।

श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए सत्य के साथ एकता करनी होगी। जीवन श्रीकृष्णमय बनाना होगा। गोपियों की भाँति जीवन के सारे कार्य-कलाप यहाँ तक कि वस्त्र पहनना, भोजन करना भी श्रीकृष्ण के लिए ही होगा। सत्य की एकता के लिए असत्य से सम्बन्ध काटना होगा। सत्य केवल एक श्रीकृष्ण ही हैं। उनसे रहित सब असत्य है। श्रीकृष्ण का पाषाणमयी अथवा

मृण्मयी (मिट्टी की) अथवा धातुमयी रूप केवल प्रतिमा मात्र है? नहीं, यह जो कुछ दिख रहा है सब कुछ श्रीकृष्ण ही है। यह दिखे, यही सत्य के साथ एकता है। इसके बिना अन्य किसी प्रकार, न जप से, न तप से, न भूखे मरने से, न गुफा में बैठने से, न दूधाहारी बनने से, न फलाहारी बनने से, न अन्य किसी साधन से काम बनेगा, न शान्ति प्राप्त होगी। यह तभी होगा जब कि सत्य के साथ एकता होगी।

2. प्रार्थना और संत-कृपा

प्यारे प्रियतम! श्रीकृष्ण से मिलने के लिए अभेद अवस्था प्राप्त करनी होगी। प्रभु स्वयं अभेद हैं न! तो उनको पाने वाले को भी तो भेद रहित बनना होगा। यह भेद तीन प्रकार से साधक को लक्ष्य प्राप्त करने में बाधक होते हैं 1. जातिगत भेद, 2. व्यक्तिगत भेद और 3. वस्तुगत भेद।

जातिगत भेद में मनुष्य जाति के ममत्व के कारण सत्य से डिग जाता है जैसे– किसी भी एक जाति का व्यक्ति जाति के नाते हर क्षेत्र में जाति का ही पक्ष लेगा, सत्य का नहीं। जाति में लिंग-भेद, वर्ण-भेद सभी आ जाते हैं। सत्य से दूर हट कर लक्ष्य प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार वस्तु भेद भी है। यदि एक भारतीय, देश के नाते अन्य देश की बनी वस्तु को अथवा किसी नियम को सत्य होते हुए भी इसलिए सत्य नहीं मानता कि वह हमारे देश की नहीं है तो वह सत्य से दूर चला जाता है और उसका लक्ष्य उससे दूर, अति दूर हो जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति भी है।

3. विषमता

सिंह अपनी दहाड़ से आप नहीं डरता। 'साहब मिल गया तिल ओले।' वह तिल क्या है? इसी का उत्तर है यह (सिंह अपनी दहाड़ से आप नहीं डरता।) यदि डरता है तो यह विषमता है। यह विषमता ही "साहब को ओट में करने वाला तिल है।"

4. सच्ची शान्ति

चील के मुँह में माँस का टुकड़ा है, इसलिए अन्य माँसाहारी पक्षियों ने उसे चारों ओर से घेर रखा है। यदि वह उस टुकड़े को फेंक देती है तो सब उसका पीछा छोड़ देते हैं और उसे शान्ति मिलती है।

इस संसार के स्वार्थी लोगों का भी यही हाल है। यदि तुमने इस मोह ममता रूपी माँस को छोड़ दिया तो तुम्हें सच्ची शान्ति प्राप्त हो जायेगी।

साँप अपने लिए बिल नहीं बनाता, उसे जहाँ कहीं बिल मिल जाता है उसी में बैठकर वह अपना समय काट देता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति यह जानता है कि यहाँ रहने की जगह नहीं, अपना काम करके चले जाना है, वह यहाँ ठहरने का ठोस प्रबन्धन नहीं करता। उसे तो अपना काम बनाने की चिन्ता रहती है। काम क्या है? प्रभु मिलन। पहले निश्चय करना होता है। निश्चय करने वाला ही अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है।

5. प्रार्थना का बल

प्रार्थना! प्रभु से प्रार्थना!! प्रार्थना में बहुत बड़ा बल है, भैया। लोगों का कहना है कि प्रार्थना से कुछ नहीं होता। यह भूल है। मैं कहता हूँ होता ही सब कुछ प्रार्थना से है। समय-समय पर जब भी कभी किसी पर संकट आया, भगवान् को पुकारा और उन्होंने किसी न किसी रूप में आकर रक्षा की। इसके बहुत से प्रमाण शास्त्रों में भी भरे पड़े हैं और प्रत्यक्ष में भी। देखना चाहते हो तो अभी देख लो। आज जो अपना देश संघर्ष के मध्य में है, उस मुकाबले में अमेरिका के वह पैटन टैंक थे जो संसार में अजेय समझे जाते रहे हैं, उन्हें तुम्हारे देश के सैनिकों ने इस प्रकार तोड़ दिया जैसे छोटा बालक साधारण खिलौनों को तोड़ देता है। यह क्या था? किसका बल था? यह प्रार्थना का ही बल था, भैया! देश की रक्षा की कामना करने वाले परम उदार सन्तों की प्रार्थना का ही यह बल था, जो प्यारे श्रीकृष्ण शक्ति बनकर सैनिकों में समाये और वह कमाल किया जो विश्व के लिए आश्चर्य बन गया।

दूसरी ओर इससे यह भी विदित होता है कि हमारे श्रीकृष्ण की ही शक्ति सब में काम कर रही है, मनुष्य की क्या सामर्थ्य है। इस कठपुतली का डोरा उसी सूत्रधार के हाथ में है। वह जिसको जिस प्रकार चाहे नचा रहे हैं परन्तु अज्ञान वश पुतली अपने आप को कर्ता मान बैठी है। यही तो भारी अज्ञान है। इस अज्ञान से निकलो, उस सूत्रधार की खोज करो, उनसे सम्बन्ध जोड़ो, देखो तो सही वह कितने उदार हैं। यह संसार के लोग तो माँगने पर यदि कुछ देते हैं तो उधार; और यदि यों ही किसी को कुछ दे भी दिया तो जन्म भर के लिए उसे अहसान के बोझ से लाद दिया। ज्यादा हुआ तो उलटा माँग लिया। परन्तु मेरे उस परम उदार श्रीकृष्ण को तो देखो, वह अपने आप को भी दे डालते हैं फिर भी सकुचाते हैं। जिसे अपने आपको दे देते हैं उसके चाकर होकर रहने को भी थोड़ा ही समझते हैं। उसका सारा भार आप लेकर उसे निश्चिन्त कर देते हैं। इधर उसके आश्रित भी कमाल के होते हैं। उनके भरोसे कुछ भी कर बैठते हैं।

इसके लिए सुधन्वा और अर्जुन का प्रमाण कैसा प्रत्यक्ष है। इधर तो अर्जुन प्रतिज्ञा करता है तीन बाण से सुधन्वा को मार डालने की और उधर सुधन्वा प्रण करता है बाणों को काटने का। दोनों ही प्यारे हैं श्रीकृष्ण के; उन्हीं को सँभालने हैं। संभाला, दोनों की बात रखी। शास्त्र प्रमाण है इसके लिए। यदि ऐसे से भी सम्बन्ध न जोड़ा तो यह दुर्भाग्य ही है, और क्या कहा जाये। इसलिए भैया! मेरी तो यही सलाह है कि जल्दी से जल्दी इस बखेड़े को समेट कर श्रीकृष्ण से सम्बन्ध जोड़ लो। सम्बन्ध होते ही प्यार हो जाएगा। प्यार हो जाने पर मिलना तो अनिवार्य है ही। इस बखेड़े को समेटने के लिए संत-कृपा प्राप्त करनी होगी, बिना सन्तों की चरण रज में लोटे यह माया छोड़ेगी नहीं। इस माया ने अपने जाल में तुम्हें ऐसा जकड़ रखा है कि अपनी सामर्थ्य से तुम छूट नहीं सकते, इसके लिए तो सन्तों की चरण धूलि में लोटना ही पड़ेगा। सारे जप-तप, दान-पुण्य, ध्यान-धारणा-योग-समाधि एक तरफ और सन्त कृपा एक तरफ है, यह मेरा अपना अनुभव है भैया! और यदि प्रमाण चाहते

हो तो प्रमाणों से भी शास्त्र भरे पड़े हैं। ऋषभदेव ने अपने पुत्रों से कहा था कि यदि इस चक्कर से निकलना चाहते हो बेटा, तो सन्तों की चरण धूलि से स्नान करो।

सन्तों से धूलि प्राप्त करने की भी विधि है। उनके पास अत्यन्त दीन होकर जाओगे तभी कुछ पा सकोगे, छाती पर चढ़कर नहीं। दौलत के प्रलोभन से नहीं। दण्ड का भय दिखाकर नहीं। अब प्रश्न है कि सन्त मिलें कैसे और उनकी पहिचान क्या है? सन्त का स्वरूप है समता। वहाँ विषमता नहीं रहती, सब को समान दृष्टि से देखा जाता है। कार वाले को प्यार, फटे वस्त्र वाले को दुत्कार वहाँ नहीं होती। मिलने की जगह तुम्हारे भीतर बैठा अनुमन्ता बतायेगा। किसी के कहने से मत मानो।

6. प्यारे की करुणा

सोता हुआ व्यक्ति यदि स्वयं उठने की इच्छा न करे तो उसे जगाया नहीं जा सकता। यदि जगा भी दिया तो ऊँघने लगेगा। वहाँ से उठकर दूसरी जगह सो जायेगा। तो भैया! इस मोह निद्रा से जागने की इच्छा करोगे तभी जाग सकोगे। अब सोने का समय नहीं है। जल्दी-जल्दी चेत जाओ और अपना काम कर लो। दृष्टि और दृश्य का मेल मत होने दो! संगति का प्रभाव पड़ता है। अतः इनकी संगति मत होने दो। जहाँ इनके मिलने का समय आया कि विवेक की तलवार से तुरन्त उस सम्बन्ध को काट दो। इन दोनों का मेल भ्रम में डाल देता है। भ्रम के कारण जीव अपने स्वरूप से गिर जाता है।

स्वरूप का ज्ञान न होना ठीक वैसा ही है कि जैसे सूरज कहे कि मेरा अन्धकार कैसे दूर हो, अग्नि कहे मेरा शीत कैसे निवारण हो। स्वरूप से गिरने के कारण अर्थात् अपने स्वरूप का बोध न होने के कारण ही आज तुम्हारा देश औरों के मुँह की ओर देख रहा है, नहीं तो, तुम्हारे देश में आज भी गुफाओं में ऐसी विभूतियाँ छिपी हैं कि केवल इच्छा मात्र से संसार को पलट सकती हैं पर उनकी खोज नहीं की गयी। इसी से सब दु:ख पा रहे हैं।

इस झूठे ऐशोआराम में भूलकर अपने को बहला रहे हैं। भैया रे, यह जो तुम सब देख रहे हो यह सब स्वप्न है आँख खुलने पर कुछ नहीं रहता। इसे समझने के लिए जीते-जी मरने से फिर मरना नहीं पड़ता।

क्या मतलब? यही कि जन्म-मरण का चक्कर छूट जाता है। जीते जी कैसे मरा जाय? यह सन्त कृपा से ही विदित होगा। लोग घबराकर कभी कह बैठते हैं, मर जायें तो इससे पीछा तो छूटे। जिनको तुमने अपना खून पिलाकर पाला है आज वे तुम्हें पानी के लिये भी तरसा रहे हैं, किन्तु तुमने सोचा नहीं। बुढ़ापे की प्रतीक्षा करते रहे। अब पौरुष समाप्त हो गया। अवसर हाथ से निकल गया, जो अपना था उसे भुला दिया। मौत को अब याद करते हो परन्तु भैया! मर कर भी पीछा नहीं छूटेगा। मरेगा क्या? यह शरीर! यह तो मिट्टी है, इसका क्या मरेगा। आत्मा? वह अविनाशी है। यह तो यों ही इसी चक्कर में घूमना पड़ेगा जब तक तुमने इससे आस्था नहीं हटाई तब तक। आस्था हटते ही चक्कर छूट जायेगा। आस्था छूटेगी तब जब इसके स्वरूप को पहचान लोगे और सत्संग को अपना जीवन उसी प्रकार बना लोगे जैसे मछली के लिए जल।

प्यारे श्यामसुन्दर को अपने प्यारों के बराबर अपना वैभव भी अच्छा नहीं लगता। उदास हो जाते हैं मथुरेश, उद्धव उदास देखकर पूछते हैं– मथुरेश! आज यह मैं क्या देख रहा हूँ, आपकी कमलवत् सुन्दर आँखों में आँसू? हाँ भैया उद्धव, आज मुझे माँ यशोदा और वह ब्रज की भोली ग्वालिनें याद आ रही हैं। यह वैभव काटने को दौड़ता है। यहाँ मुझे प्यार से काला कनुआ! ओ कन्हैया! ओ लाला आदि कह कर पुकारने वाला कोई नहीं। देखो भैया! तुमने उस प्यारे की करुणा! आप्तकाम, आत्माराम होते हुए भी भक्तों के लिए रोते हैं।

7. देहाभिमान का त्याग

मानव के विवेक पर कामना का पर्दा पड़ा हुआ है। यदि इस पर्दे को हटा लिया जाये तो सच्ची शान्ति मिले और सारे झंझटों से छुटकारा मिल

जाये। परन्तु इसको हटाना सब के वश की बात नहीं। यह तो उन्हीं मनचले, माथाफिरे अर्थात् सिद्ध सन्तों का ही काम है, जो एक फूँक से उसे उड़ाकर मार्ग साफ कर देते हैं। उन्हीं के पास जाना पड़ेगा भैया, और कोई उपाय है नहीं, परन्तु वहाँ जाने के लिए छोटा बनना पड़ेगा, चरणों में बैठना पड़ेगा, कर सकते हो तो कर लो। काम बना बनाया है। बस तुम्हारे पहुँचने की देर है।

मतंग ऋषि चलते-चलते शबरी से कह गये—बेटा! सन्तों की सेवा करना। राम प्रभु सबसे पहले तेरी कुटिया पर ही आवेंगे। शबरी का काम हो गया। शबरी ने वर्षों प्रियतम की बाट जोही परन्तु गुरु-वाक्यों पर सन्देह नहीं हुआ। ऐसे ही अपना काम बना लेते हैं। जो कच्छप की भाँति अपने बल पर चलते हैं उन्हें वर्षों संघर्ष करना पड़ता है। तब भी अन्त में लौटना उन्हीं चरणों में पड़ता है तभी काम होता है। कच्छप ने जब तक सर्वत्याग का स्वरूप अपने गुरु से जाकर पूछा नहीं, तब तक सब कुछ त्यागने पर भी उसे शान्ति नहीं मिली। शान्ति वस्तु त्याग में नहीं। वह तो देहाभिमान त्यागने में है और यह त्याग होता है सन्त कृपा से ही। यह ऐसी ग्रन्थि है जिसे अपने पुरुषार्थ से तो खोला जा ही नहीं सकता। जिन्होंने इस ग्रन्थि को काट दिया है, उनकी शरण में जाते ही स्वयं कट जाती है, प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

8. माया से छुटकारा

साधक को अपने जीवन में निरपेक्षता लानी होगी। निष्काम जीवन बनाना होगा और यह तब होगा जब इस माया के चक्कर में से निकल सको। इस माया ने अच्छे-अच्छों की नाक में नकेल डाल रखी है। इससे छुटकारा पाने के लिए ही कोई अग्नि ताप रहा है, कोई जल में खड़ा है, कोई उपवासादि से शरीर को सुखाकर काँटा बना जा रहा है, परन्तु पीछा नहीं छोड़ती है यह माया। क्यों? इसलिए कि तुमने अवलम्ब नहीं लिया। अरे भैया! इससे छुटकारा पाने का बड़ा सरल उपाय है—**श्रीकृष्ण के हो जाओ**। उनका आश्रय ग्रहण करलो। मैं सच कहता हूँ फिर यह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़

सकती। यह तो तुम्हारे प्रियतम की चेरी है। उनके संकेत मात्र से ही यह तुम्हारी ओर देखेगी भी नहीं।

श्रीकृष्ण का होने के लिए कथनी और करनी की एकता करनी होगी। उनसे सच्चे हृदय से एक बार कह दो—"प्रभु मैं जैसा हूँ, तुम्हारा हूँ।" बस, तुम हो गये उनके। तब तुम्हारा कुल भार वह आप सँभाल लेंगे। वह एक बार अपनाकर फिर छोड़ते नहीं। जब तुम उनके हो गये, तो माया की क्या बिसात।

9. आश्रय

साधक के जीवन में प्रार्थना एक बहुत बड़ा अवलम्ब है। ठीक उसी प्रकार का जिस प्रकार अन्धे का आश्रय लकड़ी। यदि अन्धा कहे कि मैं लकड़ी नहीं रखता तो सोचो इसका क्या परिणाम होगा? बिना अवलम्ब के मानव संतप्त है, राग-द्वेष की विभीषिका से जल रहा है। आनन्द की एक बूँद के लिए तरस रहा है परन्तु उसे प्राप्त नहीं। भैया! आनन्द इन अन्य साधनों में नहीं, न जप में, न तप में, न योग में। यह आनन्द तो आश्रय में है, मेरे पास तो इतना आनन्द है कि जिसका कोई हदो-हिसाब नहीं; खूब खाता हूँ, खूब लुटाता हूँ परन्तु उसका अन्त नहीं। अनन्त भंडार भरा पड़ा है।

इसकी प्राप्ति का एक मात्र उपाय है— आश्रय। प्रार्थना का आश्रय लो, प्रभु से प्रार्थना करो। उन्हें अपने सन्मुख उपस्थित मानकर, छल-कपट का सहारा छोड़कर सच्चे हृदय से प्रार्थना के द्वारा अपना सारा हाल उन्हें सुना दो, मुँह से मत कहो। भैया! हृदय से अनुभव करके कहो। तनिक विचार कर देखो न, परम उदार, दया के सागर, करुणा के समुद्र के सामने तुम्हारी क्या बिसात है। जब किसी दुःखी को देखकर तुम्हारा हृदय करुणा से भर आता है जब कि तुम्हारे पास दया की एक बूँद भी नहीं, तो सोचो तो सही उस दया-सागर की क्या दशा होगी, तुम्हारी करुण-पुकार सुनकर। इसलिए घबड़ाओ नहीं, निराश मत हो। बस निष्कपट भाव से अपनी दशा को ठीक विचार कर कह दो उनसे—"प्रभु मैं सचमुच तो इस योग्य नहीं। किस मुँह को

लेकर के सामने आऊँ, पर और जाऊँ भी कहाँ? जब मैं अपनी करतूतों की ओर देखता हूँ तो लाज से आँखें नीची हो जाती हैं। निराशा सी हो जाती है, और जब तुम्हारी दयालुता, तुम्हारी उदारता का ध्यान करता हूँ तो साहस आ जाता है, आशा लता लहरा उठती है, उसी आधार पर सरकार के दरबार में एक अर्जी लेकर, एक साध लेकर उपस्थित हुआ हूँ। भगवन् मैंने काम तो सदा वही किए हैं जो तुम्हे अच्छे नहीं लगते। जो तुम चाहते हो वैसा एक भी तो काम नहीं किया। जो कुछ भी हो अब तो मैं जैसा हूँ, तुम्हारा हूँ। यह दिल जैसा भी है तुम्हारे श्री चरणों पर समर्पित है। अब तुम्हारी इच्छा कुछ भी करो तुम जानो। पर देखना, एक बात अवश्य है, मेरी करतूतों पर ध्यान मत देना, अपनी ओर ही देखकर न्याय करना। मैं तो सोचता हूँ तुम्हारा ध्यान करूँ सो मुझे आता नहीं कैसे करूँ? कोई जप, तप करूँ तो शरीर में सामर्थ्य नहीं, कोई नियम लूँ तो निभता नहीं, व्रत लूँ तो सधता नहीं। कहाँ तक बताऊँ तुम्हें, मैं अपनी हालत भगवन्! मुझे श्री चरणों में प्रणाम करना तक नहीं आता, तब भला किस मुँह से आपसे कुछ कहूँ? बस, तुम्हारी परम उदारता का नाम सुनकर अत्यन्त असमर्थ होते हुए भी आया हूँ, तुम्हीं जानो अब!"

इस प्रकार विचारपूर्वक सचमुच जब तुम अपने को असमर्थ समझकर अति वेदना से व्याकुल होकर रो पड़ोगे और चढ़ा दोगे प्यारे के चरणों में दो अश्रु-पुष्प तो क्या तुम समझते हो वह तुम्हें छाती से नहीं लगायेंगे? नहीं भैया! उनसे रहा ही नहीं जाता। वह कितने उदार हैं, यह तो तुम तभी जानोगे जब देखोगे। फिर कोई अभाव तुम्हारे जीवन में रहेगा ही नहीं। आनन्द, बस आनन्द ही आनन्द होगा।

10. प्रभु की उदारता

गंगा समस्त पापों का नाश करती हैं। **चन्द्रमा** ताप हरण करता है। **कल्पतरु** दरिद्रता दूर करता है। परन्तु **संतजनों का दर्शन एवं संग अकेला ही तीनों का नाश करता है।**

प्रभु की परम उदारता का नमूना हमें रामायण और महाभारत दोनों में मिलता है। इधर आप अर्जुन के रथ पर सारथी रूप में विराजे हैं। विपक्ष से अर्जुन की ओर शक्ति आती देख आप आगे आकर अर्जुन को पीछे कर देते हैं, शक्ति का वार अपने ऊपर सहते हैं। उधर रावण, विभीषण के ऊपर परम शक्ति का प्रयोग प्राण लेने को करता है, वहाँ भी राम विभीषण को पीछे कर स्वयं अपने वक्ष पर उसका वार सहते हैं, मूर्छित भी हो जाते हैं। कौन कर सकता है ऐसा प्यार! प्यार करना तो बस वही जानते हैं।

11. वास्तविक उन्नति

उन्नति का वास्तविक अर्थ है स्व-स्वरूप का ज्ञान और अवनति का अर्थ है– देहासक्ति। महान् व्यक्ति के जीवन में समता ओत-प्रोत रहती है। वह परम धैर्यवान होता है। सुख-दु:ख उसके लिए बराबर होते हैं। शीत-गर्मी का प्रभाव उस पर नहीं होता। उसे क्रोध नहीं आता। हृदय परम शान्त होता है। राग-द्वेष नहीं रहता। शत्रु-द्वेष नहीं रहता। शत्रु-मित्र उसकी दृष्टि में समान हो जाते है।

12. सत्य और असत्य

इस दृश्य प्रपंच में जो भी वस्तु दृष्टिगत होती है सभी का अपने आप में कुछ न कुछ महत्व है परन्तु इन सब से ऊपर जो परम महत्त्वशाली है, वह है मानव देह। चौरासी लाख योनियों में एक मानव योनि ही ऐसी है जिसके द्वारा भगवत् प्राप्ति हो सकती है। मानव देह पाकर जिसने विवेक द्वारा सत् और असत् का बोध प्राप्त कर लिया उससे लक्ष्य दूर नहीं रह सकता। सत् का अर्थ है 'है' और असत् का अर्थ है 'नहीं'। अब समस्या यह है कि तुमने जो 'है' उसको तो 'नहीं' मान लिया है और जो 'नहीं है' उसे 'है' मान लिया है। जीव क्लेश पा रहा है, यदि उसे इसका यथार्थ बोध हो जाये तो उसके सारे संकट सदा के लिए समाप्त हो सकते हैं। अब देखना यह है कि 'है' क्या है और 'नहीं' क्या है! तो भैया देखलो, यह जगत् तो 'नहीं है' और श्रीकृष्ण 'है'

अर्थात् यह जगत् जिसको तुमने सत् माना हुआ है वास्तव में यह है नहीं और श्रीकृष्ण जो वास्तव में हैं उन्हें मानते नहीं, उन पर विश्वास नहीं, तो यह तो छोड़ना पड़ेगा भैया, और सत्य को ही सत्य मानोगे तभी काम बनेगा।

तुम कह सकते हो कि जो वस्तु हमारे सामने है उसे कैसे मानें कि नहीं है। ठीक है, परन्तु तनिक विचार कर देखो, जब तुम स्वप्न देखते हो तो वह सत्य ही प्रतीत होता है परन्तु आँख खुलने पर? कुछ नहीं। यह क्या है? बस इसी प्रकार यह जगत् भी लगता है वस्तुतः 'है नहीं'। और भैया! आज के विज्ञान ने तो इसे समझने का एक बड़ा सरल उपाय तुम्हारे सामने ला दिया है, वह है सिनेमा संसार। क्या वह सत्य प्रतीत नहीं होता? परन्तु वास्तव में है कुछ नहीं। वह दो घण्टे का संसार है, यह युगों का संसार है। खेल समाप्त होते ही बिजली जलने पर वहाँ कुछ नहीं रहता।

इसी प्रकार यदि तुम्हारे जीवन में विवेक का प्रकाश हो जाये तो यहाँ भी कुछ न रहेगा। यह निर्णय तुम्हें स्वयं करना होगा। एक ओर श्रीकृष्ण हैं जो सत्य हैं, आनन्दस्वरूप हैं और दूसरी ओर संसार है जो असत् है, क्लेशपूर्ण है। अब देख लो तुम क्या चाहते हो? जिसने सत्य को पहिचान कर असत्य को त्याग दिया वही सच्चा संत है, प्रभु का प्यारा है, नित्य संगी है। वह क्लेशों से छूट जाता है। संसार के सृजन, स्थिति एवं प्रलय से उसका सम्बन्ध नहीं रहता। वह नित्य आनन्द स्वरूप हो जाता है। जब तक संसार की असारता को मन से समझा नहीं तब तक काम बनेगा नहीं। वाणी से कहने से काम नहीं बनता। यह तो हृदय से समझौता करना होता है। जब तक इसका यथार्थ बोध नहीं होता तभी तक हर्ष-शोक से जीव दु:खी होता है। कबीरदास जी ने तो यह कह दिया।

सब के पल्ले लाल हैं सब ही साहूकार।
गाँठ खोल देखा नहीं इस विधि हैं बेहाल॥

वह गाँठ है देहासक्ति, अहंता, मैं। परन्तु भैया, तनिक विचार कर तो देखो यह 'मैं' क्या है? देखा, प्याज की गाँठ की भाँति अंत तक कुछ न

मिला, कोई भी वस्तु 'मैं' नहीं निकली, इस हाड़-माँस के खोल में। जब 'मैं' कुछ नहीं तो यह संसार भी कुछ नहीं जब यह कुछ नहीं तो रह क्या गया? एक मात्र श्रीकृष्ण। यह श्रीकृष्ण ही सब ओर छाया हुआ है। अन्य जो कुछ दिख रहा है वह सब श्रीकृष्ण में कल्पित है, अतः तुम सारे जगत् को अपने आप में देखने लगो और आप को जगत् में, तो यह भ्रम मिट जाये। मैं तो कहता हूँ क्या सिंह अपनी गर्जना से आप डरता है? नहीं! नहीं, तो जब सारे जगत् में तुम स्वयं ही हो तो पराया क्या है? जब पराया कुछ नहीं तो राग-द्वेष से सहज छुटकारा हो गया। राग-द्वेष के छूटते ही समता प्राप्त हो जाती है तब श्रीकृष्ण दूर कहाँ? वह तो तुम्हारे सामने ही हैं। बस पहिचानने की देर है। तुलसीदासजी ने भी कह दिया—

जेहि जाने जग जाय हेराई। जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई।

13. अंश और अंशी

नेत्र सूर्य का अंश है, सूर्य इनका अंशी है। सूर्य के छिपने पर नेत्र देखने में असमर्थ हैं, बिना प्रकाश के। आकाश में बादल छाकर सूर्य को ढक लेते हैं तब नेत्र अपने अंशी को देख नहीं सकता। इसी प्रकार हृदयाकाश में विराजे श्रीकृष्ण को अंहकार के बादलों ने ढक रखा है, तभी उनका अंश जीव उनको देख नहीं पाता। इस बादल के हटते ही श्रीकृष्ण सामने हैं।

14. शान्ति की कुन्जी

प्रत्येक व्यक्ति शान्ति चाहता है, सच्ची शान्ति, सदा रहने वाली शान्ति परन्तु वह इन दिखने वाले दृश्य, प्रपंचों में नहीं है। शान्ति तो एकमात्र श्रीकृष्ण के चरणों में है जो किसी-किसी को ही प्राप्त होती है, हर किसी को नहीं। कोई बिरला ही उस शान्ति को पाकर सदा के लिए सुखी होता है। हर किसी को वह नहीं मिलती। इसका कारण है— हर व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि के प्रयत्न में लगा हुआ है, इन दृश्य प्रपंचों में फँसा हुआ है। उसे सच्ची शान्ति की चाह ही कहाँ है। वह तो इन अनित्य वस्तुओं से मिलने वाली

क्षणिक शान्ति को ही सब कुछ मान बैठा है। सच्ची शान्ति के बिना जीवन में अभाव नहीं मिटता। उस अभाव की निवृत्ति के लिए मनुष्य अनेक प्रकार के स्वांग रचता है, टोलियाँ बनाकर काठ के उल्लुओं को बहकाने का उपाय करता है। कुछ पास न होते हुए लोगों को धोखे में डालकर लड्डू पूरी की साध पूरी करता है और अन्त में प्रचार होता है कि श्री महाराज का निकुंज-प्रवेश हो गया। कितना अँधेरा है। इसमें शान्ति नहीं मिल सकती, कभी भी जन्म-जन्मान्तरों में उसे एक कण भी प्राप्त नहीं हो सकता।

जिसे शान्ति मिल जाती है वह अपेक्षा-रहित हो जाता है, सन्त हो जाता है। महात्मा हरिदासजी से पूछा— बाबा, कुछ सेवा? उत्तर है— कुछ नहीं चाहिए। तनिक विचार कर तो देखो, क्या है उनके पास। उनके पास वह अद्‌भुत निधि है जिसकी झाँकी कर वह निहाल हो गये। अब यह सब तो कूड़ा-करकट है। भला कौन ऐसा नासमझ होगा जो इस कूड़े को सिर पर लादेगा? तुम भी यदि वही सुख चाहते हो; गोपियों की भाँति प्रियतम के साथ क्रीड़ा करना चाहते हो तो श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करने का उपाय करो। उनकी कृपा होते ही शाश्वत शान्ति प्राप्त हो जायेगी। इसके लिए तुम्हें चाह करनी होगी; उनसे कहना होगा— प्यारे श्यामसुन्दर एक बार, केवल एक ही बार हमारे सामने आ जाओ न। माना मैं इस योग्य नहीं पर तुम्हारा बिगड़ता भी क्या है? अच्छा सामने नहीं आते तो तनिक आड़ में से ही अपने श्री चरणों को देख लेने दो। पीताम्बर का एक कोना ही मेरी दृष्टि में पड़ जाने दो। इस प्रकार की चाह ही तुम्हें उनसे मिलाने में समर्थ है। उनके मिलते ही सदा-सदा के लिए सुखी हो जाओगे। उनके मिलने में कठिनाई कुछ नहीं, केवल मात्र श्रीकृष्ण ने अपने अन्दर से ही अंहकार को निकालकर ओढ़ लिया है, अपने आप को ढक लिया है, बस उसे खींचकर दूर कर दो, मैला हो गया। इसे दूर करने के लिए मन इन सब प्रपंचों से हटा कर उन्हीं को देना होगा। जिसने मन उनको दे दिया उसी ने उनको पा लिया। उनको देने के पश्चात् फिर लौटाया नहीं जाता, फिर इस दृश्य प्रपंच में लगाने लायक वह नहीं रहता। हमारे परम

सन्त श्री परमहंस रामकृष्ण देव ने तो प्रमाण भी दिया है। जब उनके भक्तों ने उनसे कहा—"बाबा आप सर्वसमर्थ हैं। सब कुछ कर सकते हैं फिर यह अपना कैंसर ठीक क्यों नहीं करते, इससे हमें बड़ा दुःख होता है। उत्तर में उन्होंने बताया। भैया! जिस मन से मैं इसे ठीक करने का संकल्प करता, वह मन तो माँ के चरणों पर अर्पित कर चुका, अब क्या इस तुच्छ देह सुख के लिए उसे लौटाऊँ? यह हो नहीं सकता।" सो भैया, मेरे श्रीकृष्ण को पाने के लिए निश्चय करना होता है फिर उससे किसी भी मूल्य पर हटने की बात नहीं। सारी आसक्ति छोड़नी पड़ती है। अहंकार को गलाना पड़ता है। इसको गलाने के लिए किसी का होना पड़ता है, जिसे अन्तर्मन मान ले उसी के हो जाओ, काम बन जायेगा। स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण देव के चरणों में अपने आप को सदा के लिए सौंप दिया था तभी वे कुछ पा सके।

15. श्रीकृष्ण-प्राप्ति का उपाय

लक्ष्य प्राप्ति के लिए साधक के जीवन का कोई व्रत होता है। उस व्रत के गर्भ में संकल्प की शक्ति एक महान् शक्ति होती है। एकादशी का व्रत रखने वाले को क्या उस दिन कोई किसी भी मूल्य पर अन्न खिला सकता है? नहीं। इसी प्रकार यदि किसी के जीवन का व्रत हो श्रीकृष्ण मिलन, दृढ़ संकल्प हो कि अब श्रीकृष्ण के सिवा कुछ नहीं देखना तो क्या भला सम्भव है उसे कृष्ण न मिलें, यह हो नहीं सकता। उनसे मिलना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

जीवन में श्रीकृष्ण मिलन का संयोग प्राप्त हो, तब काम बने। यह सम्भव है। कुछ मुश्किल नहीं। कठिनाई है, जो तुमने कठिनाई मान रखी है वह। उनका, कृष्ण नाम ही इतना आकर्षण रखता है कि साधक स्वतः उनकी ओर खिंच जाता है। बस एक बार तुम्हें उनकी याद आ जाये, उनकी स्मृति में वह आग है जो तुम्हारे समस्त ताप-संताप झाड़-झंखाड़ों को जलाकर तुम्हें उनसे मिलने के योग्य बना देगी। एक बार तनिक चाह करके तो देखो—काम बनता है कि नहीं।

ब्रज की गोपियाँ परस्पर कहती हैं—"अरी सखी, उस कारे की याद मत करो वह ऐसा विषैला है कि उसका काटा फिर लौटता नहीं।" देखा, इसमें क्या रहस्य भरा है? अन्तर की उस वेदना की हूक है जो इस आह को चौगुना कर देती है। सचमुच भैया, इस कारे विषधर के काटे का विष उतरता नहीं। अन्य बड़े-बड़े विषैले नागों का काटा बच सकता है पर इसके काटे की तो दशा ही कुछ और हो जाती है। "प्रीति करि काहू सुख ना लह्यो" सच बात है। प्यार में कोई शिकवा शिकायत नहीं होती। उसमें तो जलना बस जलना है। पर डरो मत भैया! उस जलन में वह मिठास है कि घायल उसे छोड़ना नहीं चाहता। उसे जलने में सुख अनुभव होता है। वह उसका उपचार भी नहीं चाहता। यह अनुभवगम्य बात है। भैया! जो इसमें जलता है उसी को इसका पता लगता है, दूसरों को नहीं।

मीरा ने इस जलन का अनुभव किया उस श्याम सलोने पर अपने आप को न्यौछावर कर दिया। जिसको उस सलोने श्याम के प्यार का तनिक भी वास्तविक भान हो गया फिर उसके लिए संसार की कोई बात असम्भव रह नहीं जाती, वह उसे पाने के लिए अपने आप को खो देता है, जिसके द्वारा उसे अपने प्रियतम के मिलन की आशा होती है वह उसकी छोटी से छोटी चाकरी करने को तैयार रहता है। उसके इंगित पर अपने को मिटा देता है तब क्या प्यारे प्रियतम उससे दूर रह सकते हैं? अरे मेरे भैया! यह हो ही नहीं सकता। उस समय वह श्री राधे के प्यार में भी नहीं बँधते। बस दौड़ पड़ते हैं अपने प्यारे लाड़ले को छाती से लगाने के लिए। श्रीजी का प्यार भी उन्हें बाँध नहीं सकता।

प्यारे प्रियतम केवल हृदय देखते हैं जाति-पाँति नहीं। मुगल जाति का मुसलमान। नटखट का मन आ गया उसे प्यार करने का। क्या करें वह अपने स्वभाव से मजबूर, उन्हें आदत पड़ी हुई है प्यार करने की। जब तक दो चारों को गले नहीं लगा लेते, उन्हें चैन नहीं पड़ता। बस, क्या था। दे डाला स्वप्न

दर्शन। फिर भला जिसने उसे एक बार निहार लिया, उसके बिना क्षण भर भी रह सकता है? बस चल पड़ा मुगल उनके चित्र को अंकित करके। सावन मास की चढ़ी यमुना के किनारे पूछता है प्रियतम का पता। दुनिया के लोग क्या जानें उन पागलों की दुनिया का राज। कह दिया किसी ने— इसी यमुना में रहता है वह। सुनते ही कूद पड़ा मुगल उस अथाह जलराशि में। प्यार के नशे में पगी आँखों में भय नहीं होता, अविश्वास नहीं होता। ऐसे ही मनचले, सिरफिरे पा जाते हैं अपने प्रेमास्पद को। मुगल निहाल हो गया। क्या उसने कोई तपस्या की? कोई योग साधना की? कुछ नहीं। केवल प्यार की आग जो चाह की हवा से प्रज्वलित की थी। प्राणों की बाजी लगा दी थी। बात कुछ ऐसी ही है। परन्तु इससे मार्ग मिलेगा, इसलिए सुना रहा हूँ तुमको।

इंग्लैंड के सम्राट षष्ठ जार्ज ने अपने मन को एक छोटी जाति की महिला को दे दिया। राज्य उनके विरोध में खड़ा हो गया। सम्राट् ने साम्राज्य को मिट्टी के ढेले की भाँति ठुकरा दिया पर संकल्प नहीं छोड़ा। यह तो है उस तुच्छ मिटने वाली हाड़-माँस, मल-मूत्र के शरीर की बात। लोक-परलोक को मिटाने की बात। जीवन बिगाड़ देने की बात। बात कुछ भी हो परन्तु देखना यह है कि साम्राज्य का लोभ संकल्प को क्यों नहीं डिगा सका। यदि ऐसा प्यार और ऐसा संकल्प तुम्हारा श्रीकृष्ण के लिए हो जाये तो? मैं सच कहता हूँ यदि उससे प्यार करके कोई बिगड़ जाये तो फिर वह कभी नहीं बिगड़ेगा, उसके ही प्यार में यह विशेषता है। यह दुनिया का प्यार तो बरबाद करता है परन्तु इस सलोने का प्यार, क्या पूछते हो भैया! इसका तो मार्ग ही अनोखा है। उस अनोखे के प्यार को पाने के लिए तुम्हें कुछ नहीं करना है। सच कहता हूँ बड़ा सहज उपाय है। वह है, इस अहंता को निकाल फेंको, उससे सम्बन्ध न रखने वाली ममता का त्याग कर दो। बस हो गया काम। यह होने वाली बात है, कुछ कठिन नहीं भैया। यदि तुम्हें मेरे शब्दों पर विश्वास होता तो उसी क्षण तत्काल ही यह काम हो गया होता। संसार के इस झूठे सुख के लिए बहुत सी बातों का त्याग कर देते हो तो श्रीकृष्ण के लिए यह भी नहीं

कर सकते? डरो मत, निहाल हो जाओगे। कह दो एक बार, श्रीकृष्ण यह सब तुम्हारा है।

16. प्रियतम मन-मन्दिर बसे

भारत हमारा मन्दिर है। इस मन्दिर में हमारे प्रियतम का सदा निवास है। समय-समय पर इस पर संकट आये, उन संकटों की निवृत्ति के लिए प्रभु के आगे विनती की, प्रभु ने किसी न किसी रूप में आकर इसकी रक्षा की। आज भी भारत-मन्दिर पर संकट के बादल छाये हैं। इस मन्दिर में बैठकर हम अपने देवता की आराधना करते हैं। अतः इसकी रक्षा अवश्यम्भावी है। इसके लिए हमें नियमित प्रभु के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए। प्रभु सर्वसमर्थ हैं। यदि उनसे कहोगे कि— मेरे प्रभु! इस कचरे को साफ करते समय तनिक हमारे मन्दिर की ओर नजर रखना तो तुम देखोगे तुम्हारे देश की रक्षा अवश्य होगी। प्रभु कितने उदार हैं, कभी सोचा तुमने? क्या काम पड़ता है! तुम्हें अपने राग-रंगों से अवकाश ही कहाँ। तुमने देखा नहीं, जन की पुकार पर अपने लाड़ले की बात रखने के लिए वह अपनी बात, अपनी प्रतिज्ञा तक छोड़ देते हैं। महाभारत के समय अर्जुन से आप कहते हैं—"अर्जुन! अब भी विचार कर ले। एक ओर मेरी अजेय नारायणी सेना है, दूसरी ओर मैं अकेला, वह भी शस्त्र न ग्रहण करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा लिए हूँ। तुम क्या चाहते हो?" प्रभु मुझे केवल तुम्हीं से काम है, मैं तुम्हीं को चाहता हूँ। "अभी सोच ले मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा।"—सोच लिया भगवन्! तुम जानो। इस प्रकार जो उन्हें चाहता हो, भला उससे वह दूर हो सकते हैं? कभी नहीं।

इसी प्रकार यदि तुम्हारा हृदय भी कह दे "मैं केवल तुम्हें ही चाहता हूँ" तो तुम्हारे रथ की डोरी भी सम्हालने को तैयार बैठे हैं। उनका स्वभाव ही ऐसा है भैया। बस बन गये अर्जुन के रथ के सारथी। इधर प्रतिज्ञाबद्ध हैं पर अर्जुन की रक्षा का भार जो ले चुके हैं। उधर पितामह भीष्म प्यारे प्रियतम को योद्धा के रूप में देखने की चाह लेकर प्रण कर डालते हैं **"मैं माँ गंगा के दूध को लजाऊँ जो श्रीकृष्ण को आज शस्त्र ग्रहण न कराऊँ।"** क्या पूछते हो इस

अनोखे रिझवार की रीझ। भूल गये अपनी प्रतिज्ञा, कर दी अपने भक्त की साध पूरी। ऐसे प्रियतम से प्यार करने को तुम्हारा मन नहीं करता? जगा लो भैया, प्रिय मिलन की चाह को। जला लो, प्यार की आग को। क्या मुझसे पूछते हो प्यार कैसे किया जाता है? यह भी भला कुछ पूछने की बात है? दुनिया की अन्य चीजों से प्यार करने के लिए क्या तुमने किसी से पूछ, कोई साधना की? कुछ नहीं, हो गया सहज स्वभाव से। इसी प्रकार यदि कृष्ण से प्यार हो जाय, तुम्हारी आँखें प्यासी हो जायें, सोना, रोना, खाना, बोलना सभी कुछ उसके लिए हो जाये तो तुम्हारा काम होते देर नहीं। गोपियों की भाँति उसके बिना चारों ओर सूना दिखने लगे।

गोपियाँ कहती हैं—**"भैया ऊधो! जब से प्यारे श्याम-सुन्दर मथुरा चले गये, तब से यह वृन्दावन सूना हो गया। यह कुंजें जो बारह मास लहराती थीं आज प्यारे के वियोग से सूख गयी हैं। यह यमुना बहन, अपना इठलाना छोड़कर मौन हो गयी है। यह गायें, ये ग्वाले, यह सुगन्धित समीर सब कुछ उनके बिना उदास है। यह समीर, शीतल, सुगन्धमय समीर हमारे लिए विषभरी स्वाँस बन गई है।"** यह है गोपियों की दशा। इसी प्यार में बंधकर वह प्रियतम आ जाता है। रह नहीं सकता। खूब जप किया, तप किया, शरीर को सुखा कर काँटा बना डाला, परन्तु उस प्यारे के प्यार की एक छटा भी नहीं मिली। क्यों? आँखों में प्यास नहीं जगी, यदि आँखों में प्यास जग जाती, तो चैन कहाँ! वह तो खोजता फिरता है अपने प्रियतम को। यमुना से पूछता है— मेरे प्रियतम, तुम्हारे पास आये थे, तभी तुम प्रसन्न हो। तुम्हारा श्याम रंग मेरे श्याम के मिलन का प्रतीक है! क्या तनिक मेरे ऊपर भी कृपा कर दोगी? मुझे उनसे मिला दोगी। कदम्ब के पास जाकर उससे लिपट जाता है, प्यारे कदम्ब तुम्हारे तले खड़े-खड़े वंशी बजाने वाले मेरे वंशीधर किधर चले गए? मुझे बता दो भैया? मैं उनके बिना बेहाल हूँ। वंशीवट पर बैठ प्रियतम की बाट जोहता है। यहीं तो मेरे प्रियतम नित्य वंशी बजाते हैं। आते ही होंगे। यही साध, यही आँखों की प्यास उन्हें मिलाने में समर्थ है, अन्य साधन नहीं।

जिन्होंने उसे पा लिया है, उनके पास जाकर तनिक गिड़गिड़ाओ तो देखो कितनी जल्दी काम बनता है। सन्त, कृपा के स्वरूप होते हैं। महान् उदार होते हैं। वह अपने भंडार को लुटाने को तैयार बैठे रहते हैं। कोई दिल वाला उनके पास जाय तो सही। शबरी की आँखों में प्यास थी। प्यारे प्रियतम को देखने की चाह मन में सँजोकर वह पगली शबरी पहुँच गयी मतंग ऋषि के आश्रम पर। ऋषि ने देख लिया, इन आँखों में प्यास है, यह अधिकारी है उस सुधा पान की। फिर भला देर कहाँ? शबरी को आश्रय मिल जाता है। ऋषि समाज मतंग का बहिष्कार तक कर देते हैं परन्तु वह शबरी को निराश्रय नहीं करते। इस बहिष्कार का मूल्य उन पागलों की दृष्टि में कुछ नहीं होता। उन्हें तो प्यारे की उस रूपमाधुरी का पान करा देने से ही सुख मिलता है। यही है उनकी सहज कृपा। जिसने इसे पा लिया, निहाल हो गया। जिसको इस प्यार का नशा चढ़ जाता है वह पागल हो जाता है उसे पाने के लिए। वह प्यारा भी ऐसा अनोखा है, उसे भी प्यार करके ही चैन पड़ता है।

सूरदास, आँखों से दिखता नहीं मार्ग जानता नहीं पर कुछ भी हो, जो तूफान उठा है उसे रोक सकने की सामर्थ्य नहीं। चल पड़े ब्रज के बीहड़ मार्ग पर प्रियतम की खोज में। गिरते हैं, उठते हैं, ठोकर लगती है, कराह उठते हैं, परन्तु जा रहे हैं। कहाँ? प्यारे की खोज में, मिलन की तमन्ना लेकर। सूरदास का हाल देखा, मचल गया उस प्यारे का कोमल, अति उदार हृदय। आ गये चट ग्वाला बनकर—"बाबा कौन हो, कहाँ जा रहे हो?" अन्धा हूँ भैया, साधन हीन भी हूँ परन्तु सुन लिया है उस कन्हैया का नाम। वृन्दावन में रहता है। बड़ा ही उदार है, बड़ा सलोना है। मन मचल उठा है उसे देखने को पर सामर्थ्य नहीं। "मैं ले चलूँ बाबा।" हाँ हाँ भैया मैं तुम्हारा अहसान न भूलूँगा। मुझे ले चलो मेरे प्यारे के पास। हाथ पकड़ा, छूते ही बिजली दौड़ गई। बाबा ने समझ लिया यही है मेरा वह छलिया कन्हैया। बस भैया अब मेरा समय हो गया, मैं अब विदा लूँगा। पर तुम उससे मिलना चाहते हो तो चाह पैदा करो। अन्तर्मुख हो जाओ। अन्तर में उन्हें ढूँढ़ो, वह वहीं मिलेंगे बाहर नहीं। हिरण्याक्ष

की भाँति बाहर खोजने वाले दैत्यों को कुछ मिलेगा नहीं। तुम्हारा प्रियतम तुम्हारे मन मन्दिर में ही बैठा है, कहीं दूर नहीं है।

17. कृष्ण मिलन की रीति

यह ब्रज की गोपियाँ गोरस बेचने भी अपने लिए नहीं प्रियतम से मिलन की तमन्ना लेकर जाती हैं। उन्हें घर में अच्छा नहीं लगता, प्यारे प्रियतम को देखने की चाह प्रतिक्षण बनी रहती है क्यों? इसलिए कि गोपियों ने अपने आपको श्रीकृष्ण का मान लिया है, मन उनको दे दिया है। इसी प्रकार यदि तुम भी उनके हो जाओ, मन उनको दे दो, फिर देखो क्या रंग आता है। मेरे कहने से एक बार करके देखो तो सही, यदि कुछ न मिले तो इसके जिम्मेवार हम हैं। तुम्हारे भी एक पंथ दो काज हो जायें। आजमायश भी हो जाये और प्यारे का प्यार भी मिल जाये। क्या पूछते हो उस अनोखे रिझवार की रीझ, कितना उदार है वह। बस कुछ कहा नहीं जाता। अरे भैया! बाजार से कोई चीज खरीदते हो तो नमूना देखते हो न। तो मेरी चीज का भी तनिक नमूना देखो तो सही। तुम्हें अपने आप पता लग जायेगा।

यहाँ जो अन्य चीजों में तुम्हारी आसक्ति है, सच मानो बड़ी दुःखद है। बुढ़ापा आ गया, आँखें धोखा देने लगीं, कानों ने भी सुनना छोड़ दिया, हाथ पाँव काँपने लगे, गर्दन हिलने लगी, चलने की भी सामर्थ्य नहीं, पर मरना नहीं चाहते, अभी भी कोई बचा ले यही तमन्ना शेष है। कितनी आसक्ति है! यही दुःख का कारण है। यदि विचार कर देखो तो ऐसे जीवन में क्या सुख है? हर एक को मौत का भय लगा हुआ है, अभाव से जीवन दुःखी है। क्या धनी, क्या गरीब, क्या विद्वान्, क्या मूर्ख सभी मृत्यु के भय से भयभीत हैं, कोई न कोई अभाव बना ही रहता है। अपने से जो कुछ अधिक समर्थ है उनके आगे आकर गिड़गिड़ाते हैं, परन्तु फिर भी निश्चिन्तता नहीं, सुख नहीं। मैं कहता हूँ यदि कहीं तुम उस सर्वसमर्थ के चरणों में अपने आपको डाल दो, एक बार उनके हो जाओ। बस निहाल हो जाओगे। फिर तुम्हें भटकना न पड़ेगा। हृदय में उनसे प्यार नहीं है। अनुराग से भी शून्य है।

अपना उनको माना नहीं। साधन भी कुछ बनता नहीं। इधर तो यह हाल है और उधर काल के भय से भयभीत हैं। क्षण-क्षण, पल-पल मृत्यु का भय है, अभाव से जीवन दुःखी है। अनेक प्रकार की चिन्ताओं ने घेर रखा है, देखा कितने दुःखी हैं। यदि इस दुःख से दुःखी होकर चिन्ता से परेशान होकर, भय से भीत होकर भी मन मुड़ जाय, किसी भी प्रकार उनकी ओर चला जाय, उनके चरणों में। इस दुःख से छूटने के लिए, रक्षा की पुकार के बहाने ही तुम उन्हें स्मरण कर लो, बस वह छाती से लगा लेंगे यह उनकी टेब है, उन्हें टेब पड़ी हुई है भैया। विभीषण के लिए तो उन्होंने कहा ही है—

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

—श्रीरामचरितमानस 5.43.8

यही तुम्हारी मंजिल का निशान है, इसी को लेकर चले जाओ और प्यारे के चरणों में सिर झुका दो। मेरा भी कन्हैया से प्रणाम कह देना।

18. उसकी उदारता

एक ओर हमारी उपेक्षा, हमारी कृतघ्नता, हमारी ओर से विस्मृति, साधनहीनता-हमारा तो यह हाल है और दूसरी ओर प्यारे की अपार करुणा, असीम दुलार, अहैतुकी कृपा! कितने उदार हैं वह! बरस रही है उनकी कृपा, करुणा, दया, उदारता। क्या संसार के किसी भी व्यक्ति से यह आशा हो सकती है? बिना स्वार्थ के कोई नमस्कार तक नहीं करता।

19. समय चूकि पुनि का पछताने

भगवान् श्रीकृष्ण से मिलने के लिए उनका होना ही पड़ेगा। किसी प्रकार एक बार उनके हो जाओ। नौका के टूटने से पूर्व किनारा पकड़ लो। शरीर के गिरने से पहले प्रभु का प्रत्यक्ष अनुभव कर लेना चाहिये। यदि चूक गये तो फिर पछताने से काम नहीं बनेगा।

20. सच्ची उपासना

यदि कोई सत्कार्य के द्वारा आगे बढ़े तो दुनिया के लोग उसे बढ़ने नहीं

देते। इन्द्र भी यदि किसी को इस प्रकार का कुछ साधन करते देखता है तो विघ्न उपस्थित करने के लिए काम, बसन्त व माया आदि अपने सहचरों को भेजता है। उसे पथ भ्रष्ट कर देता है। अब देखना यह है कि यह काम क्या है, इसका स्वरूप क्या है? तो भैया! यह काम पंचमुखी बाणों का प्रयोग करता है। यदि उन बाणों का प्रभाव प्रतीत होने लगे तो समझ लो इसने तुम्हें घेर लिया। यह बाण हैं— **पहला बाण है शोषण**, इसके लगते ही हृदय से प्रभु के अनुराग का शोषण होने लगता है और वस्तु-अनुराग जागृत हो जाता है। प्रवृत्ति भोगमयी हो जाती है।

दूसरा है उद्दीपन, भोगों की भावना प्रबल रूप से उद्दीप्त हो जाती है। **तीसरा है तपन**, जब प्रवृत्ति भोगमयी हो जाती है और किसी कारण वश प्राप्त नहीं हो सकती तो अत्यन्त ताप होता है, जलन होती है। भोगों की इच्छा बलवती होकर अत्यन्त सन्तप्त करती है। **चौथा है सम्मोहन**, यदि किसी प्रकार इच्छानुसार भोग प्राप्त हो गये तो इतना रत हो जाता है भोगने वाला कि उसके मोह को किसी प्रकार छोड़ नहीं सकता, कष्ट पाकर भी उसका त्याग नहीं कर सकता। **पंचम बाण है उन्माद**, इसके लगते ही ऐसी उन्मत्त अवस्था हो जाती है कि फिर भले का भी ज्ञान समाप्त हो जाता है, उसे कर्तव्य, अकर्तव्य का बोध नहीं रहता। अँधेरा हो जाता है। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा।

कैसी दुर्दशा है, काम पीड़ितों की। जिसको यह पंच मुखी बाण वेध देते हैं उसका जीवन बिलकुल अंधेरे में चला जाता है। माया आकर सपरिवार उसके ऊपर घेरा डाल देती है। योग, साधन, जप, तप, चिन्तन-स्मरण, स्वाध्याय आदि सभी में अरुचि हो जाती है। इससे क्या होगा, उससे क्या होगा? इस प्रकार की दोष बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। इस सबसे उबरने का एक ही और अत्यन्त सरल उपाय है, प्रभु के हो जाना। बस, और दूसरा कोई तरीका मैं नहीं जानता। भैया! मुझे तो जो दीख रहा है वह तुम्हें बता रहा हूँ। अब सवाल यह आता है कि प्रभु के कैसे हो जायें? वह सामने हो तो झट से

उनके चरणों में गिर पड़ें, कह दें— हम तुम्हारे हैं। अब कहें भी तो किससे कहें। ठीक है। परन्तु इसका भी उपाय है शरणागति, दीक्षा। दीक्षा का अर्थ कान फूँक देना, कंठी पहना देना, माला हाथ में दे देना नहीं है। दीक्षा का अभिप्राय है हृदय का वरण। सच्चे हृदय से एक बार वरण होता है, रुक्मिणी की भाँति। यदि तुमने उनका वरण कर लिया तो तुम उनके हो गये फिर माया का प्रहार तुम्हारे ऊपर नहीं हो सकता। प्रभु के सेवक की ओर माया देख नहीं सकती। तुलसीदासजी ने मानस में बता दिया—

मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥

—श्रीरामचरितमानस 2.29.2

सो भैया, यह माया प्रभु के सेवक से तो डरती है। दीक्षा का वास्तविक स्वरूप है संस्कृत होना अर्थात् संस्कार उत्पन्न हो जाना। संस्कार के पैदा होते ही पूर्ण निर्मलता आ जाती है। यह उन सन्तों के संग से होता है जिन्होंने प्रभु को प्राप्त कर लिया है। निर्मल अन्तःकरण में प्रभु की स्मृति जागृत हो जाती है। स्मृति के जागृत होते ही साधक निष्पाप हो जाता है, यही उपासना है। उपासना का अर्थ है— निष्पाप होना। यदि निष्पाप हो गये तो प्रभु की कृपा भी अवश्य होगी और कृपा हो गयी तो मिलन तो होना ही है। डटे रहो, यदि डटे रहोगे तो काम तो होना ही है, किसी न किसी दिन हो ही जायेगा।

21. आसक्ति-त्याग

लक्ष्य प्राप्ति के लिए बढ़ने में बाधा क्या है, यह देखना होगा। फिर उसका निदान करके चलने से काम अवश्य बनेगा। देखा तो मालूम हुआ कि मूल कारण यह इन्द्रियाँ हैं; यही साधक को पथ भ्रष्ट कर देती हैं। कोई विषय इनसे सम्बन्ध रखने वाला सामने आया कि यह उसी ओर दौड़ पड़ीं। वृद्धावस्था आ गई, चलने की सामर्थ्य नहीं परन्तु देखने की तमन्ना पूरी नहीं हुई, दूसरों की खुशामद करते हैं किसी प्रकार मुझे वहाँ तक ले चलो। दाँतों ने जवाब दे दिया, पाचन क्रिया अपना काम छोड़ बैठी, परन्तु खाने की लालसा न मिटी।

किसी प्रकार कूट-पीस कर थोड़ा बहुत तो खा ही लेंगे। कितना अँधेरा है। जीवन घोर अँधेरे में जा रहा है। कितनी आसक्ति है भोगों में। परन्तु भैया! तनिक तो विचार करो। इसके परिणाम पर एकबार तो नजर डालो। क्या है इसमें? देखा तो कुछ नहीं, वही मल-मूत्र बनता है। यदि यह बात समझ में आ जाये और तनिक एकबार बस एक ही बार मन इधर से हट जाये तो काम तो बना-बनाया है। एक बात पर थोड़ा विचारो—भोजन है जो सब प्रकार तुम्हारी रुचि का है परन्तु इसमें थोड़ा सा विष डाल दिया तो तुम खाओगे? नहीं, किसी भी मूल्य पर नहीं। ठीक इसी प्रकार संसार के भोग भी विष तुल्य हैं, जब यह मालूम हो गया तो मन हट जाना चाहिए।

अब यह कहा जाये कि कैसे मानें वे विष तुल्य हैं। तो क्या इनसे कभी भी कोई भी सुख मिला? संसार और शरीर में आसक्ति के दो मुख्य कारण हैं- संतति और संपत्ति। तुम स्वयं विचार करो। क्या इन दोनों में से तुम्हें कोई सुख पहुँचा सकती है। मुझे तो लगता है, नहीं। देखलो, संतति, जिसे तुमने अनेक कष्ट पाकर पाला-पोषा, मुँह का ग्रास खिलाकर बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, बड़े हो गये, चले गये, भूल गये सब। तुम्हारे कुछ भी काम न आये। जिनसे बड़ी आशाएँ बँधी थीं उन्होंने समय पर बात भी नहीं पूछी। पर तुम्हारी आसक्ति अभी भी शेष है। यही तो आसक्ति है। चिड़ियाँ सब कुछ जानती हैं परन्तु फिर भी अपने बच्चे के मोह में न जाने कहाँ-कहाँ से चुग्गा चोंच में भर कर लाती हैं, बच्चों को खिलाती हैं परन्तु बच्चों के पर निकलते ही बच्चे भाग जाते हैं। तुम्हारा भी यही हाल है परन्तु तुमने कभी सोचा नहीं। यदि सोचते तो मन हट जाता। अरे भाई, जब तुमने देखा इस बात से हमें कोई लाभ नहीं, हमारा कोई हित नहीं तो मन स्वयं हट जाता है, प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इस सम्बन्ध में मैं अपनी एक बात बताऊँ। यह बात मैं तुम्हें अपनी प्रशंसा के लिए अथवा प्रभाव जमाने के लिए नहीं बता रहा। बता इसलिए रहा हूँ कि किसी प्रकार तुम्हारा मन मुड़ जाये और श्रीकृष्ण के चरणों में जा लगे।

एक बार एक बहुत अच्छे ज्योतिषी से मेरा मिलना हुआ। बड़ी प्रशंसा सुनी थी उनकी। लोगों का जमघट जमा रहता। हम भी किसी प्रकार पहुँच गये। सब अपना-अपना प्रश्न पूछ रहे थे। हमने पूछा अपनी आयु के सम्बन्ध में तो उन्होंने 39 साल 10 महीने 9 दिन की बताई। सुनते ही तत्काल सब से मन हट गया और यह चिन्ता हो गई कि इसी समय में काम बना लेना चाहिए। काम सब होते पर कुछ नहीं होता। सब कुछ सारहीन हो गया। तो भैया, यदि तुम्हें भी यह सब सार-हीन दिखने लगे तो तत्काल आसक्ति छूट जाये और काम बन जाये। इसके लिए तुम्हें, जिस पर तुम्हारी आस्था है, जिसको तुमने हृदय से वरण किया है, जिनके शब्दों पर पूरी निष्ठा है, पूर्ण विश्वास है, बनने-बनाने से काम नहीं चलेगा, बनने वालों को तो एक दिन बिगड़ना पड़ता ही है, उनकी बात मानकर चलो, उनके शब्दों को प्रवेश होने के लिए अन्तःकरण के कपाट खोल दो। बीज वपन होने दो। यदि बीज को पड़ जाने दिया तो उसका अंकुरित होना अवश्यम्भावी है, अंकुरित होने पर उसकी रक्षा करते हुए उसे पल्लवित, पुष्पित होने दो। जब पत्ते, फूल लग गये तो फल लगना भी आवश्यक है। यह हो नहीं सकता कि फल न लगें और यदि सन्देह करोगे कि जाने होगा कि नहीं तो काम बनना नहीं है। शंका मत करो। इसी प्रकार यदि सतगुरु के शब्दों पर विश्वास करके निष्ठा के साथ तुमने अन्तःकरण में उनको धारण किया तो अवश्यमेव श्रीकृष्ण प्रेम का पौधा लगेगा, बड़ा होगा, फूलेगा, अनुराग के फूल से और निकलेगा श्रीकृष्ण रूपी फल। सो भैया! सन्देह, भ्रम को छोडकर जमे रहो, एक दिन अवश्य आवेगा जब कृष्ण मिलन होगा। यह हो नहीं सकता कि न हो।

22. सत्य का दर्शन

खेतिहर (किसान) जब धरती में बीज बोता है तो उसे यह शंका नहीं होती कि जाने उगेगा कि नहीं और वह यह नहीं सोचता कि यह 10 सेर अनाज बेकार मिट्टी में डाल दिया। नहीं, उसे पूरा विश्वास है कि उसे इसके बदले में अवश्य 60 मन अनाज प्राप्त होगा। अतः बीज बोने के पश्चात् उसे निराशा

नहीं होती इसी प्रकार यदि आप लोग भी प्रार्थना रूपी अनाज श्रीकृष्ण रूपी खेत में बोओगे तो वह निष्फल नहीं हो सकता, अवश्य ही वह एक न एक दिन फल प्रदान करेगा। इसलिए तुम्हें नियमित प्रभु के चरणों में प्रार्थना रखनी चाहिए। प्रार्थना में बहुत बड़ा बल है, अपार शक्ति है। प्रार्थना बहुत बड़ा सम्बल है, सहारा है। अभी कल परसों की ही बात है, मुझे एक व्यक्ति ने सुनाया था कि दो देवियाँ श्री गिरिराज जी की परिक्रमा को जा रही थीं तो उन्हें मार्ग में एक बालक मिला उसने उनसे पूछा तुम कहाँ जा रही हो? जहाँ तुम जा रही हो, वहाँ अब मैं नहीं हूँ। मैं तो मोर्चे पर हूँ। देखा, यह क्या था? यह प्रार्थना का ही बल था जो प्रभु स्वयं मोर्चे पर उपस्थित हैं और जहाँ वह स्वयं हों और विजय न हो यह कैसे हो सकता है। इसीलिए भैया मैं तो यही कहूँगा कि प्रार्थना की उपेक्षा मत करो।

यह तो हुई प्रार्थना की बात। अब मैं आपसे कुछ कहूँगा। जो कुछ कहूँगा वह निश्चय किया हुआ है। मैं कुछ कहूँगा और आप लोग सुनेंगे। पर केवल सुनने से, वह भी कानों के सुनने से काम न चलेगा। कानों से सुना हुआ लाभप्रद नहीं होता, सुना तो हृदय से जाता है। यदि तुमने हृदय से सुना और धारण किया तो काम अवश्य होगा। लोग तो कानों से सुनते हैं इसीलिए लाभ नहीं होता। उलटा करने से लाभ कैसे हो यदि मुँह का कार्य, आँखों से लेना चाहो तो भैया, वह तो कष्ट दायक होगा ही इसमें किसी का क्या दोष! तो मैं तुमसे कहता हूँ कि कोई व्यक्ति है, उसका लड़का है। यदि पिता को कोई खाने की वस्तु मिलती है तो वह कहता है बच्चे को दे दो, स्वयं नहीं खाता, भूखा रह जाता है। ओढ़ने के लिए वस्त्रों की कमी है तो स्वयं बैठकर पेट में घुटने मोड़कर रात व्यतीत कर देगा पर बच्चे को उढ़ायेगा। उसे सुख से खाता-सोता देख अपार सुख का अनुभव करता है। क्यों, ऐसा क्यों? इसीलिए कि वह बच्चा उसकी आत्मा है। वह बच्चे से प्यार नहीं करता अपनी आत्मा से प्यार करता है, यदि यही भावना आपकी फैलकर संसार के सभी बालकों में बन जाये, सब बच्चों में तुम अपना ही बच्चा देखने लगो तब देखोगे क्या

होता है? उससे भी ऊपर उठकर यदि संसार के सभी प्राणियों में अपनापन दिखने लगे, विश्वबन्धुत्व जाग्रत हो जाये, सीमा टूट जाये तब क्या वह असीम आपसे अलग रह सकता है?

मुझे तो ऐसा ही लगता है कि सब मेरे हैं—कोई पराया नहीं। कोई शत्रु नहीं, सभी अपने हैं, सभी मित्र हैं। मुझे पाकिस्तानी भी शत्रु नहीं लगते। यह होता है, कोई अनहोनी बात नहीं पर होगा तब, जब उसको पहचान लिया जाये। 'हैं' तो एक मात्र वही श्रीकृष्ण हैं और कोई 'नहीं' है। यह कहने से नहीं होगा, यह तो कहने वाले की क्रिया बतायेगी, कथनी से काम नहीं बनता। मन, वाणी और क्रिया की एकता से जीवन बनता है। "हैं तो एक मात्र श्रीकृष्ण हैं" यदि उनसे पहचान हो जाये, पहचान होते ही प्रीति हो जाती है और जिससे प्रीति हो गई वह न मिले यह कैसे हो सकता है। यह पहचान होती है एक मात्र सत्य के संग से। सत्य के संग में कृष्ण अनुभूति होती है और क्लेशों से छुटकारा मिलता है। जब तुम्हें सत्य के द्वारा यह विदित हो गया कि यह शरीर असत्य है इससे मतलब नहीं रखना है तो मृत्यु का भय समाप्त हो गया। अरे भाई, जो है ही नहीं तो मरेगा क्या? जब देह असत्य है तो इससे सम्बन्धित सभी चीजें असत्य हैं, ममता छूट गई, अँधेरा मिट गया, प्रकाश के रखते ही अँधेरा समाप्त हो जाता है फिर कोई अन्य प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जो चीज असत्, यानी है ही नहीं फिर उसका अपमान क्या होगा? यदि कोई गाली दे तो बुरा लगेगा क्या? कतई नहीं, बिल्कुल नहीं। जब असत्य की सत्ता समाप्त हो गई तो सत्य से नाता जुड़ गया। इधर टूटा उधर जुड़ गया। देर नहीं लगती।

असत् नहीं, तो रह गया 'है' और 'है' कौन, वही तुम्हारा मुरलीधर। उससे नाता जुड़ गया, तो मिलन होना तो अवश्य ही है। सो भैया, सत्य को पहचान लो। उसी का संग करो। सत्य ही जीवन है, सत्य ही प्राण है, सत्य ही योग है, सत्य ही जप है, सत्य ही तप है, सत्य का ही दूसरा नाम श्रीकृष्ण है। सभी कुछ सत्य है। यदि सत् को छोड़कर असत् का सहारा लिया तो डूबना

पड़ेगा। सत्य की पहचान होने पर असत् की ओर वृत्ति जा ही नहीं सकती। जो सेब खा चुका, उसका मन क्या बेर चाहेगा?

23. लक्ष्य प्राप्ति

कुछ शताब्दी पूर्व, उस समय जब कौरव-पांडव युद्ध का समय था, जिसे महाभारत का नाम दिया गया, उस समय का युद्ध, धर्म युद्ध था। अधिकार के लिए परस्पर लड़ाई होती थी। एक पक्ष विपक्षी को पराजित करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करता था। दोनों ही पक्ष अपने सहयोगियों से सहायता की आशा करते थे, यत्र-तत्र सहायता की याचना करते, विजय की कामना रखते। यह सब होते हुए भी धर्म का पूर्ण पालन करते थे। वहाँ युद्ध क्षेत्र में परस्पर शत्रु थे, युद्ध विराम के पश्चात् सब एक थे। किसी को, किसी से, किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं रहती। सब परस्पर मिलते, बैठते, बातें करते।

युद्ध आज भी हो रहा है परन्तु आज मानव अपनी मानवता खो चुका है। यदि मानवता धारण कर विजय की कामना लेकर प्रभु से रक्षा तथा विजय के लिए प्रार्थना की जाये तो अवश्य रक्षा होगी, अवश्य विजय प्राप्त होगी। अत: प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है प्रभु के समीप प्रार्थना करने का। प्रत्येक का कर्तव्य है सहयोग देने का। वैष्णवों का कर्तव्य है प्रभु से प्रार्थना का, वैश्य का धन के द्वारा तथा मजदूर भाई अपने परिश्रम द्वारा देश को सहयोग प्रदान कर सकते हैं। इसी प्रकार भारत का प्रत्येक प्राणी इस युद्ध-यज्ञ में अपने सहयोग की आहुति डाल सकता है। परन्तु मैं देखता हूँ कि मानवता से लोग कोसों दूर चले गये। आज का युग मुझे नारीयुग दिख रहा है। मनुष्य स्त्री-मुखापेक्षी हो गया। उसके संकेत पर अपने आपको मिटा देना उसका ध्येय रह गया, मंत्रित्व का कार्य सालों (पत्नी का भाई) के हाथ में रह चला, माता पिता का अनादर होते मैं देख रहा हूँ।

तो भैया, यह सब विनाश का कारण, घोर पतन का कारण है। अब मैं तुम्हें मानव, उसकी आवश्यकता तथा लक्ष्य प्राप्ति का उपाय बताऊँगा। आज के मानव जीवन की माँग है अर्थ (धन)। प्रत्येक व्यक्ति धन प्राप्ति की चाह को पूर्ण करने में लगा है। क्या त्यागी, क्या वैरागी, क्या साधु, क्या सन्त? सभी हैं, उसमें मैं भी शामिल हूँ। सभी अर्थ की कामनापूर्ति में लगे हैं और उसकी पूर्ति के लिए दम्भ का, छल का सहारा लेते हैं। यही है घोर पतन का कारण। ऐसा क्यों हो रहा है? इसलिए कि उन्हें अपने आप पर भरोसा नहीं है। मैं कहता हूँ यदि वृत्तियाँ ठीक हैं, मन निर्मल है तो जिसको आज्ञा दोगे, भाई आज्ञा की भी आवश्यकता नहीं, इच्छा मात्र से कार्य होगा, यदि आवश्यकता है तो डोरे क्यों डालते हो, साफ कह दो। मार्ग साफ है। स्वामी राम के जीवन से यह मिलता है। अमेरिका जाते समय जहाज में बैठकर जहाज के कैप्टन, टिकिट कलक्टर से कह दिया "तेरे साथ जा रहा हूँ, तेरे घर ठहरूँगा" जो सन्त हैं, जिन्होंने सत्य का अनुभव कर लिया है, वह डोरे नहीं डालते, उनका जीवन दर्पण होता है— जैसा है, वैसा दिखाई देता है परन्तु यह बने हुए संत या साधु, जो भी कहा जाये, इनका दर्पण उल्टा दिखाता है। इसी पर यह अन्धे लोग लट्टू हो जाते हैं और नाक रगड़ते हैं। धन उनके चरणों पर न्यौछावर करते हैं। वह फिर भी यही कहते हैं दुनिया को दिखाने के लिए कि हमें नहीं चाहिए। यही विनाश की छाया है। वास्तव में आवश्यकता है एकता की, महान् धैर्य की, नैतिक चरित्र की, सत्य की। परन्तु मैं देख रहा हूँ आज मनुष्य इससे दूरातिदूर चला जा रहा है घोर विनाश की ओर।

मानव जीवन का लक्ष्य है— भगवत्-प्राप्ति जो सत्य के द्वारा हो सकती है। परन्तु लोगों का कहना है सत्य से काम नहीं बनता। मैं कहता हूँ असत्य से काम नहीं बनता। असत्, जिसकी कोई सत्ता ही नहीं, भला उससे काम कैसे बन सकता है। कोई व्यक्ति यदि हवा को पकड़कर ऊपर उड़ना चाहे तो मुझे तो नहीं लगता कि वह सफल हो सकेगा। नहीं, यह सम्भव ही नहीं। भावना यदि सत्य है तो इच्छा मात्र से कार्य पूर्ण होते हैं, सो भैया! सत्य का सहारा लेकर धैर्य-पूर्वक जो बढ़ेगा उसे अवश्य लक्ष्य-प्राप्ति होगी।

24. अधिकार प्राप्ति

साधक को सफलता प्राप्त करने के लिए दो कार्य कर लेने चाहिएँ; प्रथम हृदय के सरोवर में जो प्रभु का अनुराग-रूपी जल भरा है उसमें जो सांसारिकता का कचरा पड़ गया है, उसको विचारों की चलनी में छानकर निर्मल कर लें तो सफलता अतिशीघ्र प्राप्त हो सकती है दूसरी बात जो सीखा है सुनकर, पढ़कर, देखकर सब को भुला देने पर देर नहीं लगती, लक्ष्य प्राप्ति में।

विचारों की चलनी से अभिप्राय है सत्, असत् का विवेक। जो असत् है विचार द्वारा विदित हो गया उसको तत्काल निकालकर फेंक देना चाहिए, यदि कार्य को क्रियान्वित न किया तो केवल विचार मात्र से काम न चलेगा। जो वास्तविकता है वही सनातन धर्म है और यह जितनी भी कृत्रिमता है सब अधर्म है। सत् का स्वरूप है वास्तव। किसी व्यक्ति का फोटो है। उस फोटो का स्वरूप क्या है? जड़, असत्। उसमें कोई सामर्थ्य नहीं, कोई हिलन-डुलन नहीं। यह है चित्र। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह जो कुछ दिखता है सभी चित्र हैं। प्रभु राम, सीताजी को बताने के बहाने इसका वास्तविक स्वरूप बता रहे हैं मानस में **"चित्र लिखित कपि देखि डेराती"** इससे उन्होंने संकेत कर दिया यह जो दीख रहा है—चित्र लिखित बन्दर ही है। इसकी सत्ता कुछ नहीं। यदि विचार द्वारा यह जान लिया तो सफलता मिलने में देर नहीं। यदि यह कूड़ा छानकर फेंक दिया तो निर्मल-अनुराग से हृदय सरोवर भर जायेगा, तब उसमें आनन्द से गोते लगाओगे तो जो सीखा है, सब भूल जायेगा। अपने आप स्वयं हृदय से जिसको वरण किया है, जिस पर तुम्हारी पूर्ण निष्ठा है, आस्था है। उनका एक शब्द ही लक्ष्य प्राप्त कराने में समर्थ है।

अधिकार प्राप्त करने के लिए अपने आप को मिटाना होता है, अपनी सत्ता समाप्त करनी होती है।

25. आनन्द का रसास्वादन

तृष्णा लगने पर जल पी लिया, तृष्णा शान्त हो जाती है। क्षुधा लगने पर भोजन किया, क्षुधा निवृत्त होती है। प्रत्यक्ष इसकी अनुभूति होती है। यह सर्वमान्य बात है। मैं कोई ऐसी बात नहीं कह रहा जो समझ में न आती हो। इसी प्रकार भजन करने से भी प्रत्यक्ष आनन्दानुभूति होती है, यदि आनन्द प्राप्त नहीं होता तो समझना चाहिये भजन नहीं हो रहा। एक बार नाम लेने पर ही आनन्द का सागर लहराने लगता है, तो अनेक नाम लेने पर भी हृदय सूना है, खाली है तो यह चिन्ता का विषय है। साधक को चिन्ता हो जानी चाहिये।

पाश्चात्य देशों में (यद्यपि उनकी दृष्टि भौतिकता तक ही सीमित है) पूर्ण व्यवस्थित जीवन बिताने पर भी यदि उनके यहाँ किसी का वजन घटता है तो उन्हें चिन्ता हो जाती है। डाक्टरों से इसका कारण मालूम करते हैं। लेकिन हम लोग, आध्यात्मिकता की ओर जाने वालों को चिन्ता नहीं कि हमारा वजन क्यों घट रहा है? कभी (सत्गुरु, सन्त) डाक्टरों से पूछने की आवश्यकता नहीं समझी, इसी से काम नहीं बन रहा। अनेक नाम लेने पर भी वृत्ति पाप की ओर जाती है ऐसा क्यों होता है, इसकी चिन्ता नहीं। इसका कारण है मन निर्मल नहीं, वृत्तियाँ ससीम नहीं, सीमा में बँधे न होने के कारण नाम लेने का कुछ प्रभाव नहीं होता। कृष्ण-अनुभूति नहीं होती। जिन्होंने कृष्ण की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त कर ली है उनका जीवन निष्पाप हो जाता है वह इस संसार से दूर चले जाते हैं। दुनिया की निगाह में पागल हो जाते हैं।

हमारे परमहंस देव (रामकृष्ण परमहंस) ऐसे ही पागल थे। एक दिन वह अपनी मस्ती में बैठे झूम रहे थे कि एक भाग्यवान आ निकला, बड़ा नाम सुना था बाबा का, देखकर उसे कुछ निराशा सी हुई, यह कैसा पागल सा बाबा है। वह बेचारा क्या जाने इस पागलपन को, परन्तु आशा लेकर आया था। पूछा—बाबा!, कितना प्यार है इस 'बाबा' शब्द में! जिस समय यह काला कनुआ नन्द को बाबा कहकर पुकारता है तो नन्द गद्गद् हो जाते हैं

सब कुछ भूल जाते हैं। चारों ओर उन्हें कन्हैया ही दिखता है। हाँ, तो मैं बता रहा था, उसने पूछा– बाबा! यह तुम्हें क्या हो गया? बाबा मुस्कराये– बोले मुझे क्या हो गया है, यह तुम जान सकोगे जब तुम्हें भी यही हो जाय। बस कहा कि बन गया उस भाग्यवान का काम। मैं कहता हूँ भैया, काम होते देर नहीं लगती, तत्काल होता है यदि सब साज-बाज ठीक है तो विलम्ब क्यों होगा। यदि तुम्हारा वस्त्र साफ है और रंगरेज के पास रंग तैयार है तो विलम्ब का क्या सवाल? तुरन्त रंग चढ़कर तैयार हो जाता है। देर वहीं होती है जहाँ वस्त्र भी गन्दा है और रंगरेज के पास रंग भी तैयार नहीं है।

तो भैया, तुम्हें यदि आनन्द का रसास्वादन करना है तो सत्संग को अवलम्ब बनाना होगा। अपने को सत्संग के योग्य बनाना होगा और देखना होगा तुम्हारा वस्त्र गन्दा तो नहीं, यदि गन्दा है तो रंग नहीं चढ़ेगा। सत्संग में आने योग्य अपने को बनाने के लिए तुम्हें दो काम करने होंगे– पहला विनयशीलता (नम्रता) दूसरा विवेक। नम्रता में वह गुण है जो पत्थर को भी पानी बना देता है यदि तुमने कटुता को छोड़कर विनम्रता का सहारा लिया तो तुम्हारा काम अवश्य बनेगा, यह हो नहीं सकता काम न बने। विवेक द्वारा अपनी कमियों को देखो। उन्हें निकाल फेंकने की चिन्ता करो। तैयार होकर आओ। यदि काम न बने तो जिम्मेदारी हमारी है। काम क्या है? श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष-अनुभूति। बस, यही एक काम है। सो मेरे भैया, काम बना लो, उन्हीं की कृपा से यह अवसर मिला है। उन्हीं ने कृपा करके इस बालक को तुम्हारे बीच में भेजा है। यह परमहंस रामकृष्ण का बालक है। श्रीकृष्ण की नौकरी कर रहा है। इच्छा यही है कि तुम लोग इस अवसर से लाभ उठा लो। बस भैया मुझे तो समय के साथ युक्ति से चलना है। तुममें से किसी की तंत्री बज उठे तो तुम्हारा काम हो जाये। काम अवश्य होगा, यह हो नहीं सकता कि काम न हो।

26. कृष्ण-मिलन की भूख

श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए जब विचार करते हैं तो मालूम होता है कि जिसे हम देखना चाहते हैं वह मन, वाणी का विषय नहीं है, वहाँ बुद्धि की पहुँच नहीं। उसका आदि, मध्य, अन्त भी नहीं। वह असीम है। उसे सीमा में भी नहीं बाँधा जा सकता। जिसे मन से चिन्तन करके नहीं पा सकते, जिसका वाणी गुणगान नहीं कर सकती, जिसको बुद्धि से नहीं जाना जा सकता और जिसका आदि-अन्त भी नहीं तो बड़ी निराशा-सी होती है। जब ऐसा है तो अपने पास और क्या साधन है। इधर देखा तो यह हाल और उधर देखें तो क्या योग द्वारा प्राप्त कर सकते हैं? नहीं। जप द्वारा? नहीं। समाधि लगाकर? सो भी नहीं। ध्यान से? नहीं। ज्ञान, तप से? नहीं। इन सब के द्वारा आयु प्राप्त हो सकती है, पद प्राप्त हो सकता है, यहाँ तक कि ब्रह्मत्व प्राप्त हो सकता है, परन्तु कृष्ण को, उस नटवर को रिझाने में इनमें से कोई भी समर्थ नहीं है। तब? यह तो निश्चित की हुई बात है। यह कुछ ऐसी बात नहीं, मैं तुम्हें धोखा नहीं दे रहा। सत्संग किसी को धोखा नहीं देता, हाँ धोखे को धोखा अवश्य दिया जाता है ताकि फिर वह आवे ही नहीं। तो मेरे भाई, जब देखा कि उस नटवर को किसी प्रकार नहीं देख सकते तो मस्तक झुक जाता है, बस यह झुकना ही उससे मिलाने में समर्थ है अन्यथा और कोई उपाय नहीं।

स्वयं श्रीकृष्ण अपने श्रीमुख से अर्जुन से कहते हैं–"अर्जुन, ज्ञान, ध्यान, योगादि के द्वारा मुझे नहीं प्राप्त किया जा सकता।" तो भैया, मैं तो तुमसे कुछ कह रहा हूँ। न जाने कहाँ से इस ग्वालिये ने घेर-घार कर यहाँ लाकर बिठा दिया है तो कुछ कह रहा हूँ। जब बालक की भाँति सब प्रकार अपने को असमर्थ जानकर तथा सब साधनहीन समझकर उसके सामने हाथ जोड़कर मस्तक झुका दोगे तब तत्काल काम बनेगा। तनिक सोचो तो भैया, और कर ही क्या सकते हो? हाँ तो जब तुम्हें हाथ जोड़े, माथा झुकाये श्रीकृष्ण अपने सामने देखेंगे तो पूछेंगे "क्या चाहते हो?" बस बता देना। माँग

पूरी होगी। वहाँ तथास्तु के सिवा और कुछ होता ही नहीं। परन्तु सिर झुके कैसे? मन पवित्र हो तब। मन पवित्र कैसे हो? मन पवित्र करने का भी एक ही उपाय है। वह है, संसार को अनित्य देखना। यह देखने से ही काम बनेगा, बातों से नहीं। बातों के लिए तो मैंने पहले ही कहा है, बोलना बन्द करो। तुम कहो कि कैसे देखें? देख लो, क्या जब तुम पैदा हुए थे ऐसे ही थे जैसे अब हो? उत्तर है—नहीं। तो बस मैं देखता हूँ कि संसार की प्रत्येक वस्तु बिगड़ रही है। जो बिगड़ रही है वह मिटेगी एक न एक दिन, अत: सिद्ध हो गया कि संसार अनित्य है, जो अनित्य है, नष्ट हो रहा है, हो जायेगा उससे प्रीति क्यों होगी? और जो इससे प्रीति करता है उसे रोना पड़ता है। जब यह निश्चय हो गया कि यह अपने काम की वस्तु नहीं तो जो काम की है उसकी चाह होगी।

प्रश्न होगा काम की चाह क्या है? श्रीकृष्ण। तो वह कैसे मिलें? जब यह चाह हुई तो मन पवित्र हो जाता है, कृष्ण मिलन की चाह की धार में सारा कूड़ा बह जाता है। अन्त:करण पवित्र हो जाता है। जब चाह हुई उससे मिलने की तो अब पता कौन बतावे! उसका पता तो वही बता सकते हैं जिन्होंने उसे देखा है। बस उनसे जाकर पूछ लो, वह बता देंगे। मिल जाओ प्रियतम से, देर क्या लगती है। पर मेरे भाई, चाह हो सच्ची और परिपक्व। जिस प्रकार छोटी बालिका का विवाह कर देने पर उसे कुछ बोध नहीं होता, बल्कि वह दूसरों के लिए और भार-स्वरूप हो जाती है। इसी प्रकार यदि तुम्हारी चाह छोटी बालिका है, परिपक्व नहीं है, तो काम नहीं बनेगा, श्रीकृष्ण मिलन नहीं होगा। तुम्हारी चाह तीव्र हो और मन पवित्र हो तब सीताजी की भाँति व्याकुल होकर पुकार उठो—

कोमल चित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

—श्रीरामचरितमानस 5.13.4

तो वह आये बिना रह नहीं सकते। उनका हृदय अत्यन्त कोमल है, परम दयालु है। व्याकुल होकर पुकार कर देखो तो सही, क्या होता है तुम्हें स्वयं पता लग जायेगा। ज्वर उतरने पर भूख लगती है, तो तुम्हारा भी यह भव-ज्वर उतरे तब कृष्ण-मिलन की भूख लगे।

27. मन पवित्र कैसे हो

श्रीकृष्ण से प्रीति करने वाले को उनका पूर्ण विश्वास होना चाहिये। विश्वास होने पर ही श्रीकृष्ण सब की रक्षा करते हैं, तभी विजय प्राप्त होती है। महाभारत काल में कौरव पक्ष में विशाल सेना थी। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे जब कि विपक्ष में पांडवों के पास मुकाबले में बहुत कम सेना थी परन्तु विजय पांडवों की ही हुई क्योंकि श्रीकृष्ण रक्षक थे, पांडवों को उन पर विश्वास था। इसी प्रकार आज भी चीन भारत का विपक्षी है उसके पास जन-बल है, अस्त्र-बल है पर यदि श्रीकृष्ण तुम्हारे पक्ष में हैं तो यह सब धरा रह जायेगा, इसीलिए श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में कर लो।

अब मैं कृष्ण मिलन की बात बताऊँगा। भैया रे! श्रीकृष्ण उन्हीं को मिलते हैं जिनको वह वरण कर लें। यह बात अजीब है पर बात सही है जिनको वह चाहें वही उनसे मिल सकता है दूसरा नहीं। और कोई उपाय भी नहीं। विचार करके देख लो, तुम किसी से मिलना चाहते हो और वह नहीं मिलना चाहे तो कैसे मिलन हो सकता है तो भैया, वह तो सर्वसमर्थ हैं, मालिक हैं, परम स्वतंत्र हैं। उन्हें किसी प्रकार दबाया नहीं जा सकता। क्या सैन्य बल से उन्हें दबा सकते हो? नहीं, संसार को शक्ति प्रदान करने वाले हैं। योग बल से? सो भी नहीं, महायोगेश्वर हैं वह स्वयं। तो सुन्दरता से रीझ सकते हैं? वह भी नहीं, त्रिलोकी की सुन्दरता उनकी छायामात्र है। धन से? वह स्वयं महालक्ष्मी के पति हैं। इसी प्रकार तप-जप, ध्यान-ज्ञान इत्यादि सब साधन ओछे पड़ते हैं, कसर रह जाती है। तब? बस एक मात्र उपाय यही है कि वह जिसको वरण कर लें। वह वरण कैसे करें? जब तुमसे मिलने की उनकी इच्छा हो तब। तब उनकी इच्छा कैसे हो? तुम इच्छा करने लगो। यदि तुम उनसे मिलने की इच्छा करोगे तो उनसे प्यार हो जायेगा, यदि तुम प्यार करोगे तो वह भी प्यार करने लगेंगे। यह तो निश्चय है कि जिसको हम प्यार करते हैं वह भी हमें प्यार करने लगता है। यह कैसे हो सकता है कि तुम प्यार करो और वह न करें। पर भैया, श्रीकृष्ण का प्यार तो पवित्र मन में उत्पन्न

होता है। संसार का प्यार तो अपावन मन से हो सकता है पर श्रीकृष्ण का नहीं, सो मन को पवित्र बनाना है। मन को पवित्र करने के लिए काम यह करना है कि जिससे मन अपवित्र होता है वह मत करो।

मन अपवित्र तीन बातों से होता है— 1. आसक्ति 2. द्वेष 3. मोह। आसक्ति को छोड़ने के लिए सहज उपाय है संसार के स्वरूप को समझना। संसार का स्वरूप है किराये का मकान। किराये के मकान में क्या किसी की आसक्ति हो सकती है? जो किरायेदार उसको अपने की भाँति रखता है। सब प्रकार सुविधा का प्रबन्ध करता है। टूट-फूट का ध्यान रखता है, सजाता है, मतलब है सब कुछ करता है पर मन में यह जानता है कि यह किराये का है। इसका क्या भरोसा, चाहे जब छोड़ना पड़ जाये। इसी प्रकार मेरे भाई, यह शरीर और इससे सम्बन्ध रखने वाली समस्त सामग्री किराये की है। मालिक जब माँगेगा वापस करनी है। जिस प्रकार किराये का मकान छोड़ने में दुःख नहीं होता क्योंकि उसमें आसक्ति नहीं है, इसी प्रकार यह सब चीजें छोड़ने पर भी दुःख न हो तब समझो आसक्ति नहीं। समझ लेने पर आसक्ति छूट जायेगी। हृदय से इसका विचार करके समझौता करना होता है मुँह से बोलने से नहीं। मुँह से बोलने से तो जिस प्रकार होम्योपैथिक दवा का प्रभाव हाथ या दाँत लगाने से समाप्त हो जाता है इसी प्रकार इसका भी प्रभाव समाप्त हो जाता है। अतः बोलो मत, मेरे इस नुस्खे को पी जाओ चुपचाप। अवश्य लाभ करेगा।

आसक्ति के न रहने पर मन पवित्र हो जाता है और पवित्र मन में प्रियतम की याद जग जाती है। इसी प्रकार द्वेष भी है। यह भीतर छिपा रहता है समय पाकर प्रज्ज्वलित हो जाता है, जिस प्रकार राख में दबी आग हवा से प्रज्ज्वलित हो जाती है। इसको समाप्त करने का सहज उपाय है सबको श्रीकृष्ण का स्वरूप देखना। जिसे तुम प्यार करते हो यदि वही सब में है तो द्वेष किससे होगा? अरे भाई, क्या अपने प्रिय से

भी कोई द्वेष करता है? मोह और आसक्ति में थोड़ा अन्तर है इसे भी मारना पड़ेगा। यह सब होने वाली चीज है? तत्काल हो जाती है।

28. सत्संग

जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई॥

यह प्रभु की बान है।

सहज पाप प्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

—श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड

यह प्रभु के सच्चे प्रेमी की धारणा है। चार पाँच दिन का बालक भी अपनी माँ को पहचानने में भूल नहीं करता। गाय को हजारों गायों के बीच छोड़ दो उसका वत्स ढूँढकर उसी से जाकर लिपटेगा। यह निरन्तर स्मरण, अन्तर्निहित याद तथा पहचान की बात है। यदि श्रीकृष्ण की पहिचान भी, जिस प्रकार वत्स को माँ की है, हो जाये और सतत स्मृति बनी रहे तो भूलने का सवाल उठता ही नहीं। उसे भूला जा सकता ही नहीं।

आश्चर्य! देखो जो कण-कण में व्याप्त है उसको खोजते हैं। जो सब जगह है उसकी खोज कैसी? यह तो सब में समाया हुआ है कोई स्थान, वस्तु उससे रहित नहीं, खाली नहीं।

भैया रे! यह सब जो तुम्हें दिख रहा है, सब फर्ज किया हुआ है, माना हुआ है। यह शरीर भी, मन भी, बुद्धि भी, अंहकार भी और यह जो कुछ भी है सब फर्ज किया हुआ है। यदि विचारपूर्वक यह जान लिया—क्या यह सब फर्ज किया हुआ है, वास्तव में नहीं? तो बस बंडल बँध जाता है अर्थात् आसक्ति समाप्त हो जाती है। जो है ही नहीं तो लगाव किससे होगा। यह इशारे हैं भैया, समझ लो बस समझने की बात है। फर्ज की अर्ज दरबार में पहुँची कि मर्ज मिटा। यह है बात।

अफीम खाने वाले को यदि एक दिन भी वह न मिले तो वह रह नहीं सकता, उसे चैन नहीं पड़ता, नींद नहीं आती, भोजन नहीं भाता। क्यों?

आदत जो पड़ी है। यदि ऐसी आदत सत्संग की पड़ जाय— अफीमची का जीवन जिस प्रकार अफीम है, सत्संगी का जीवन उसी प्रकार 'सत्य' बन जाये। सत्य से हटते ही प्राण छटपटाने लगे तो बेड़ा पार है।

29. वास्तविक प्रेम

जब हम विचारपूर्वक देखते हैं तो यह जगत् एक बहुत बड़ा पागलखाना दिखाई पड़ता है, इसमें विभिन्न प्रकार के पागल निवास करते हैं। कोई धन के लिए पागल है, तो कोई यश के लिए, कोई संतति के लिए, कोई प्यार के लिए आदि-आदि। इसी प्रकार सभी की दौड़ किसी न किसी ओर है। परन्तु जब विचार से देखा तो इस सबके पीछे एक माँग है, एक चाह है। वह चाह या माँग है देह सुख अथवा यों कहें कि स्वार्थ। प्रत्येक पागलपन में स्वार्थ की एक लिप्सा है। पिता पुत्र को प्यार करता है इसलिए कि बुढ़ापे में वह सेवा करेगा। परन्तु होता इसके विपरीत है—यह मैंने देखा है। यह मैं पढ़ी या सुनी बात नहीं कह रहा हूँ जो मैं देखता हूँ, जो मैंने देखा है, वही तुम्हें बता रहा हूँ। जब तुम्हें देखी बात बताई जा रही है तब तो विश्वास हो जाना चाहिये। हाँ तो मैं बता रहा था कि मैंने देखा है पर इसमें कुछ सार नहीं पाया। हमारा यह पागलपन काम न आया, सिवाय धोखे के कुछ हाथ न लगा। यदि यह बात समझ में आ गई तो हमें अपनी दिशा को मोड़ देना चाहिये। यदि यही पागलपन हमें श्रीकृष्ण से प्यार करने का हो जाये तब देखो। जीवन का सच्चा स्वार्थ ही श्रीकृष्ण से प्यार करना है। इन संसार के लोगों का प्यार तो मैंने देखा, तनिक सी मन के विपरीत बात हुई कि सब खत्म, परन्तु श्रीकृष्ण ने जिसको एक बार प्यार कर लिया वह उसे कभी नहीं छोड़ते। सदा-सदा के लिए अपना लेते हैं। बहुत से लोग, बेचारे साधकों के पैर तोड़ देते हैं। अजी श्रीकृष्ण को पाना सहज नहीं, बड़ा कठिन है जब ब्रह्म भी उन्हें प्राप्त नहीं कर सकते तो साधारण जीव किस लेखे में **"अपर जीव केहि लेखे माहीं"** ऐसे-ऐसे उपदेशों से उनके साहस को समाप्त कर देते हैं। परन्तु नहीं भैया! ऐसी बात नहीं। ठीक है ब्रह्मा, शंकर, इन्द्रादि उन्हें नहीं पा सकते परन्तु एक

पागल जो उनके सिवा किसी को नहीं जानता उससे वे दूर नहीं रह सकते। रावण का भाई विभीषण जाति का राक्षस, आकर कहता है प्रभु—

सहज पाप प्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥

—श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड

बस रीझ गये प्रभु एक शब्द में ही, दे दिया लंका का राज्य। जो राज्य रावण को शंकरजी द्वारा घोर तपस्या कर-करके प्राप्त हुआ था, वह हमारे उदार प्रभु ने संकोच से कि 'कुछ नहीं दिया' कहकर विभीषण को दिया। बाली पूछता है, "प्रभु क्या मैं अब भी पापी हूँ जब आप मेरे सामने खड़े हैं?" भूल गये मेरे प्रभु, बाली के सब अवगुण कह दिये— बाली! मैं तुझे, तेरे राज्य को अचल कर देता हूँ। तू रह। कितने दयालु, कितने उदार हैं। क्या संसार के किसी भी धनी से धनी में यह पा सकोगे? इसीलिए विचारपूर्वक हमें अपने जीवन की दिशा मोड़नी है, संसार की ओर से रोक लगानी है। श्रीकृष्ण से प्यार करना है, निस्वार्थ प्यार, निश्छल प्यार, विशुद्ध प्यार।

प्यार में माँग नहीं होती। प्यार में क्रय-विक्रय नहीं होता। प्यार में भय नहीं होता। प्यार केवल प्यार के लिए, प्रियतम के सुख के लिए, उनकी प्रसन्नता के लिए होता है। प्यार में व्यभिचार नहीं होता, यह तो अनन्य होता है। प्यार प्रेमास्पद के गुण अवगुण नहीं देखता। बस वह तो प्यार करता है। क्योंकि उसे प्रियतम से प्यार है। पतंगा दीपक पर जल मरता है परन्तु दीपक नहीं देखता कौन मरा, उसे परवाह नहीं। प्यार में लगन है, प्यार में जलना है पर माँग नहीं। मोक्ष नहीं चाहता, निर्वाणपद नहीं चाहता, उद्धार नहीं चाहता, प्यार चाहता है वह— जो उसका प्रियतम चाहता है। प्यार में भय नहीं होता। चिड़िया, एक छोटा सा पक्षी, अपने अंडों के लिए कौए का, चील का, बाज का भी सामना करने को तैयार रहती है। क्यों? उसे अपने बच्चों से प्यार है, उन पर प्राण मिटा सकती है। तो भैया, यही प्यार हमें श्रीकृष्ण से करना है उनसे माँगना कुछ नहीं, कहना कुछ नहीं, चाहना कुछ नहीं।

प्यार व्यभिचार से दूषित हो जाता है, कलंकित हो जाता है, अतः व्यभिचार न हो। व्यभिचार से अभिप्राय है एक को छोड़कर दो को अर्थात् दूसरे को प्यार या एक साथ दो से प्यार करना। यदि एक गुरु के प्रति निष्ठा है तो वहाँ दूसरे की ओर मन जाना भी व्यभिचार है। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त यदि संसार में मन जाता है तो व्यभिचार है। व्यभिचार प्यार को गिरा देता है। वह पतन का कारण है। विशुद्ध प्यार के द्वारा ही उसे पाया जा सकता है।

30. सब के आश्रय

श्रीकृष्ण ही एकमात्र सबके आश्रय हैं। सुख के अभिलाषी लोग, सुख की आशा से जब इस संसार की मरु मरीचिका में, जहाँ जल नहीं है परन्तु भासता है जल सा, भ्रम से ऐसा प्रतीत होता है और वह मुँह मारता है परन्तु जल न पाकर मुँह में बालू भर जाती है तब उसकी आँखें खुलती हैं और उसे अपनी भूल का पता लगता है। विचार कर देखो, जगत् में सुख कहाँ है? परन्तु भूल से दुःख को सुख मान लिया है। प्रत्येक प्राणी इस दुःख में भी अपने आपको परम सुखी मानकर सुख का अनुभव करता है। देख लो, तुम यहाँ जितने भी बैठे हो अपने हृदय पर हाथ रखकर देखो क्या आपने दुःख को सुख नहीं मान रखा है? मैं देखता हूँ सभी इस दुःख में ही सुख मान बैठे हैं, आनन्द का अनुभव करते हैं। कितनी भारी भूल है। जिन्होंने इस दुःख को दुःख माना है वही हैं श्रीकृष्ण प्रेम के पात्र, जिन्होंने उससे प्रेम किया है, वही इस दुःख को दुःख मानकर इससे छूटने का उपाय करते हैं।

श्रीकृष्ण का प्रेम समस्त संसार के प्राणी मात्र के अन्तरतम में सदैव से है। चराचर जगत् के उर स्थल में कृष्ण प्रेम का अमृत कलश विद्यमान है। प्रत्येक मानस में प्रेम की अजस्र-धारा बह रही है परन्तु भूल के कारण सभी दुःखी हैं अज्ञान का पर्दा पड़ा है। जिस प्रकार करोड़पति पिता का पुत्र विदित न होने से पैसे-पैसे के लिए दर-दर ठोकरें खाता फिरता है, दरिद्रता का दुःख भोगता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण का अंश जीव जिसे जन्म से ही श्रीकृष्ण-प्रेम सम्पत्ति रूप में प्राप्त है— वह अपनी ही भूल के कारण दुःखी है। तो भाई,

मैं कहता हूँ, इस भूल को मिटा लो, सदा-सदा के लिए सुखी हो जाओगे। इस जगत् के हाड़ मांस पर, पत्थरों पर, मल मूत्र पर क्यों सिर फोड़ते हो? उस यशोदा के लाल की, उस वंशीधर की, उस कन्हैया की उन आँखों को देखो, देखने की वस्तु तो बस वही हैं।

तो मैं बता रहा था सब के, चराचर जगत् के मानस में अमृत कलश विद्यमान है। जब बालक माँ के गर्भ में होता है तो माँ को प्रतिक्षण उसका भाव रहता है उसे अनुभव होता रहता है। इसके लिए उसे कोई साधन नहीं करना पड़ता, यदि बालक का हिलन, डुलन न हो तो चिन्ता हो जाती है। इसी प्रकार यदि उस अमृत कलश का जो तुम्हारे श्रीकृष्ण ही हैं तुम्हें प्रतिक्षण अनुभव हो, क्षण मात्र की विस्मृति में चिन्ता हो जाये तब देखो क्या होता है। मैं कहता हूँ कि बहिरंगता को त्याग अन्तर्मुख हो जाओ और देखो वहीं तुम्हारे अन्तर में ही सरकार विराजे हुए हैं। वहीं उनको अपनी कहानी सुनाओ— कन्हैया भैया! हमने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुनी है। तुम सबसे मिलते हो, सबकी सुनते हो। सन्तों के मुँह से सुना, भक्त माल में भी पढ़ा था कि तुमने कभी किसी को निराश नहीं किया। सखू को मिले, मीरा को, सूरदास को, तुलसीदास को और जाने किस-किस को और अब भी मिलते हो, इसी आशा को लेकर मैं भी चला आया पर कुछ सन्देह सा होता जा रहा है। क्यों? क्योंकि तुम हमसे अभी तक नहीं मिले। क्या हमसे न मिलोगे? वह बड़े ही उदार हैं, परम उदार हैं। उनसे रहा ही नहीं जाता, तनिक कह कर तो देखो, मिलन की साध सँजोकर प्रतीक्षा तो करो।

तो मैंने बताया कि मानस में रखे कलश पर पर्दा पड़ा है। अतः वह आवरण ही उसे देखने नहीं देता। वह आवरण क्या है? काम। कामना के आवरण ने उसे ढक रखा है। इस काम ने सबकी नाक में नकेल डाल रखी है। क्या योगी, क्या त्यागी, क्या वैरागी, क्या संन्यासी— सभी ने इसके आगे घुटने टेक दिये हैं। हाथी भी इसके वश में है। जब हाथी को पकड़ना होता है तो काठ की हथिनी बनाकर रख देते हैं। हाथी उसके मोह में आकर अपने

आप को बंधन में डाल देता है। कितनी दयनीय दशा है, दम घुटने लगता है। जो दुधारी तलवार से नहीं घबराते, जो अकेले सहस्रों का सामना करने का बल रखते हैं। संसार में जिनका आतंक छा जाता है वह भी स्त्री के चरणों में माथा टेकते देखे। तो भैया, इस काम से पीछा छुड़ाओ। कैसे छूटे? महापुरुषों की शरण में जाओ, उनके अन्तर में घुस जाओ। बस, इससे छूटने का एकमात्र यही उपाय है और नहीं। यदि डटे रहे तो काम बनेगा।

मिट्टी, मिट्टी है। विचार कर देखो, जिसे तुम इतनी ललचायी आँखों से देखते हो, यह सब मिट्टी है। मिट्टी भी भला कोई देखने की चीज है। कुम्हार एक ही मिट्टी से कई प्रकार के बर्तन बना देता है और उनके नाम अलग-अलग रख देता है। स्वर्णकार स्वर्ण से विभिन्न प्रकार के जेवर बना देता है नाम भिन्न-भिन्न होते हैं। सब अन्त में— मिट्टी व स्वर्ण ही। इसी प्रकार विधाता ने भी इस मिट्टी से किसी को कुत्ता बना दिया, किसी को सुअर, किसी को स्त्री किसी को पुरुष। तुम भी इसी मिट्टी के बने हो। कुत्ते को देखकर क्या किसी का मन मचलता है? फिर स्त्री को देखकर ही क्यों? तो मेरे भाई, ऊपर उठो। इस प्रकृति राज्य से ऊपर उठकर देखो, इसमें तुम सुख की खोज करते हो, सुख इनमें है नहीं। मक्खन कहाँ मिलेगा? दूध में। रस कहाँ मिलेगा? इक्षु (ईख) में। तो सुख कहाँ मिलेगा? कन्हैया के चरणों में। वहाँ सुख का, आनन्द का सागर लहरा रहा है, गोते लगाओ; बस, सारी समस्याओं का हल हो जायेगा। बहना बन्द हो जायेगा। नदी का सागर में मिलकर सदा के लिए बहना बन्द हो जाता है। तुम भी अपने सागर में जा मिलो, जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाओगे। अवसर मिला है। यह मनुष्य शरीर श्रीकृष्ण से मिलने को ही मिला है, जो देवताओं को भी दुर्लभ है। सो भैया, काम बनालो जिससे फिर पछताना न पड़े।

जब महामना श्री शुकदेवजी परीक्षित को भागवतामृत पिलाने आये तो देवता अमृत कलश लेकर आये और विनती की कि यह अमृत तो परीक्षित को पिलादो और यह भागवतामृत कृपा कर हमें प्रदान करें। श्री शुकदेवजी ने

कह दिया, "सदा भोगों में रत रहने वाले देवताओ! तुम इसके अधिकारी नहीं हो। तुम को यह नहीं मिल सकता।" **देवता भी जिस अमृत को तरसते हैं वह मनुष्य शरीर पाकर तुम्हें सहज भाव में प्राप्य है। कितनी कृपा है प्रभु की।**

भोगों को छोड़ने का प्रयत्न करने से भोग पीछा नहीं छोड़ते, उनका स्वरूप समझकर यानि उनसे स्वाभाविक घृणा हो जाये तो स्वतः ही छूट जाते हैं। प्रयत्न की आवश्यकता नहीं। भोगों के स्थान पर यदि श्रीकृष्ण से विशुद्ध प्रेम हो जाये तो भैया, वह ऐसे उदार मेहमान हैं कि तनिक सी बुलाहट पर दौड़े आते हैं। तनिक मेरे कहने पर बुलाकर देखो न।

31. श्रीकृष्ण की जानकारी

किसी वस्तु की जानकारी के लिए पहले हमें उसकी प्रतीति होनी चाहिये। प्रतीति होने पर प्रीति होती है। तो पहले हमें श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जानकारी हो तब प्रतीति होगी। प्रतीति होने पर उनसे प्रीति स्वतः हो जायेगी। परन्तु हम विचारते कहाँ हैं? सोचते कहाँ हैं? चल रहा है यों ही धक्कम्-धक्का। नियम तो यह है, किसी बात पर भी हो, पहले विचार करके फिर ध्येय निर्धारित करते हैं। मैंने देखा, कभी-कभी मुझे ग्रेजुएट विद्यार्थियों से बात करने का अवसर मिला, उनसे मैंने पूछा कि भविष्य के लिए क्या विचार है? उत्तर मिला अभी तो कुछ सोचा नहीं। भाई, तनिक विचार करके देखो किसी सवारी में बैठते हैं— रिक्शा, तांगा, मोटर आदि के वाहक से कह दें, कहीं भी ले चल, तो यह समझदारी की बात है क्या? अन्य देशों में ऐसा नहीं होता। वहाँ शिक्षा विभाग में कुछ विशेषज्ञ होते हैं जो प्रारम्भ में ही छात्र की योग्यता देखकर विषय का चयन करके निश्चय कर देते हैं और छात्र अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। सफलता प्राप्त करता है।

तो मैं बता रहा था कि सब यों ही चल रहा है। कभी सोचा नहीं परिणाम क्या होगा। मैं तो कुछ कह रहा हूँ भैया, मैं लेक्चर नहीं दे रहा, भाषण नहीं दे रहा, कथा नहीं कह रहा, कुछ कह रहा हूँ, यदि किसी के रिसीवर ने मेरी

कथा को रिसीव किया तो आँखें खुल जायेंगी, मार्ग साफ हो जायेगा। मैं कथा का विरोधी नहीं, कथा वह होती है जिसमें वक्ता के पास कुछ होता नहीं; श्रोताओं को आवश्यकता नहीं। वह कथा मैं नहीं कह रहा। मैं तो व्यथा कहता हूँ भाई, जो किसी को लग जाये और दर्द पैदा कर दे—वह आत्म-कथा कह रहा हूँ। जो मैं कह रहा हूँ बात बड़ी अजीब है परन्तु कह नहीं सकता कितने लोग इसे समझेंगे। मैं फिर कहता हूँ यदि वेस्टर्न कन्ट्रीज में यह बात डिलीवर करता तो तहलका मच जाता। परन्तु मेरे भारत को न जाने क्या हो गया है मुझे दुःख है इस बात का। दुःख अपने लिए नहीं, मैं तो जानता ही नहीं भाई दुःख क्या है, जब सुनता हूँ तो सोचता हूँ कुछ होता होगा दुःख। तो मैं बता यह रहा था कि संसार में सभी मरते हैं, सड़क पर टुकड़े माँगकर खाने वाला भिखारी भी और अपार सम्पति वाला धनवान भी।

बात ऐसी है भैया, तुम जानते हो, कहते भी हो परन्तु जो मैं कह रहा हूँ यदि उसे समझ लिया तो तुम्हारे जीवन में मोड़ अवश्य आयेगा। हाँ, तो सभी मरते हैं परन्तु साथ कोई कुछ नहीं ले जाता। यहाँ तक तो सभी कहते हैं पर मैं क्या कह रहा हूँ, यह समझने की बात है। यह मैं किसी विद्वत्ता के आधार पर नहीं कह रहा, कहीं से पढ़ी सुनी नहीं—जो देख रहा हूँ कह रहा हूँ। मैं क्या कह रहा हूँ, कहने वाला तो कोई और है वह इस यंत्र द्वारा जो कहला रहा है वही निकल रहा है। हाँ तो साथ कुछ नहीं ले जाते यहाँ तक तो ठीक है पर क्यों नहीं ले जाते? यह किसी ने नहीं सोचा। क्या कोई रोक लगी है? किसी ने कोई प्रतिबन्ध लगा रखा है क्या? भाई, जो तुम्हारी है, जिस पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार है उसे तो ले जा सकते हैं? इस शरीर को इतना पोसा है इसे तो ले जा सकते हैं, उसे तो कोई रोक नहीं सकता। परन्तु नहीं ले जा सकते। क्यों? कुछ है ही नहीं ले क्या जायें। आज के कैमरे ने इसका स्वरूप हमारे सामने कितना प्रत्यक्ष रख दिया है, यह विचारने की चीज है, आसक्ति काट देने की बात है। चित्र है, फोटो, चाहे वह विद्वान् का हो, योगी का हो, तपस्वी का हो, ज्ञानी का या साधारण मनुष्य का हो, वह कर कुछ नहीं सकता, आप चाहे

उसका कुछ करिये, गाली दीजिए, कुछ असर नहीं। तो यह सब भी चित्र है और कुछ नहीं। तो मेरे भाई, मैंने तो कुछ कह दिया, किसको कितना, क्या पल्ले पड़ा यह तो अधिकार की बात है।

श्री शुकदेवजी, परीक्षित को भागवत सुना रहे थे उस समय वहाँ पर बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, राजऋषि, ब्रह्मऋषि, देवऋषि आदि सभी उपस्थित थे, सभी ने भागवतामृत का पान किया परन्तु जो फल परीक्षित को मिला वह दूसरे किसी को नहीं। तो भैया, ये तो अपनी-अपनी योग्यता की बात है। सत्संग में तो तत्काल काम होने की बात है। तुलसीदास ने तो मानस में कह दिया—

मज्जन फल पेखिय तत्काला। काक होइ पिक बकहु मराला॥

कौआ; कोयल तथा बगुला; हंस हो जाता है।

तो मैं यह बता रहा था कि श्रीकृष्ण की जानकारी हमें करनी है, जानकारी हो तो प्रतीति हो, प्रतीति से प्रीति हो तो काम बने।

तो बात यह है भैया कि श्रीकृष्ण हैं, मैं कह रहा हूँ। तनिक समझो मैं यह कह रहा हूँ कि श्रीकृष्ण हैं, यों नहीं कह रहा कि भगवान् होगा या होता है। श्रीकृष्ण हैं और वह समस्त विश्व की आत्मा हैं। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा को सूर्य अलग नहीं कर सकता, प्रभा भी अलग नहीं हो सकती। फूल से गन्ध अलग नहीं हो सकती, अग्नि से दाहक-शक्ति भी अलग नहीं हो सकती, बर्फ से शीतलता को अलग नहीं किया जा सकता, हो ही नहीं सकता, सम्भव ही नहीं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण से हमारा सम्बन्ध है। यह ऐसा अटूट सम्बन्ध है जो तोड़ा जा सकता ही नहीं। संसार का सृजन, पालन-पोषण, संहार सब कुछ श्रीकृष्ण में ही हो रहा है। बस, यह समझने की बात है। इससे श्रीकृष्ण की पूरी जानकारी हो गई। यह पूर्व पक्ष हो गया यह समझने के लिए हमें अपने को उसी स्थिति में लाना होगा जिसमें हमें कोई चीज नई न लगे।

32. लक्ष्य निर्धारण

साधक को साधन-पथ में प्रवेश करने से पूर्व निश्चय करके अपना लक्ष्य निर्धारित कर लेना होता है, जो निश्चय करके चलते हैं उन्हें सफलता न मिले ऐसी बात नहीं। जिस प्रकार व्यवसायी को वाणिज्य के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी करके लाभ-हानि पर दृष्टि रखते हुए व्यापार करने पर सफलता मिलती है उसी प्रकार साधक भी यदि विचार करे कि जीवन बहता चला जा रहा है– नित्य प्रति मृत्यु की ओर बढ़ रहा है। इस प्रकार की चिन्ता से बढ़े तो लाभ अवश्य होना है।

तो कल के प्रसंग में था कि वेदों का तात्पर्य श्रीकृष्ण हैं। उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति के बिना यह बहना यानि जन्म-मरण का चक्कर छूटेगा नहीं। यह तो हमने जान लिया और यह भी सुनते हैं कि श्रीकृष्ण की अनुभूति महत्जनों, सन्तजनों को हुई है, होती है। अब प्रश्न यह है कि यदि ऐसा है तो हमें क्यों नहीं होती तथा कैसे हो ?

उत्तर यह है कि, जिन कारणों से नहीं होती उन्हें त्याग देने पर अवश्य होगी। वह कारण है सबसे मुख्य, आलस्य और प्रमाद। इसीलिए साधक को सफलता मिलने में कठिनाई है। छोटी-छोटी बातों में धैर्य छोड़ बैठते हैं। आजकल शरद ऋतु है, रजाई बहुत प्यारी लगती है, इच्छा नहीं होती बिस्तर छोड़ने की, परन्तु इससे काम नहीं चलेगा। चलने वाले को चिन्ता पूर्वक ब्रह्म मुहूर्त में शैय्या त्याग कर नियमित कार्य से निवृत्त होकर कृष्ण-मिलन के प्रयत्न में लग जाना चाहिये। यह तो हुई एक बात। अब दूसरी ओर जो सबसे बड़ी कमी हमें साधक के जीवन में दीखती है वह है शौच क्रिया का समुचित प्रकार से न होना। श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए तीन बातों का होना परम आवश्यक है। **प्रथम शौचक्रिया, द्वितीय सच्ची जिज्ञासा, तृतीय प्रबल उद्योग।** शौच क्रिया में बाह्य और अन्तर दोनों प्रकार की पवित्रता होना अनिवार्य है। बाह्य पवित्रता में मलद्वार को मल त्याग के पश्चात पाँच बार

मिट्टी लगाकर धोना चाहिए, फिर हाथों-पावों को भी मिट्टी से भली भाँति मलकर शुद्ध करना चाहिए, इस सम्बन्ध में पहले भी मैं बता चुका हूँ कि इस प्रकार की पवित्रता में जो अशुद्ध कीटाणु होते हैं, वह नहीं रह पाते और हमारे मन-बुद्धि को दूषित नहीं कर पाते जिनसे हमें श्रीकृष्ण की अनुभूति करनी है। श्रीकृष्ण मिलन के लिए मन, बुद्धि को परम पावन रखना है। अन्तर-शौच से अभिप्राय है मन-वाणी, क्रिया तीनों की पवित्रता। मन से कोई अन्य चिन्तन न हो श्रीकृष्ण के अतिरिक्त। वाणी से कटु भाषण न हो किसी के प्रति। क्रिया में कोई अवैध क्रिया न हो तब हमारी शौच क्रिया सर्वांगीण, पूर्ण होती है।

यह तो हुआ एक पक्ष, अब दूसरा पक्ष हमारे सामने और है। उसमें भी दो कारण हैं, जो कृष्ण मिलन में बाधक हैं– 1. पाप वासना, 2. कामपिपासा। प्रथम निष्पाप जीवन हो, द्वितीय कामशून्य हो। कामना की गंध भी न हो। यदि इसमें एक भी रहेगी तो काम नहीं बनेगा, भैया। यदि जीवन निष्पाप नहीं है, काम से पीड़ित है तो चाहे कितने भी तीर्थ करो, व्रत करो, सारे शरीर में चन्दन लपेटो, दिनभर मन्दिर में पड़े रहो, माला जप का ढेर कर दो, मतलब कुछ भी करो, जब तक मन में असत्रूप की चाह है, क्रिया है, काम नहीं बनेगा–यह मेरा दावा है। इससे छूटने के लिए जिन्होंने अपने जीवन को काम गन्ध शून्य बना लिया है उन्हीं की शरण लेनी होगी। उन्हें युक्ति मालूम है सहज काम हो जायेगा, मैं तो यही जानता हूँ। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय मुझे मालूम नहीं।

हाँ तो पूर्व में मैं बता रहा था कि जिज्ञासा सच्ची हो यदि श्रीकृष्ण मिलन की जिज्ञासा सच्ची है, यों ही देखा-देखी, सुना-सुनी अथवा परीक्षा के लिए नहीं है तो काम होना है। उसी प्रकार कृष्ण मिलन के लिए प्रबल उद्योग की परम आवश्यकता है, उसमें हमें आलस्य और प्रमाद को कतई छोड़कर असीम धैर्य के साथ चिन्ता पूर्वक जुट जाना है। यदि हमें उस मार्ग में भारी कठिनाई उठानी पड़े तो घबड़ाना नहीं। कठिनाई नाम की कोई वस्तु हमारे

लिए रहे हो नहीं। यदि पहाड़ तोड़ने की आवश्यकता हो तो हँसते-हँसते जुट जायें। प्राणों की भी परवाह न हो। हमारा प्रयत्न, सिंह प्रयत्न हो फिर भला काम न हो? यह हो नहीं सकता। बस भैया, अब मेरा तो समय हो गया, यदि समय होता तो और भी कुछ बताता मैंने यह बहुत कुछ बता दिया यदि जीवन में उतार कर चलोगे तो काम अवश्य होना है। जबानी जमा खर्च से काम न बनेगा भैया! इसलिए जीवन में उतारो।

33. सहज काम

साधक का जहाँ तक भगवत् प्राप्ति का प्रश्न है, वह सत्संग द्वारा ही हल होता है क्योंकि सत्संग ही रीति-नीति का बोध कराता है। तो जहाँ तक त्याग की बात है कि श्रीकृष्ण मिलन त्याग से होता है, ठीक है, पर मैं देखता हूँ कि त्याग का दूसरा नाम प्रेम है, तो मैं तो यही कहूँगा कि कृष्ण मिलन प्रेम से होता है। भाई, देखने की बात है विचार पूर्वक देखो, मालूम हो जायेगा जिसे तुम प्रेम करते हो। जिससे तुम्हारी आत्मीयता है उसके लिए सब कुछ त्याग सकते हैं। प्रेम के लिए बड़े से बड़ा त्याग हो जाता है, किया नहीं जाता। करने का सवाल ही नहीं, वह तो होता है। जैसे एक नववधू अपने पिता का घर छोड़कर जहाँ उसने जन्म लिया, पालन-पोषण हुआ, अधिकाधिक प्यार पाया, पर एक अपरिचित व्यक्ति जो अब उसका पति है उसके साथ जाती है तो इस परिवार का त्याग स्वतः ही हो जाता है, उसने किया नहीं, तो पति के प्रति मान्यता की, उसके प्रति सम्बन्ध जोड़ा, सम्बन्ध के जुड़ते ही उससे आत्मीयता हो गई, प्रेम हो गया, उसी प्रेम के लिए इस परिवार का त्याग हो गया। तो यह है सम्बन्ध जोड़ने की बात।

यदि इसी प्रकार हम श्रीकृष्ण को अपना मान लें उनसे सम्बन्ध जोड़ लें तो प्रेम हो जायेगा। प्रेम होते ही फिर बड़े से बड़ा त्याग करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। देहासक्ति, गृहासक्ति आदि जो कुछ भी है स्वतः छूट जायेगी, छोड़नी नहीं पड़ेगी। तो हमने देखा कि आसक्ति, रागादि यह बस प्रेम के ही

दूसरे नाम हैं। जिसमें हमारी आसक्ति है जिसमें राग है उससे प्रेम है, अन्तर केवल इतना है कि देखना यह है कि वह लौकिक है अथवा श्रीकृष्ण के प्रति। यदि यह श्रीकृष्ण के प्रति है तो जीवन बन रहा है। तो मैं तो देख रहा हूँ कि यह सब काम जो अभी हमने गिने, प्रेम के ही हैं। मैं तो कहता हूँ वैराग्य भी प्रेम है उसके आगे और कोई चीज अच्छी लगती नहीं। अतः यह है वैराग्य।

यह सब होता है, करना कुछ नहीं पड़ता। जैसे गति से यदि हमें मथुरा जाना है तो हमारे पैरों की गति मथुरा की ओर बढ़ेगी, वृन्दावन स्वयं ही छूटता जायेगा, उसे छोड़ने का प्रयत्न करना नहीं पड़ेगा। तो यदि श्रीकृष्ण से हमारा प्यार हो जाये तो संसार स्वयं ही छूट जायेगा, छोड़ना नहीं पड़ेगा। तो मेरे भाई मैं कहता हूँ कृष्ण से प्रेम करने की बात। हाँ मैं तुम्हें कुछ भी छोड़ने को नहीं कहता, तुमने जितने अन्य सम्बन्ध जोड़ रखे हैं पिता-पुत्र, माता, भाई, पत्नी आदि मानों तुम्हारे दस सम्बन्ध हैं तो मेरे कहने से एक ग्यारहवाँ श्रीकृष्ण के प्रति और जोड़ लो। आखिर इसमें कठिनाई भी क्या है? पैसा खर्च नहीं करना होता है, शरीर की शक्ति की भी आवश्यकता नहीं है और भी कोई ऐसी बात नहीं जो बाधक हो, केवल मन से मानना है कि श्रीकृष्ण अपने हैं।

भैया रे! यह जो तुमने रिश्ते मान रखे हैं वास्तव में यह तो अपने हैं यह तुम करके देखोगे तो तुम्हे स्वयं ही पता लग जायेगा, मैं क्या बताऊँ? यह दुनिया के रिश्ते तो जरा सी देर में टूट जाते हैं पर श्रीकृष्ण का सम्बन्ध जन्म जन्मान्तरों तक नहीं टूटता। भागवत में चित्रकेतु की कथा से यह बात अच्छी प्रकार समझ में आ जाती है। जब जीवात्मा कहता है कि—"मैं कब तुम्हारा पुत्र था और कब तुम मेरे पिता? यह तो जीव के कार्यों का भोग है जो वह भोगता फिरता है।" सो मेरे भाई, अब विचार कर उसी से सम्बन्ध जोड़ लो जो कभी न टूटे। श्रीकृष्ण के प्रति रिश्ता दो प्रकार से कायम होता है या तो तुम उनके हो जाओ या उन्हें तुम अपना मान लो, बस मानने की बात है भैया और कोई कठिनाई नहीं। और सम्बन्ध भी तो माने ही हैं न? पहले तो थे

नहीं। ऐसे ही इसे भी मान लो और फिर देखो क्या होता है? यह हृदय से मानने की बात है कहने सुनने की नहीं।

इस सम्बन्ध में एक बात सुनाऊँ। बात अजीब है पर चेतना प्रदान करती है। एक व्यक्ति ने राजा को तीन खिलौने लाकर दिये, प्रश्न उठा उनके मूल्य का। मंत्री को बुलाया गया। मंत्री ने पहले के कान में सींक या डोरा जो कुछ भी हो डाला वह दूसरे कान से निकल गया तो उसका मूल्य बताया दो कौड़ी, दूसरे के कान में डाला गया तो मुंह से बाहर निकला, उसका मूल्य बताया दस जूते, तीसरे के कान में डालने पर वह डोरा पेट में चला गया, उसका मूल्य लाख रुपये बताया। अभिप्राय पूछने पर मंत्री ने बताया कि जो व्यक्ति इधर सुनी उधर निकाल देता है वह है दो कौड़ी का, जो सुनकर कहता फिरता है, करता कुछ नहीं वह है दस जूते खाने योग्य है और जो सुनकर पेट में रखकर उसके अनुसार जीवन बनाता है उसका मूल्य ही वास्तव में अमूल्य है सो भैया मेरे, धारण करके जीवन बनाओ कठिनाई कुछ भी नहीं है।

श्रीकृष्ण की स्मृति के कुछ क्षण एक ओर— और समस्त त्रिलोकी का अखंड राज्य एक ओर हो तो यह श्रीकृष्ण की उस मधुर स्मृति की तुलना नहीं कर सकता क्योंकि वह अपने हैं, अपने आत्मीय हैं उनसे प्रेम करके बड़े से बड़ा त्याग भी कुछ मूल्य नहीं रखता।

"सीतहि सेइ करहु हित अपना" कितना गहरा भाव छिपा है इसमें। जो प्रभु के प्यारे हैं उनकी सेवा से ही परम हित होता है।

क्या यह दुनिया के लोग श्रीकृष्ण के समान प्रेम कर सकते हैं? यदि उन्हें प्यार में कुछ देना होता है तो बाजार से लाकर देते हैं और हमारे श्रीकृष्ण वस्तु भी स्वयं बन जाते हैं। देखा! यह है उनका प्यार। वह अपने प्रिय की रक्षा के लिए कम्बल भी स्वयं बन जाते हैं।

राम को वनवास जाने का आदेश मिल चुका है। माँ कौशल्या की आज्ञा लेने आये हैं। माँ कहती हैं— राम बेटा! राज तिलक का शुभ समय हो रहा है कुछ मधुर जलपान करो। इन प्यार भरे वात्सल्य पूर्ण वचनों में राम का मन

नहीं रमता। यदि इस प्रकार साधक भी अपने लक्ष्य की ओर ध्यान रखे तो इस संसार की असद् मधुरता में नहीं भूलता। यह सब मर्म वही मर्मी बता सकते हैं जिन्होंने उस चितचोर से प्रेम किया है। वह जानते हैं इसमें कितना आनन्द है, वह उस आनन्द का स्वाद दूसरों को भी चखाने को उत्सुक रहते हैं। उनकी भावना परहित की होती है। उनका क्रोध भी, उनका रोष भी परहित की भावना से ओत-प्रोत रहता है। उन्हीं की शरण ग्रहण करने से सहज काम होता है।

34. तैयारी

टैक्नीकल इन्सटीट्यूटों में, जहाँ विभिन्न प्रकार की ट्रेनिंग दी जाती है वहाँ दोनों प्रकार की तैयारी, यानी प्रैक्टीकल और थ्योरीटिकल लिखित एवं क्रियात्मक कराई जाती है। इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जहाँ श्रीकृष्ण से साक्षात मिलन की बात है वहाँ भी दोनों प्रकार की तैयारी होना अनिवार्य है। अन्तर में मन बुद्धि का परम पावन होना तथा क्रिया में प्रत्येक क्रिया ऐसी हो जिससे श्रीकृष्ण को सन्तोष हो। हमारे मन बुद्धि हमारे हाथ में हों वह कार की भाँति किसी दूसरे द्वारा चालित न हो। यदि श्रीकृष्ण को रिझाना है तो यह तो करना ही होगा भैया। विचार कर देख लो, लोक में यदि कोई साधारण नेता भी आने वाला हो तो हर प्रकार की सजावट आदि की तैयारी करते हैं न? क्यों? इसलिए कि वह प्रसन्न हों, तो जो त्रिलोकी के नेता हैं उनकी प्रसन्नता के लिए क्या कुछ भी तैयारी न करेंगे? तो सबसे पहले तो हमें अन्दर बाहर के समस्त विकारों को धोकर अपने आपको परम पवित्र बनाना है। अपने मेहमान के लिए सजाना है। धारणा को अति दृढ़ बनाना है, परन्तु मैं देखता हूँ जो साधक हैं, कृष्ण मिलन के इच्छुक हैं उनके जीवन में भी इस ओर बड़ी उपेक्षा है। एक छोटा सा नियम भी पालन नहीं कर सकते, मैं तो यहाँ तक देख रहा हूँ कि ब्रह्म मुहूर्त में शैय्या भी नहीं त्याग सकते। तो यह तो बड़ी शोचनीय अवस्था है। इसको अविलम्ब त्याग देना चाहिये।

तो सबसे प्रथम तो हमें चंचलता का त्याग करना चाहिये। हमारे मन और बुद्धि दोनों ही अत्यन्त निश्चल होने चाहिएँ, जो किसी भी प्रकार निर्धारित लक्ष्य से विचलित न हो सकें। धारणा अत्यन्त बलवती हो। हृदय अत्यन्त विशाल एवं गंभीर तथा उदार हो—गंभीर बिल्कुल समुद्र के समान गंभीर। जिस प्रकार समुद्र में से सैकड़ों नदियाँ निकल जाती हैं तो भी उसमें कुछ कमी नहीं आती, हजारों नदियाँ उसमें आकर मिल जाती हैं तो भी वह अपनी मर्यादा नही तोड़ता। इस प्रकार साधक का हृदय भी परम गंभीर हो, जिस पर प्रकृतिजन्य कोई भी विकार अपना प्रभाव न डाल सके, लक्ष्य से विचलित न कर सके, मतलब हर समय सम अवस्था रहे। विशाल एवं उदार इतना हो कि पर-दु:ख उससे सहन ही न हो सके। स्वयं भूखे रहकर दूसरे भूखे को अपना भोजन खिलाकर परम प्रसन्नता का अनुभव करें, कहीं राई भर भी खिन्नता न हो। राजा रन्तिदेव इकतालीस दिन पश्चात् किंचित् भोजन पा सके परन्तु माँगने पर भूखे आगन्तुकों को अपना सम्पूर्ण भोजन दे दिया। देकर भी परम प्रसन्न हैं, चेहरे पर खेद का कहीं चिह्न भी नहीं। ऐसी अवस्था में क्या तुम समझते हो तुम्हारे श्रीकृष्ण आये बिना रह सकते हैं? नहीं भैया; यह हो ही नहीं सकता। मेरे परम उदार श्रीकृष्ण से रहा ही नहीं जाता। रन्तिदेव को आकर छाती से लगा लिया, निहाल कर दिया। मैं सच कहता हूँ, उन्हें पाकर और कोई अपेक्षा रहती ही नहीं। मैं तो कहता हूँ एक बार सैम्पिल (नमूने) के तौर पर, परीक्षा के उद्देश्य से ही सही उनसे मिलने की तैयारी करके तो देखो, तुम्हें स्वयं सब पता लग जायेगा। मेरा तो यह दावा है कि यदि कुछ कठिन है तो संसार का कार्य और यदि अति सरल है तो श्रीकृष्ण से मिलना क्योंकि वह अपने हैं न, अपने से मिलने में भी कुछ कठिनाई हो सकती है, यह मेरी समझ में अभी तक नहीं आया।

तो मेरा कहना तो यही है कि अब सोच-विचार छोड़कर चल पड़ो। चलने से ही गन्तव्य स्थान पर पहुँचा जाता है। तो चंचलता कतई न हो, स्थिर बुद्धि हो। दूसरी बात है संकल्प। किसी भी कार्य के पीछे संकल्प का बल

यदि होता है तो सफलता में सन्देह नहीं रहता। संकल्प ढीला-ढाला न हो, अत्यन्त दृढ़ संकल्प हो, जो प्राणों के भय से भी पीछे न हटे, उसका काम बने बिना नहीं रह सकता। यदि साधक ने श्रीकृष्ण मिलन का दृढ़ संकल्प कर लिया तो संसार की कोई ताकत उसको लक्ष्य से हटा नहीं सकती, वह प्राणों का भी हँसते-हँसते बलिदान करने में नहीं हिचकता, उसके हृदय में संशय के लिए स्थान नहीं रहता, क्योंकि वह कृष्णनिष्ठ जो है। उसने कृष्ण मिलन का संकल्प जो किया है। तो भैया संकल्प अत्यन्त दृढ़ हो और हो सेवा व्रत। **सेवा भावना एक ऐसा अस्त्र है जिसके आगे कोई नहीं टिक सकता। समस्त गुण सेवा व्रती में स्वयं ही आ जाते हैं। अभिमान गल जाता है।** अत्यन्त नम्रता तथा शीतलता आ जाती है। अंहभाव समाप्त हो जाता है। आसक्ति छूट जाती है। वैराग्य हो जाता है। तो मेरे भाई! श्रीकृष्ण मिलन की सच्ची जिज्ञासा से संकल्प लेकर सेवा व्रत धारण करो, काम न बने ऐसी बात नहीं।

35. प्रत्यक्ष अनुभूति

श्रीकृष्ण की पावन प्रत्यक्ष अनुभूति (साक्षात् दर्शन) के लिए साधक के पास दो चीजें हैं—1. मन 2. बुद्धि। मन निर्मल हो और बुद्धि निश्चयात्मिका हो। तो हमें इसी पर विचार करना है कि वह वस्तु हमारे पास है तो, पर है किस प्रकार की। मन निर्मल है कि नहीं, बुद्धि निश्चयात्मिका है कि नहीं। अपावन मन और अनिश्चित बुद्धि सफल नहीं हो सकते। तो अब इसी पर विचार करना है कि यह हो कैसे? यदि इस प्रकार नहीं है तो कृष्ण मिलन की इच्छा वाले को चिन्तापूर्वक इस पर विचार करना है। यह निर्णय वह अनुभवी सन्त ही करा सकते हैं जिन्होंने अपने मन बुद्धि इस प्रकार का बनाकर श्रीकृष्ण का साक्षात्कार किया है।

विचार करो, यदि यह सुना गया कि कोई बड़े नेता हमारे यहाँ आये हैं तो सुनते ही जनसमूह उमड़ पड़ता है और कष्ट उठाकर भी देखने का प्रयत्न करता है, ऐसा क्यों? इसलिए कि उनकी प्रशंसा सुनी थी, देखने की इच्छा हो

गई। ठीक इसी प्रकार अनुभवी पुरुष सन्तजन, शास्त्र जब हमें श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में बता रहे हैं कि वह सर्व शक्तिमान है, परम सुन्दर है तो सुनते ही देखने की इच्छा हो जानी चाहिए। यह इच्छा ही मन को पावन तथा बुद्धि को निश्चयात्मिका बनाने में समर्थ है। देखो न, तनिक विचार पूर्वक देखो। यह चित्र जो श्रीकृष्ण के हम देखते हैं, कितने अधिक सुन्दर लगते हैं जबकि यह एक साधारण या विशेष कलाकार की कला का नमूना मात्र हैं। वास्तविकता पाई भर भी नहीं है। जब यह मालूम हुआ कि वास्तविकता पाई भर भी नहीं। तो वास्तविक तो अति ही सुन्दर होगा, यह विचार होते ही उस मंजुल मनोहर को देखने की चाह उत्पन्न होगी। यह मैं तुम्हें मन के पावन तथा बुद्धि को निश्चयात्मिका होने की बात बता रहा हूँ। हाँ तो, यह चाह ही तुम्हें इस योग्य बनायेगी।

विचारवान पुरुषों की बुद्धि ही निश्चयात्मक होती है। अन्य व्यक्तियों की, जो संसार में लिप्त हैं, उनकी बुद्धि मन के संकेत पर चलती है, मन, इन्द्रियों के इशारे पर नाचता है, जब यह दशा है तो भला काम कैसे हो? इससे तो नरकगामी होना है। विचारवान हजारों मनुष्यों की बुद्धि एक होती है, निश्चय एक होता है और अविचारी, अविवेकी मनुष्यों में अनेकों के अनेक ही विचार होते हैं, अनेक ही बुद्धियाँ होती हैं। विवेकी पुरुषों की बुद्धि जो निश्चय करती है मन उसके आदेश का पालन करता है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेता है। मन के निश्चय पर चलने वालों की बुद्धि अपना उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सकती। लक्ष्य से भटक जाते हैं और जन्म-जन्म नरक की यंत्रणा भोगनी पड़ती है। तो भैया मेरे, ऐसा कौन विचारवान होगा जो नरकगामी होना चाहेगा, कष्ट भोगना चाहेगा। सभी सुख चाहते हैं। तो सुख है श्रीकृष्ण के पास। तो सबसे पहले हमें अपनी बुद्धि को निश्चयात्मिका बनाकर निश्चय करके यह विचार करना है कि सुख कहाँ मिलेगा? तब उसकी खोज में प्रयत्न पूर्वक लग जाने पर वह अवश्य प्राप्त होगा।

राजा भर्तृहरि जिस समय राजा थे कभी-कभी एकान्त में बैठकर विचार करते थे कि क्या कभी मेरे जीवन में भी वह दिन आयेगा जब मैं उस तत्त्व को प्राप्त कर सकूँगा? जब उनकी यह लालसा हुई तो एक दिन आया जब लोगों ने राजऋषि के रूप में उनको देखा, अब तो वह अमर विभूति हैं। कभी-कभी किन्हीं भाग्यवानों को उनका दर्शन होता है।

तो भैया! मैं कहता हूँ कि चाह करो कि क्या कभी हमारे जीवन में यह घड़ियाँ भी आयेंगी जब हम श्रीकृष्ण को इन आँखों से देख सकेंगे? यदि इच्छा करोगे तो काम बनेगा। यह चाह तुम्हें श्रीकृष्ण के चरणों में ही ले जाकर छोड़ेगी। एक बात पर विचार करो। जब तालाब या किसी जलाशय में कंकड़ डालते हैं तो लहरें उठती हैं और वह लहरें सीधी किनारे तक चली जाती हैं, बीच में ठहरती नहीं, यह तो आप सभी ने देखा होगा, यह कोई नई बात नहीं है। ठीक इसी प्रकार यदि तुम अपने मानस हृदय सरोवर में श्रीकृष्ण चिन्तनरूपी कंकड़ डालोगे तो मिलनेच्छारूपी लहरें उठकर तुम्हें श्रीकृष्ण-चरणों के किनारे पर ही छोड़ेंगी, बीच में नहीं। तो मेरे भाई, जब यह मालूम हो गया कि इस समस्त संसार के मालिक श्रीकृष्ण हैं, सर्व शक्तिमान भी वही हैं, ऐश्वर्यवान् भी श्रीकृष्ण हैं, रूप की सीमा भी तुम्हारे श्रीकृष्ण में ही समाप्त होती है, सुख के अमिट भंडार भी वही हैं, ज्ञान की खान भी वही हैं, मतलब है जो तुम चाहते हो सब तुम्हारे श्रीकृष्ण के पास है तो फिर ऐसी कौनसी अनोखी वस्तु है जिसे तुम इस अनित्य जगत् में देखते हो। अरे भाई, यह तो छाया मात्र है। भला छाया से कभी किसी का काम बना है? इस संसार में घुटन है। जैसे कोई जंगल का निवासी शहर में प्रवेश करता है तो उस वायुमंडल में उसका जी घुटने लगता है जबकि शहरी व्यक्ति उसमें सुख का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार निश्चय करके चलने वालों का यहाँ जी घुटने लगता है और वह यहाँ से भाग जाने को उतावले हो जाते हैं। विषयी पुरुषों का संग वह सहन नहीं कर सकते, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी छूत की बीमारी में दूषित व्यक्तियों का पल्ला पड़ने का भय रहता है, उसी प्रकार विचारवान

श्रीकृष्ण की खोज में चलने वाले इन संसारी लोगों के पल्ले से भी यानी छाया से भी डरते हैं, तब उनका काम होता है। इनसे लिपटने वाले तो भटक जाते हैं भैया।

तो अब हमें मालूम हो गया कि जो हम चाहते हैं वह सब श्रीकृष्ण के पास है तो अपनी निश्चयात्मिका बुद्धि से यह निश्चय किया कि तब तो वहीं चलना चाहिये। निश्चय होते ही मन को आदेश मिला तो चाह उत्पन्न हुई, चाह के उत्पन्न होते ही समस्त विकारों से पीछा छूटने लगा, मन निर्मल हुआ, आँखें खुलीं, चेतना आई, काम हुआ। बस यह है मार्ग, भैया! चल पड़ो चलने से पीछे वाली सब चीजें छूट जायेंगी, छोड़नी नहीं पड़ेंगी। काम भी छूट जायेगा, क्रोध भी, मोह भी, राग-द्वेष भी, आसक्ति भी, मतलब श्रीकृष्ण से विमुख करने वाले समस्त विकार स्वत: ही छूट जायेंगे और तुम जा मिलोगे अपने परम प्रियतम से। बात है चल पड़ने की।

36. समत्व योग

किसी अत्यन्त संकीर्ण मार्ग में निकलने पर कठिनाई होती है। उसे सरलता से पार नहीं कर पाते, विचार किया, देखा, मार्ग छोटा है। इसी प्रकार जब मनुष्य भगवत् प्राप्ति की ओर बढ़ता है तो उसे कुछ कठिनाई मालूम होती है। तो इस पर विचार करना है कि वह कठिनाई क्या है? अनुभवी पुरुषों ने, जो इन कठिनाइयों को पार कर चुके हैं, बताया है कि मानव जीवन में पहली कठिनाई है अभाव। संसार में उसे अनेक प्रकार के अभाव सताते हैं आज यह नहीं, कल वह नहीं। इसी चिन्ता में उसका जीवन व्यतीत हो जाता है। भगवान् की बात सोचने का भी उसे अवसर नहीं मिलता। अगर किसी प्रकार इससे बचकर यदि वह आगे बढ़ता भी है तो दूसरी कठिनाई आ दबाती है, वह है रोग।

शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के रोगों के चक्कर में पड़कर और कुछ सोच ही नहीं पाता। तीसरी बात है भय, मृत्यु-भय। इन्हीं सब कारणों से

वह भगवत् प्राप्ति की ओर नहीं बढ़ सकता। तो अब विचारना यह है कि इनसे छुटकारा कैसे हो? इसका सबसे उत्तम उपाय तो है सत्संग। यदि वह नियम से सत्संग में आता रहे तो उसे बोध प्राप्त होगा। बोध होने पर इनकी ओर से वृत्तियों को हटाता जायेगा। अनुभवी पुरुषों ने बताया है कि यह सब कठिनाइयाँ बोध न होने से, विचारहीनता की कमी से होती हैं, समत्व योग प्राप्त होते ही यह दूर हो जाती हैं।

दूसरी ओर देखा तो कर्म-बन्धन भी बाधक सिद्ध हुआ। कर्म तीन प्रकार के होते हैं—कर्म, अकर्म, निषिद्ध कर्म। **कर्म** (अच्छे कर्म), कर्तापन के भाव बिना **अकर्म**, **निषिद्ध कर्म** (बुरे कर्म)।

विचार पूर्वक देखा कि यह कर्म, बन्धन का कारण क्यों होते हैं? इसलिए कि मनुष्य अपने आपको कर्ता मान लेता है। **यदि वह अपने आपको कर्ता न मानकर यह धारणा कर ले कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह प्रभु की आज्ञा से प्रभु की प्रसन्नता के लिए प्रभु का कार्य कर रहा हूँ। यदि ऐसा निश्चय कर लिया तो दु:ख सुख का प्रश्न रहता ही नहीं क्योंकि उसमें फलासक्ति नहीं होती। दु:ख क्लेशादि अथवा हर्षादि तभी होते हैं जब फल की चाह होती है। जब यह मान लिया कि प्रभु का कार्य उन्हीं की आज्ञा से, उनकी प्रसन्नता के लिए हो रहा है तो सहज ही स्वतंत्रता मिल गई, कोई चिन्ता नहीं रही।**

हाँ तो मैं बता रहा था समत्वयोग की बात। समत्वयोग की स्थिति में पहुँचकर साधक सरल स्वभाव से भगवत् भजन की ओर लग जाता है। उसकी दृष्टि सम हो जाती है। अनुकूलता प्रतिकूलता से घबराता नहीं। एक ऐसी स्थिति में वह अपने आपको देखता है जहाँ न जन्म है, न मरण, न बालपन है, न यौवन, न बुढ़ापा, न राग, न द्वेष। यह सब आत्मा में कल्पित है। यह शरीर भी आत्मा में कल्पित दिखता है। जिस प्रकार स्वप्न के संसार में सोते मनुष्य को जो कुछ दिख रहा है वह सत्य प्रतीत होता है वास्तव में है नहीं। तो उसका एक मात्र उपाय है, स्वप्न से जग जाना। जगने पर कुछ नहीं

रहता। इसी प्रकार, इस जाग्रत अवस्था में स्वप्न का भी हाल है। तो जब मनुष्य जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं से जाग जाता है, चेतना आ जाती है, सहज स्थिति हो जाती है तो समत्वयोग को प्राप्त हो जाता है, तब प्रभु का सहज चिन्तन होने लगता है। जब श्रीकृष्ण चिन्तन विषयक चेतना हृदय में उदय हो जाती है तो फिर अस्त नहीं होती। वही भजन है या यों कहो तब भजन होने लगता है। जब भजन होने लगा तो प्रभु कृपा से एक दिन उनसे मिलन अवश्य होना है। मिलन उनकी कृपा पर निर्भर है। जब कृपा के योग्य अपने आपको बना लिया जाये तो कृपा तो होगी ही।

37. मधुर सत्य

दीपक स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है, परन्तु वह कहता नहीं कि मैं तुम्हें प्रकाश देता हूँ। भ्रमर फूलों से रस लेता है, इस ढंग से कि फूल को किसी प्रकार क्षति न पहुँचे। इसी प्रकार श्रीकृष्ण मिलन की इच्छा वाले साधक को अपने जीवन के प्रत्येक कार्यकलाप में देखना होगा। क्या मेरा जीवन दूसरों के काम आता है? मेरे किसी कार्य से दूसरों को कष्ट तो नहीं होता? यदि साधक जीवन का सम्पूर्ण कार्य कलाप परहित की भावना पर आधारित है, प्रतिक्षण उसे इस पर ध्यान है, तो समझ लो जीवन बन रहा है। तो बता रहा था कि तुम्हारे जीवन में हिंसावृत्ति न हो। हिंसा का अर्थ केवल मात्र किसी के प्राण नष्ट करना ही नहीं है, यदि तुम्हारी वाणी से भी किसी को कष्ट पहुँच गया तो यह हिंसा है। श्रीकृष्ण-अनुभूति के लिए अहिंसा व्रत धारण करना है। अहिंसा का अर्थ है मन से, वचन से, कर्म से किसी प्रकार भी, किसी प्राणी को कष्ट न देना। तो साधक को यदि श्रीकृष्ण को देखना है तो इस योग्य अपने को बनाना है। देखो! जो तुम बोलते हो तुम्हारी वाणी से किसी को कष्ट तो नहीं हुआ। तुमने किसी के हृदय को दु:खा तो नहीं दिया। तुम्हारे विचारों में ऐसे विचार तो नहीं जो दूसरों को कष्ट देने की भावना लिए हैं, तुम्हारी क्रिया से कोई ऐसा कार्य तो नहीं हो रहा जिससे दूसरों को कष्ट हो यदि ऐसा नहीं हो रहा तो श्रीकृष्ण प्रसन्न होंगे। अरे भाई! यह सब तुम

किसलिए कर रहे हो? प्रभु की प्रसन्नता के लिए। यदि ऐसा है तो वह प्रसन्न क्यों नहीं होंगे? उनका तो यह कहना है कि जो मुझे जिस भाव से याद करता है, मैं भी उसको उसी प्रकार याद करता हूँ। तो मेरे भाई! यह देखो कि तुम्हारे जीवन की प्रत्येक क्रिया में परहित की भावना है कि नहीं? तुम दूसरों के हित के लिए अपने स्वार्थ को छोड़ सकते हो कि नहीं? जीवन को खतरे में डाल सकते हो कि नहीं? यदि यह सच है तो समझ लो तुम श्रीकृष्ण के समीप जा रहे हो उनके प्यार का अधिकार प्राप्त कर रहे हो और अगर यह नहीं है, केवल अपना स्वार्थ सिद्धि करने की भावना है—"अपना काम होना चाहिये किसी प्रकार, दूसरा अपने से जहन्नुम में जाये" यदि यह भाव है तो गिर रहे हो, श्रीकृष्ण मिलन नहीं होगा।

भैया रे! यह सब करने से होता है, केवल जबानी जमा-खर्च से काम नहीं चलता। रहनी इस प्रकार रहनी होती है। मैंने रहकर अपने जीवन को बनाया है। मैं विश्वास लेकर चला हूँ केवल सुनकर, कहकर नहीं। तो मैं तो तुम्हारा जीवन इस प्रकार देखना चाहता हूँ, तुम्हारी रहनी देखना चाहता हूँ। तुम्हारा जीवन दूसरों को प्रकाश देने वाला हो। घबराओ नहीं, यह सब होने वाली बात है। सत्संग से सब कुछ सुलभ हो जाता है। यदि तुमने सत्य का संग किया, सत्य को अपना जीवन बना लिया तो समस्त विकार धुल जायेंगे, हृदय निर्मल हो जायेगा। निर्मल हृदय ही विशाल होता है। विशाल हृदय में समस्त सद्गुण स्वयं ही आ जाते हैं और श्रीकृष्ण आ विराजते हैं अपने मन्दिर में।

यह होगा तभी भैया! जब तुम्हारी दृष्टि प्रति क्षण, जीवन के प्रति क्षण का निरीक्षण करते हुए कार्य करेगी। भगवान् राम वाल्मीकि से पूछते हैं कि कोई ऐसा स्थान बताओ जहाँ मेरे रहने से किसी को कष्ट न हो। तो क्या रामजी भीरू थे, कायर थे? नहीं, उन्होंने साधकों को बताया है— देखो तुम्हारी रहनी दूसरों को कष्टप्रद तो नहीं है? एक बात पर थोड़ा विचार करो, यदि शरीर में कहीं पीड़ा है तो मन स्वत: ही वहाँ लगा रहता है। लघुशंका

जाना है तो जब तक नहीं जाते मन उसी शंका में लगा रहता है, नींद भी नहीं आती। तो क्या इसके लिए कुछ पाठ करना पड़ता है? माला जपनी पड़ती है? नहीं, सहज ऐसा होता है। इसी प्रकार यदि साधक जीवन में भी परहित भावना सहज हो, करनी न पड़े तब है जीवन। सत्य जीवन की सहज क्रिया हो जाये।

भगवान् राम अयोध्या के राजा हैं। गुप्तचर छोड़े हुए हैं इसलिए कि किसी को, प्रजाजन को कोई कष्ट तो नहीं। समाचार मिलता है, धोबी को इस पर असंतोष है कि रावण के घर पर रहीं सीता को उन्होंने घर में रख लिया है। राम निरपराध जगत्-जननी सीता का त्याग कर देते हैं। क्यों? क्या डरते हैं प्रजा से? नहीं। उन्हें साधक के समक्ष आदर्श उपस्थित करना था। उधर माँ जानकी वन में निवास करती हैं, फूलों से भी अपने प्रियतम राम की बात कह रही हैं, क्या है यह? कोई शिकायत नहीं, कोई खेद नहीं। सो भैया, यदि श्रीकृष्ण से मिलना चाहते हो तो विचार करो कि उनके बिना जीवन सूना है, अँधेरा है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सूर्य के बिना नेत्र। अरे भाई! सूर्य के बिना नेत्रों का क्या कोई अस्तित्व है? नहीं है। अन्धे हैं। तो जब तक श्रीकृष्ण रूपी सूर्य तुम्हारे हृदय में नहीं उदित होते तुम्हारे जीवन में अँधेरा है। यह तुम्हें दिखने लगे, चिन्ता हो जाये, दु:ख का अनुभव हो तब काम बने। तो भैया! देखो जीवन बन रहा है या बिगड़ रहा है। तुम्हारी वाणी किसी को कष्टप्रद तो नहीं है, सब में प्रथम तो तुम्हें यही देखना है।

वाणी के चार प्रकार हैं। मानों तुमसे किसी ने मार्ग पूछा। उत्तर में तुमने शब्दों में कह दिया—"हमें क्या मालूम तुम नहीं जानते।" दूसरे शब्दों में, "बड़ा मूर्ख है, इतना बड़ा हो गया स्टेशन का रास्ता नहीं जानता।" तीसरे शब्दों में, "भैया इधर चले जाओ स्टेशन दूर है। आगे और पूछ लेना।" चौथे में "चलो भैया, मैं वहाँ तक पहुँचा देता हूँ।" अब सोच लो कौन सी वाणी से उसे सुख हो सकता है। यह ठीक है सत्य कहो परन्तु सत्य युक्तियुक्त हो, मधुर हो।

38. परमात्मा की प्राप्ति

परम तत्त्व परमात्मा श्रीकृष्ण की प्राप्ति कैसे हो, इसके साधन अनेक प्रकार से ग्रन्थों में बताये हैं उनके पढ़ने से पता लग जाता है। परन्तु जिन्होंने उस तत्त्व को प्राप्त कर लिया है वह जीवित ग्रन्थ हैं। सन्त ग्रन्थों के पृष्ठों में हैं, वह उनके जीवन के पृष्ठों पर लिखा है। तो यदि उसके सम्बन्ध में जानना है तो सन्तों का संग करना होगा। यह तो स्वाभाविक बात है। लोक में भी यदि किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो पहले उसकी जानकारी करनी होती है कहाँ मिलेगी, फिर उसकी पहचान हो, मालूम होने पर वह वस्तु वहाँ मिल जाती है। तो मैंने बताया कि प्रथम उस वस्तु के विशेषज्ञों का साथ करना होता है। पारस मणि की आवश्यकता है तो जिसके पास है उसके पास चले जाओ, वह दिखा देगा। किसी जड़ी बूटी की आवश्यकता हो तो जो जानता है उसके साथ रहो, पहचान करा देगा। इसी प्रकार यदि उस नीलमणि (श्रीकृष्ण-यशोदा के लाला) की आवश्यकता है तो उनके पास जाओ जो उन्हें प्राप्त कर चुके हैं। वह बता देंगे कि वे कहाँ तथा कैसे मिलेंगे?

तो भैया! सब से प्रथम उनसे मिलने के लिए मन को अडोल बनाना है। अर्थात् निश्चल करना है। चंचल मन में कुछ ठहरता नहीं। सन्तों ने मन की दशा बताई है:

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन के मते न चालिये, छिन छिन और ही और॥

तो सब से पहले तो इस मन की चंचलता को रोकना है, फिर सन्तों की वाणी रूपी निर्झरणी को श्रवण पुटों द्वारा हृदय सरोवर में प्रवेश होने दो, वहाँ यह तुम्हारे सरोवर के साथ मिलकर उस धारा को मोड़ देगी जो संसार की ओर बह रही है। मुड़ते ही वह श्रीकृष्ण की ओर बहने लगेगी। यह विश्वास से होगा। मैं तो कहा करता हूँ कि संसार की अन्य वस्तुओं के बिना काम चल सकता है परन्तु विश्वास के बिना नहीं। जब मन मुड़ गया तो अब वस्तु विचार करना होगा। वस्तु विचार का मतलब यह होता है कि जब कोई काम

करना होता है तो उस पर विचार करते हैं, हानि लाभ पर सोचते हैं। पैसे की आवश्यकता है तो कुछ उद्योग-धन्धा, कुछ व्यापारादि करना होगा, पैसा मिल जायेगा और यदि कोई यों कहने लगे कि धन्धा-वन्धा क्या, विचार-इचार क्या? तो यह तो बेकार सी बात है। जो ऐसा करेगा उसे कुछ मिल नहीं सकता।

तो मैंने कहा कि वस्तु विचार करना है। उसमें देखना है संसार का स्वरूप। संसार क्या है, इसमें क्या सुख है इत्यादि। देखा यहाँ तो दुःख ही दुःख है। यहाँ कोई अपना नहीं। यहाँ की कोई वस्तु अपने काम नहीं आयेगी। जब यह मालूम हुआ तो सुख की खोज होगी। सुख श्रीकृष्ण के चरणों में मिलेगा, तो मन उधर ही मुड़ जायेगा। जब वहाँ सुख मिला तो फिर यह इधर लौटेगा ही नहीं। अरे भाई! जहाँ दुःख मिलता है वहाँ कोई रहना चाहता है क्या?

तो मन को निर्मल करने का उपाय है श्रीकृष्ण का नाम, गुण एवं प्रभाव। श्रद्धा, भक्ति के साथ श्रीकृष्ण के नामों का कीर्तन। श्रद्धा-भक्ति के साथ प्रभाव का मनन। जब यह होने लगा तो मन निर्मल हो जायेगा। उसके समस्त विकार धुल जायेंगे। निर्बल मन ही संसार की ओर, नीचे की ओर जाता है। सबल मन प्रभु की ओर। निर्मल मन से भजन होने लगेगा। भजन यह नहीं। हाँ, हाँ भैया, बता तो रहा हूँ यह भजन नहीं है, यह तो भजन के साधन मात्र हैं। इन साधनों द्वारा भजन होता है। सीढ़ियाँ छत नहीं। सीढ़ियों से छत पर पहुँचा जाता है। भजन का स्वरूप सन्तों ने तैल धारावत् बताया है। जिस प्रकार एक वस्तु जो तरल है उसको किसी दूसरी वस्तु में डाला जाता है, उस धारा में कोई व्यवधान नहीं, इसी प्रकार यदि श्रीकृष्ण चिन्तन में अन्तर नहीं तो समझ लो भजन हो रहा है। भैया रे! मैं तो जो जानता हूँ वही तुम्हें बता रहा हूँ। बता ही सकता हूँ और उपाय क्या है। कहीं पहुँचना है, किसी से पूछा, उसने बता दिया, चल पड़े, पहुँच गये। पर तुम तो चिकना घड़ा हो गये, अब गाली दे रहा हूँ। भैया मेरे, यह गाली नहीं, प्यार भरा है इनमें, इस प्रकार कहीं अन्यत्र

न मिलेगा। चिकनी चुपड़ी बातों से काम नहीं होता। तो मैं बता रहा था चिकने घड़े पर पानी नहीं ठहरता तो तुम भी चिकना घड़ा हो गये। श्रीकृष्ण विषयक वार्ता सुहाती ही नहीं, थोड़ी बहुत सुहावे भी तो पर-चर्चा, पर-निन्दा से फुरसत ही नहीं। यों काम नहीं होगा भैया, चलने की बात है, चल पड़ो। मैं बता रहा हूँ वास्तव में यहाँ कुछ नहीं। यहाँ की दो चीजें हैं जो मोह में डालती हैं, जो मन को निर्बल बना देती हैं। एक सन्तति, दूसरी सम्पत्ति। सन्तान में माँ-बाप का सहज स्नेह है, स्वयं भूखे रहकर उसे अच्छा खिलाना चाहते हैं, स्वयं नंगे रहकर उसे अच्छा पहनाना चाहते हैं और परम सुख का अनुभव करते हैं। परन्तु इसका परिणाम देखा तो कुछ न मिला। यह चित्रकेतु का इतिहास बताता है जब जीवात्मा कहता है कौन किसका पुत्र, तू कब मेरा पिता? मैं तो अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ। भैया रे! मुझे तो, जब यह इतिहास पढ़ा, बड़े जोर का धक्का लगा। यदि तुम्हें भी लग जाये तो कृष्ण से प्यार हो जाये, उनके साथ सम्बन्ध जुड़ जाये। सम्बन्ध होते ही फिर उनके साथ खेल हो। यह मैं अपनी भावना कह रहा हूँ, मेरा उनके साथ सखा भाव है। तुम्हारा जो भाव हो उसके अनुसार उनके साथ मिलो। यह तो अपनी अपनी भावना है। अब रही सम्पत्ति, तो वह चंचला है मेरे भैया! यह किसी के पास ठहरती नहीं फिर उससे अपना क्या भला होगा? तो विचारपूर्वक इनसे मन को हटा लो। इसके पश्चात् करना है कृष्ण का पूजन। महात्माओं का पूजन दूसरी प्रकार का होता है। षोडशोपचार पूजन में धूप, दीप, नैवेद्यादि से प्रभु का पूजन होता है। प्रभु से सच्चे हृदय से कहो, "प्रभु यह सर्वस्व तुम्हारा है। तुम्हारी वस्तु तुम्हीं को अर्पित है।" यह हृदय से उनसे कहो, वाणी से नहीं। वास्तव में यह उन्हीं की है। अरे भाई! कोई अपनी धरोहर किसी साहूकार के पास रख देता है तो जब माँगता है साहूकार झट दे देता है। तो भैया, हमें तो इसकी चौकीदारी करनी पड़ती है। इसी प्रकार यह सब प्रभु का है, तुम तो चौकीदार हो। फिर उनकी चीज उन्हें सौंपने में झगड़ा क्या है?" तो गद्-गद् कण्ठ से उनसे कहो, "प्रभु यह सब तुम्हारा ही है, इसे स्वीकारो" जहाँ सच्चे हृदय से तुमने पुकारा, स्वीकार हुआ।

निर्मल मन की पहचान है, प्रभु का एक नाम लेते ही आँखें बरसने लगें। सावन भादों की झड़ी लग जाये। सारे मल धुल जाते हैं। मन निर्मल हो जाता है। कर्म बन्धन कट जाते हैं। उसी मन में तुम्हारे प्रियतम आते हैं। तब उन्हें भाव से गद्‌गद् होकर अत्यन्त प्यार से पुकारो जिस समय सारे शरीर में रोमांच हो रहा हो, वाणी विह्वल हो, प्राण पुलकित हों, आँखें बरस रही हों। यह सब वास्तव में हो, बनावटी न हो, प्रभु के परम पावन श्री चरणों में साष्टांग (आठों अंगों से) प्रणाम करो। तब देखो क्या होता है वह तुमको स्वयं पता चलेगा।

39. समता का सुरमा

संसार के मानव मात्र का कर्त्तव्य है श्रीकृष्ण को देखना, यदि उन्हें न देखा तो समझ लो कुछ नहीं किया, जीवन बेकार चला गया। परन्तु ऐसा होता नहीं। जो है, वह दिखता नहीं, जबकि वह कण-कण में व्याप्त है और जो नहीं है, जिसकी कोई सत्ता नहीं है, वह दिखता है। यह दृष्टि का दोष है, भैया! इसे मिटा लो तो जो है, वही दिखने लगेगा। मैं दृष्टि की बात कह रहा हूँ। शरीर में सब इन्द्रियों में विशेष महत्व नेत्रों का है, आँखों का। इन्हीं से श्रीकृष्ण को प्रत्यक्ष देखा जाता है पर यह श्रीकृष्ण को न देखकर, देखती है विभिन-विभिन्न चीजें। यह वृक्ष है, यह स्त्री, यह पुरुष है, यह चोर है आदि-आदि। इन्हें एकता में अनेकता दिखती है। यदि अनेकता में एकता दिखने लगे यानी सब जगह, सब में आत्मरूप परमात्मा दिखने लगे तो दृष्टि असीम हो जाती है, अमोघ हो जाती है। फिर स्त्री, स्त्री नहीं दिखती वृक्ष, वृक्ष नहीं दिखता, पापी, पापी नहीं दिखता, डाकू, डाकू नहीं, बदमाश, बदमाश नहीं दिखता। बस दिखता है सर्वत्र वही श्रीकृष्ण। उसके सिवा और कुछ रहता ही नहीं।

यह दृष्टि की बात है। लोग कहते हैं हम श्रीकृष्ण को प्यार करते हैं, मैं कहता हूँ बिल्कुल झूठ बोलते हैं। झूठ बोलने वाले से वह कभी नहीं मिलते। यही कारण है जो वह नहीं मिल रहे, नहीं तो भैया रे, वह तो बहाना ढूँढते हैं मिलने का कि किस प्रकार इससे मिलूँ, अगर कोई पूछे कि महाराज झूठ कहाँ

बोलते हैं, हम तो उन्हें चाहते हैं? तो सुनो मैं बताऊँ—जिससे हमारा प्यार है, क्या उसे गाली दी जाती है? तुम तो उन्हें गाली देते हो।

गाली कैसे देते हैं जी? दूसरों की निन्दा करते हो? दूसरों के दोष देखते हो? किसी को चोर बताते हो। डाकू बताते हो? यह गाली नहीं है क्या? भैया मेरे, जब सभी में तुम्हारा कन्हैया बैठा है तो किसको क्या कहोगे? इसलिए दृष्टि को अमोघ बनाओ। कुत्ते में भी कुत्ता न दिखे। महात्मा नामदेव घी का बर्तन लेकर कुत्ते के पीछे दौड़ते हैं उन्हें कुत्ते में कुत्ता नहीं श्रीकृष्ण ही दिख रहे हैं। यह दुनिया के लोग तो ऐसे लोगों को पागल कहते हैं। ठीक ही है, बेचारे उनके पास आँखें नहीं जो देख सकें इन पागलों को। परदेशी—परदेशी शब्द मुझे बड़ा प्यारा लगता है। सचमुच हम परदेशी हैं, यह देश हमारा नहीं। हमारा देश तो वहाँ है जहाँ हमारे श्रीकृष्ण रहते हैं। वहाँ न कोई दुःख है, न क्लेश, न राग, न द्वेष, न रोग है और न शोक। यदि कभी अपने देश की याद आ जाये तो बस फिर क्या है। तो मैं कहता हूँ यह दृष्टि असीम हो जाये सीमित न रहे। समता आ जाये, विषमता का नाम ही न रहे।

रोगी डाक्टर से कहता है मुझे कम दिखता है। डाक्टर कहते हैं कोई सुरमा डालो, मल धुल जायेगा, जाला कट जायेगा, साफ दिखने लगेगा। तो मैं कहता हूँ समता का सुरमा डालो, अनुराग का काजल डालो, दृष्टि अमोघ हो जायेगी। सर्वत्र वही श्रीकृष्ण दिखने लगेगा। फिर अच्छा बुरा दिखेगा ही नहीं। यदि तत्काल ऐसा नहीं कर सकते तो अभ्यास से सब कुछ हो सकता है। अभ्यास करते रहो, **"करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान"** मेरे भाई ऐसा होता है, जड़मति भी सुजान हो जाते हैं। दृष्टि में अनुराग भर लो। सन्त हरिराम व्यास जब यहाँ थे तब ओरछा नरेश मधुकर शाह उन्हें स्वयं लेने आये, कहा—आप स्वेच्छा से नहीं चलते तो मैं बरबस आपको ले चलूँगा। तो व्यास जी ने कहा—अच्छा भैया, नहीं मानते तो चलूँगा, तनिक मैं अपने साथियों से मिल लूँ। नरेश ने देखा—व्यास जी एक-एक वृक्ष से लिपट-लिपट कर गला फाड़-फाड़ कर रो रहे हैं। राजा इससे अधिक न देख

सका, पैरों पर गिर पड़ा— भगवन् मैंने पहचाना नहीं आपको। भूल हुई मुझसे, मुझे क्षमा कर दीजिये, अब मैं आपसे ब्रज छोड़ने की प्रार्थना भी न करूँगा।

तो मेरे भाई, आँखों को पहचान के योग्य बनाओ। पाँवों में परतंत्रता की बेड़ियाँ पड़ी हैं, आँखों में विषमता की धुन्ध है, कैसे श्रीकृष्ण के पास पहुँचोगे और कैसे उन्हें देखोगे। यह दुनिया के लोग? क्या कहा जाये किसी के लिये। एक बात है, बात ऐसी है पर आ गई है इसलिए कहनी है। सत्संग में छुपाया नहीं जाता कुछ। तो जब मैं बिहारीजी जाता था, तो पर्दा आता ही है, एक दिन भोग आ गया, मालूम हुआ, पौन घन्टे के लगभग बैठना पड़ेगा। मुझे अखरा, मैंने कहा, अच्छा तू कहाँ छिपेगा? इन किवाड़ों को छोड़कर आँखें तुझे देखेंगी। तो भाई मेरे, प्यार में अधिकार होता है, भय नहीं और जहाँ मन-मुटाव हो जाता है वहाँ जाने को भी मन नहीं करता। मैं तो कुछ कह गया, तुम समझे कि नहीं यह तुम जानो। मैं जो कहूँ वैसा ही समझो तो आनन्द है।

40. प्यारे की खोज

संसार में रात और दिन का क्रम चल रहा है। इस क्रम में रात के बाद दिन, दिन के बाद रात होती है। इस पर विचार करने पर पता चला कि इस क्रम के साथ जीवन घट रहा है, दिन प्रतिदिन मृत्यु की ओर जा रहा है और इसी प्रकार एक दिन जीवन समाप्त हो जायेगा। तो भैया, मैं कहता हूँ कि इससे पहले ही श्रीकृष्ण को न देखा तो सब व्यर्थ है। नौका के टूटने से पूर्व किनारा पकड़ लेना ही समझदारी है। शवयात्रा के समय देखते हैं किसी बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति का शव जा रहा है, जगत् में उसका बड़ा नाम था, पर अब वह सब कुछ नहीं, लोग कह रहे हैं, **"गोपाल नाम सत्य है"** उस समय एक अजीब ही समां होता है, एक भावना होती है, यदि इसी भावना में हर समय व्यक्ति भावित रहे तो जीवन की एक बहुत बड़ी कठिनाई हल हो जाये। झंझट छूट जायें।

वास्तव में गोपाल नाम ही सत्य है और यह सब कुछ प्रपंच अनित्य है, भैया, अगर यह समझ में आ जाये। यह समझने के लिए दो काम करने होंगे। सत्संग, यह तो जीवन का अनिवार्य अंग है और दूसरा है प्रार्थना। प्रार्थना में अपरिमित बल है। प्रार्थना के द्वारा तुम जो चाहते हो प्रभु से माँग लो, और सत्संग यह बताता है कि क्या माँगना चाहिये। स्वामी विवेकानन्द, जब वह नरेन्द्र बाबू थे, घर के बड़े लड़के थे, पिता का देहावसान हो चुका था, घर की स्थिति अच्छी नहीं थी, भूख की ज्वाला से व्याकुल होकर बाबा रामकृष्ण परमहंस देवजी के पास आये, रोकर उनके चरणों में पड़ गये। बाबा! पहले इस ज्वाला को शान्त करो तब कुछ कर सकूँगा। पहले खाने की कुछ व्यवस्था हो। सन्त स्वभाव से दयालु होते हैं, हृदय भर आया, कहा— बेटा क्या चाहता है। माँ भीतर बैठी है जो चाहे माँग ले बेटा, जा! भेज दिया माँ के पास, परन्तु बुद्धि बदल कर, कहीं ऐश्वर्य न माँग ले, फँस जायेगा। नरेन्द्र माँ के सामने आर्त होकर मांगता है—"माँ मुझे अपना सच्चा ज्ञान दे, सच्ची भक्ति दे और अपने चरणों में सदा के लिए स्थान दे।" नरेन्द्र का काम हो गया, बाबा ने छाती से लगा लिया। सदैव के लिए विवेक, आनन्द प्रदान कर दिया।

तो मेरे भाई! मैं कहता हूँ माँग लो तुम भी, श्रीकृष्ण से जो चाहते हो माँग लो। उनके नाम-गुण-प्रभाव को देखकर ही माँगना। विचार पूर्वक, किससे माँग रहे हो—क्या माँगना चाहिये। बड़े उदार हैं भैया वह। अनन्त भंडार के मालिक हैं, उदारता तो होनी ही चाहिये। संकोच तो वहाँ होता है, जहाँ सीमा हो। वहाँ सब कुछ असीम है, अनन्त है, जो चाहो माँग लो। मेरे भाई! मैं कहता हूँ श्रीकृष्ण से मिलना जितना सरल है उतना सरल संसार का और कोई काम नहीं है। लोग कहते हैं बड़ा मुश्किल है, मैं कहता हूँ बड़ा आसान है। मैं सच कहता हूँ मुश्किल तभी तक है जब तक तुमने मान रखा है। हम उसी मुश्किल के पीछे पड़े हैं— तुम मुश्किल को मुश्किल बनाने और मैं मुश्किल को आसान बनाने में।

एक बात पर विचार करो। कोई काम कठिन तब होता है जब उसके लिए बल की आवश्यकता हो, या सातवें आसमान पर हो, अथवा पहाड़ की ऊँची चोटी पर हो। ठीक है, हम सीमा न लेंगे, बड़ा कठिन है, नहीं हो सकता। परन्तु भाई मेरे, तुम्हारा कन्हैया तो कण-कण में है, जहाँ पुकारो वहीं उपस्थित है। पुकारो तो सही सोचो तनिक। तुम्हारा नाम, रखा हुआ नाम है। तब भी यदि कोई पुकारता है तो दौड़ते हो। और जो अमर है, अमिट है, वह न सुने? यह नहीं हो सकता। अपनी समझ में तो यह आता नहीं। बस देर यही है कि तुमने जो सत्य है उसको, असत् माना हुआ है, जो असत् है उसको सत्य। अपनी मान्यता को ठीक करके विश्वास पूर्वक, हृदय में चाह लेकर, आँखों में प्यास लेकर, उसे पुकारो आने में देर नहीं। तुम्हारी आँखें प्यासी हों, हृदय में सच्ची चाह हो, तब उसे हृदय से पुकारो, वाणी से नहीं। वाणी की पुकार वह नहीं सुनता। किसी निर्जन स्थान में जहाँ तीसरा कोई न हो, केवल तुम हो और हो तुम्हारा कन्हैया। आँखों को प्यास लगी हो तब हृदय से पुकारो, देखो आता है कि नहीं। हाँ तीसरा कोई न हो, तीसरे के सामने आने में थोड़ा झेंपता है। भैया मेरे! तुम अपनी कुटिया बन्द करके ही उसे बुलाकर देखो, वह कहीं दूर थोड़े है, वह तो वहीं बैठा है। बस बुलाने में हो सच्चाई। कचाई उसे पसन्द नहीं, निश्चय हो पक्का।

मन से भी, वचन से भी, क्रिया से भी। यदि नियम पर डटे रहे तो काम अवश्य होना है। आखिर बचने की भी सीमा है, कब तक वह बचेगा नियमित पुकारने पर। जिस दिन यह पुकार हृदय से निकल गई, कन्हैया तुम्हारे सामने होगा। बस भैया और क्या बताऊँ, मैंने तो सब कुछ बता दिया। कर लो अपना काम संसार को अनित्य मानकर उस नित्य को पुकारो जो तुम्हारे इस शरीर का भी स्वामी है। देखो, विचार करो। यदि यह ध्वनि निकली—"मेरा शरीर" तो पता चला शरीर तो अलग है। तो यह शरीर को मेरा कहना वाला कौन है? बस, उसी प्यारे की खोज में लग जाओ एक दिन अवश्य सफल होना है। करने पर ही सभी काम होते हैं।

4

मंगलीय सुमन

मंगलवार को चुने गये कुछ सुमन

पूर्व प्रकाशित पुस्तक का
पंचम संस्करण

मंगलीय सुमन

परम पूज्यपाद महाराजश्री
के
पावन श्रीचरणों में
मात्र यही
(श्रीगुरुपूर्णिमा के परम पावन पर्व पर श्रीचरणों में
सादर समर्पित)

'बाबली'

संकलन कर्त्री
बाबली

सम्पादक
श्रीदिनेश चन्द्र गर्ग

न्यौछावर
"मैं को मिटा दो"

श्रीगणेशजी महाराज

गढ़ गणेश चौमूं, जिला जयपुर (राजस्थान)
की असीम अनुकम्पा से
लोक-परलोक के वैद्य अनन्त श्रीविभूषित श्रीदुर्गाप्रसाद चतुर्वेदी
परमपूज्यपाद महाराजश्री के पावन श्रीचरणों में शत-शत नमन।

- सर्व प्रथम परम पूज्य श्रद्धेय श्री परमहंस जी महाराज, गुरुशाला सुदामा कुटी, वृन्दावन के आशीर्वाद और सद्प्रेरणा से चतुर्थ संस्करण का प्रकाशन करने की स्वीकृति से नत मस्तक हूँ।
- अनन्त श्रीविभूषित श्रीमलूक पीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदास देवाचार्य जी की असीम कृपा, सहयोग एवं निर्देशन से इस संस्करण की प्रस्तुति सम्भव हो पायी है, आभारी हूँ।
- परम पूज्य आचार्य श्रीअलबेली माधुरीशरण जी महाराज, शुकपीठ निकुंज जयपुर की विशेष अनुकम्पा एवं स्नेहाशीष से यह सुअवसर प्राप्त हुआ है।
- प्रेम पथ के पथिक, प्रेम रस रसिक संत श्रीगोपाल दास जी श्रीवीर हनुमान मन्दिर धोली मंडी चौमूं जयपुर (राजस्थान) का विशेष स्नेह इस ओर प्रेरित करता रहा है, अतः हृदय से आभारी हूँ।
- परम पूज्य गुरुदेव श्रीरामानुग्रह दासजी, महन्त श्रीनृसिंह बिहारी मन्दिर अजीतगढ़ जिला सीकर (राजस्थान) के अत्यन्त सुफल प्रयास सद्प्रेरणा एवं आशीर्वाद से चतुर्थ संस्करण का प्रकाशन सम्भव हो पाया है।
- उपरोक्त सभी परम पूज्य सन्तजनों का आशीर्वाद और सहमति मिलने से यह पुस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत है। अतः हृदय से कोटि कोटि धन्यवाद, श्रीचरणों में नमन एवं आभार सुमन व्यक्त करता हूँ।

—प्रेम पथ का पथिक

निवेदन

यह पावन प्रसाद उस दिव्य महापुरुष का है जिसके रोम-रोम में आगे-पीछे, दायें-बायें और अन्तर में एकमात्र जगत् के आश्रय श्रीकृष्ण भगवान् का समावेश है। वह शरीर जीता-जागता भगवान् का मन्दिर है जिसके दर्शन करने पर किसी मन्दिर में जाने की जरूरत नहीं रहती। अपार समुद्र है वह वक्षस्थल जिसे देखकर करुणा भी करुणा को लजा रही है। विवेक की आँखों से देखा जाय तो पर्दे के पीछे सब कुछ राज छुपा हुआ है।

इस घोर अशान्ति और कलह के कोलाहल में शान्ति की एक बूँद भी कहीं देखने को नहीं मिलती। काँटा पैर में कहाँ पर चुभता है, इसका सभी को थोड़ा बहुत अनुभव होता है। परन्तु ऐसा आभास होने पर भी हमें होश नहीं। इस भौतिक जगत् में पग-पग पर मृगतृष्णा का तमाशा हो रहा है। मनुष्य अपने को सब कुछ समझ बैठा है यही एक मात्र भूल है। इस स्वप्नमय जगत में इन भौतिक सुखों की घोर निद्रा का परित्याग करने पर ही शान्ति का अनुभव हो सकता है। ऐसा मेरा विश्वास है। शान्ति का अपार सागर आप जैसे महान् आत्माओं के चरणों में हिलोरें भर रहा है।

यह मंगलीय सुमन उस तपस्विनी की तपस्या का परिणाम है जिसने अपने जीवन के प्रत्येक पहलू में उस महापुरुष के साथ रहकर जो अपनी आँखों से देखा, सुना उसे एकत्रित करके **"स्वान्तः सुखाय"** भावना से सभी के समक्ष रख दिया है। हम कृतज्ञ हैं उनके।

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

पाठकगण यदि इस भावना का वास्तविक रूप में चिन्तन करेंगे तो यह **'मंगलीय सुमन'** उन्हें निश्चय ही उस जगद् आधार श्रीकृष्ण भगवान् को साक्षात् दिखाने में सहायक सिद्ध होगा। जिस प्रकार आप मुझे और मैं आपको देख रहा हूँ। पुस्तक मूल्य (न्यौछावर) **"मैं को मिटा दो"** इस बात का द्योतक है।

—एक साधक

प्रभु प्राप्ति विधि

या विधि मनहि लगावहि।
जैसे नटवा ढोल बजावे॥
अपना वजन बाँस पर राखहि।
सुरति सबद में लावहि॥ या विधि..

जैसे सुन्दरि भरे कूप जल।
चली डगर में आवहि॥
अपना रंग सखिन संग रागहि।
सुरति गगरि में लावहि॥ या विधि..

धूप दीप आरती जलावे।
ज्ञान की ज्योति जगावहि॥
कहत कबीर सुनों भाई साधो।
तब ही पिय को पावहि॥ या विधि..



लोक-परलोक के वैद्य

ये हैं मेरे गुरुदेव जिन्होंने आज के अँधेरे युग में (जबकि मानव हृदय निराश हो चुका है, विश्वास खो चुका है, शंकित हो उठा है कि भगवान् हैं भी या नहीं? यदि हैं भी तो अन्यायी हैं, स्वार्थी हैं, पक्षपाती हैं और न जाने किन-किन उपाधियों से विभूषित किया है।) परम प्रकाश की ज्योति जगाकर यह दिखा दिया है कि **भगवान् हैं और उन्हें ठीक इसी प्रकार देख सकते हैं जिस प्रकार मैं आपको और आप मुझे देख रहे हैं।** वह मिल सकते हैं यह ध्रुव सत्य है। वह परम दयालु हैं, कृपासिन्धु हैं, परम उदार एवं सच्चे न्यायकारी हैं। सहज सुलभ भी हैं। उनका नाम ही सुलभ है।

अतीत की जो बातें हमें कल्पना से भी बाहर की विदित होती थीं उन्हें आज के विज्ञान ने सत्य करके सामने रख दिया है, जैसे रेडियो, टेलीविजन, बेतार के तार, ऑटोमैटिक मशीन आदि-आदि। जब यह कल्पनातीत बातें सत्य दीख रही हैं तब जो सत्य है, अमिट सत्य है वह केवल मात्र कल्पना ही हो सकती है? कदापि नहीं। सत्य कल्पना से बाहर की वस्तु है। अर्थात् इत्यातीत है। मन वाणी से अगम्य है और सुलभ भी है। कब? जब सच्चे सन्त उसका बोध कराते हैं, हमारे सामने रखते हैं। अतः हमें उनके प्रति अविश्वास करना, अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना है।

—बाबली

मंगलीय सुमन

(आज अक्षय तृतीया दिन मंगलवार दिनांक 30.4.68। समय प्रातः 8 बजे लगभग। औषधालय कक्ष। श्री पूज्यपाद अपनी कुरसी पर विराजे हैं कुछ रोगी पास खड़े हैं। सामने दीवाल पर (बाबाजी) श्रीरामकृष्ण देव परमहंस जी का चित्र टँगा है, उसी को हाथ जोड़कर पुनः पुनः प्रणाम करते हुए कह रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— भूख की बात है भैया! भूख वही सच्ची भूख है जिसे खाकर भोजन पच जावे, रक्त बन जाय, छूँछ्रा बाहर निकल जाय, पेट साफ हो जाय, वह कब हो? भूख कैसे लगे? कब्ज न रहे तब।

तो भैया संशय का कब्ज हटे तो प्रभु को जानने की भूख लगे। भूख में जो कुछ भी महान् पुरुषों से सुनने को मिलेगा वह अच्छी तरह पच जायगा। पच कर मन निर्मल हो जायगा। अंश अपने अंशी में मिल कर एक हो जायगा। काम यह करना है कि इस संशय को पचा जाओ। जब यह पच जायगा तो विकार जो छूँछ्रा है बाहर निकल जायगा और भजन होने लगेगा।

"निन्दक नियरे राखिये" इसमें एक अद्‌भुत रहस्य छिपा है। निन्दक को नियरे क्यों रखा जाय? देखा कि यह बड़े काम का है। सचमुच यह बड़ा उपकारी है। अरे देखो तो यह कैसा बढ़िया अपना काम करता है। अपने पुण्य दे जाता है और दूसरे के पापों को ले जाता है। देखा कितना महान उपकारी है।

(समय सायं काल स्थान बिहारीपुरा के मकान का कक्ष। श्री पूज्यपाद अपने छोटे कमरे में एक मसनद के सहारे बैठे हैं दूसरा पैर घुटने पर रखा है। कुछ महिला एवं पुरुष भक्तजन बैठे हैं उन्हीं से वार्ता हो रही है। आज मंगलवार है। मधुपुरी से भी कुछ भक्तजन आते हैं। श्री पूज्यपाद अब हर मंगलवार ही कुछ कहते हैं, उसी को सुनने को सब उत्सुक हैं।)

नियम और निष्ठा, नम्रता और दीनता में ही भगवान् को पकड़ने की शक्ति है। सत्य में वह बल है जिससे वाणी और विचार अन्यथा नहीं होते। कन्हैया को बाँधना पड़ता है। मन का विचार हुआ कि तुम्हारे समान पुत्र हो, तो उन्हें आना पड़ा। भक्ति, सन्तों की अनुकूलता से सुलभ है भैया! यह अपने पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं हो सकती है। तो सन्तों की अनुकूलता प्राप्त करो, काम होते देर नहीं लगती। सन्तों की कृपा मिले अत्यन्त विनम्रता एवं दीनता से तो दीन बनो, नम्र हो जाओ, सत्य को प्राण बनाओ एक दिन आयेगा, इसी जीवन में जब कन्हैया को तुम इन्हीं आँखों से देखोगे। आज मंगल है, मंगल होना ही है।

(समय सायंकाल साढ़े चार बजे के पश्चात् बिहारीपुरा के मकान की बैठक। आज-कल श्री पूज्यपाद जी प्रति मंगलवार को यहीं बैठकर भक्तों के साथ आध्यात्मिक वार्ता करते हैं। वह अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में इस समय अपने आसन पर विराजे हैं, बता रहे हैं। मैं आपको अत्यन्त सरल से सरल मार्ग जो मैंने देखा है बताता हूँ। किसी ग्रन्थ का पढ़ा नहीं, किसी से सुना हुआ नहीं।)

भैया रे! मैं अपनी मेहनत की गाढ़ी कमाई बिना किसी कठिनाई के निःस्वार्थ देता हूँ। तुम्हें आवश्यकता है तो ले जाओ अपना काम बना लो। मुझे यह सनक हो गई है। कोई दुःखी न रहे। मुझे मेरा दुःख कुछ नहीं, मैं तो औरों के दुःख से दुःखी होता हूँ।

मेरे कन्हैया को पाना क्रिया साध्य नहीं है भैया। प्रभु की प्राप्ति किसी कर्म से नहीं हो सकती। यह किसी कर्म का फल नहीं है भैया मेरे! यह ऐसी बात कह रहा हूँ जो सहज समझ में नहीं आयेगी, पर बात यही है, किसी कर्म के द्वारा कन्हैया को देखा नहीं जा सकता। चाहे कितनी ही माला फेरो, कितनी ही अन्य कोई साधना करो। पद मिल सकता है, कीर्ति मिल सकती है, सिद्धि प्राप्त हो सकती है, परन्तु कन्हैया की वह मधुर मुस्कान भरी प्यारी सूरत देखने को नहीं मिल सकती।

कन्हैया को देखना चाहते हो भैया तो अन्तःकरण को साफ करना होगा। बस इतना ही करना है तुम्हें और कुछ नहीं। अन्तःकरण साफ होते ही कुविचारों का उठना बन्द हो जायगा। बुरे विचारों से ही अन्तःकरण मलिन होता है तो तुम्हें करना तो यह है कि बुरे विचार न आने पावें।

अन्तःकरण के साफ होते ही कन्हैया से योग हो जाएगा, योग के होने पर बोध होता है, बोध हुआ कि प्रेम उत्पन्न हो जाता है और जिससे प्रेम हो उसकी याद आना तो स्वाभाविक ही है, याद में हर समय उसी का चिन्तन होता है, करना नहीं पड़ता। उस याद की तड़पन में ही मिलन होता है।

प्रेम का सच्चा एवं वास्तविक निर्मल और परम पवित्र स्वरूप तो वह है जिसमें प्रेमास्पद को भी प्रेमी की किसी भी बाह्य क्रिया से उसके प्यार का पता न लगे। अन्तर की सहज हूक ही ऐसी हो जो प्रेमास्पद के हृदय में वह दर्द पैदा कर दे कि वह आए बिना, मिले बिना रह ही न सके।

(स्थान श्रीरामकृष्ण सेवा निकेतन (औषधालय का कक्ष) श्री पूज्यपाद इस औषधालय में डॉ. का अभिनय करते हैं। लगभग 4-5 वर्ष से वह होमियोपैथिक डॉ. का अभिनय कर रहे हैं। उनको बस एक ही धुन है 'सब सुखी हो जाँय'—सब निरोग हो जाँय।' शरीर निरोग होगा तो मन भी निरोग होगा, तभी तो भजन होगा। ऐसा उनका मत है।)

यहाँ औषधि सबको बिना कुछ लिए निशुल्क रूप से दी जाती है। गरीबों को फटकार कर भगाया नहीं जाता, धनियों को आदर सहित कुरसी नहीं दी जाती। यथाविधि आवश्यकतानुसार दूध फलादि भी दिया जाता है। श्री पूज्यपाद कुरसी पर विराजे हैं, एक रोगी पास खड़ा है उसी को बता रहे हैं।

भैया रे यदि जीना है तो दूसरों के लिये जिओ। जो अपनी सेवा करना चाहते हो, देश की सेवा करना चाहते हो तो उदार बनो, परम उदार। सबको सुविधा दो। बस यही तो है सच्चा जीवन और भजन।

देखो भैया! प्रत्येक व्यक्ति भाग रहा है, मनोरथों के पीछे। अन्तर में कुछ मनोरथ हैं। एक साध है, कुछ अरमान हैं, एक तमन्ना है और चाह है। कुछ भी कहो बस उसी के पीछे सारा संसार दौड़ रहा है, होश नहीं।

पर मेरे भैया! क्या कभी यह पूरा हो सकेगा? नहीं। मनुष्य अरमानों को लेकर मिट जाते हैं पर अरमान पूरे नहीं होते। क्यों? वह अपूर्ण है न। पूर्ण से मिलकर काम पूरा होता है। संसार अपूर्ण है अतः यहाँ सब अधूरा है तो! उस पूर्ण (प्रभु) से रिश्ता करलो, मैं सच कहता हूँ तुम्हारे सारे अरमान पूरे हो जायेंगे। लखपति होना चाहते हो? हो जाओगे। कार चाहते हो? मिल जाएगी। दस बीस कोठी चाहते हो? मिल जाएँगी। मान, बड़ाई, कीर्ति, धन, सम्पत्ति, परिवार जो भी चाहते हो सब मिल जायगा बस उससे रिश्ता करलो।

अरे साध्य! आप क्या कह रहे हैं, किससे रिश्ता कर लें? कौन है ऐसा जो सब कुछ दे देगा? वह है मेरा कन्हैया। नरसी का सांवल शाह। अब समझे।

(स्थान औषधालय कक्ष। बुधवार, 13.11.68 ई.। समय प्रातः 8 बजे के लगभग श्री पूज्यपाद प्रसन्न वदन अपनी कुरसी पर विराजे हैं कुछ रोगी यथा स्थान बैठे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— आज मैं आरती के लिए धूप जलाने को उलटी दीयासलाई घिसने लगा, जब वह जली नहीं तो देखा। क्यों उलटी घिस रहा हूँ? तो मालूम हुआ इसीलिए लोगों को प्रकाश नहीं मिल रहा है। उलटी तीली जलाकर प्रकाश चाहते हैं, जो हो नहीं सकता। विपरीत काम करके कन्हैया को पाया नहीं जा सकता। जो करना है वह नहीं करते। नहीं करना है वह करते हैं फिर दोष देते हैं औरों को। मैं कहता हूँ उलटी दीयासलाई नहीं जल सकती, प्रकाश नहीं हो सकता।

(स्थान सत्संग भवन। कल होली है। दि. 25 मार्च 1967 ई. आज मंगलवार है। श्री पूज्यपाद सदैव की भाँति ठीक समय पर अपने आसन पर विराजे हैं। आपको समय का बहुत ध्यान रहता है। यदि घर से सत्संग भवन जाने के लिए

किसी कारणवश समय कम रह जाय तो आप बच्चों की भाँति दौड़ने लग जाते हैं। ठीक साढ़े चार बजे उनका वहाँ आसन पर विराजने का समय है। यदि साढ़े चार का समय हो जाए तो सत्संग में नहीं जाते। कहते जो नियम का पालन करके समय का ध्यान रख कर सत्य की आराधना करते हैं उन्हीं पर सत्य रूप श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं।)

भैया रे! सत्य श्रीकृष्ण ही हैं, उन्ही का नाम सत्य है। जो सत्य को पाना चाहता है उन्हें अपने जीवन को सत्य से ओतप्रोत करना होगा। सत्य के लिए अपने आप को मिटाना होगा।

कल होली है होली। अरे भैया! होली का मतलब समझा नहीं आप लोगों ने। आप बाहर से बृज की होली देखने आये हैं। यह काला पीला मुँह कर देना होली नहीं— अपने अन्दर के समस्त विकारों को जलाकर भस्म कर देना सच्ची होली है और ब्रज की होली, उसे तो कोई विरला ही देख पाता है। उस होली को देखने वाली आँखें धन्य हैं।

देखना चाहते हो उस होली को! तो यह कार्य कर लो। **पहला काम** तो यह कि जो कुछ भी तुम करते हो उसे प्रभु के लिए करो अपने लिए कुछ नहीं। जब समस्त कार्य प्रभु के लिए होगा तो कर्ता भावना की होली हो जायगी, अहंकार भस्म हो जायगा। अहंकार भस्म हुआ तो कर्म, निष्काम-कर्म, जप-तप, यज्ञ, दान, खाना, सोना इत्यादि सभी कर्म प्रभु के लिए होने लगेंगे। जब सब काम प्रभु के लिए हो रहे हैं तो मैं कर्ता हूँ यह भाव भी नहीं है। यदि यह भाव नहीं होगा तो कर्म बन्धन कट जायगा और आवागमन का फन्दा भी कट गया।

दूसरा काम है श्रीकृष्ण को अपना परम आश्रय मानना, प्रभु हमारे आश्रय हैं। यह कब होगा? जब उनका स्वरूप समझ में आ जायगा। बर्फ का ढेला है। वस्तुतः बर्फ क्या है? जल। देखा बर्फ के हर कण में जल, तो समझा बर्फ, बर्फ नहीं, जल है। इसी प्रकार यह जगत् भी जगत् नहीं यह वही अपना श्रीकृष्ण है। इसके कण-कण में वही समाया है। वही सर्वश्रेष्ठ है।

उसे सर्वश्रेष्ठ वस्तु मान लिया तो उसमें हमारी भक्ति हो जायगी। भक्ति का मतलब है प्रभु के नाम, गुण, रूप, श्रवण, कीर्तन आदि में रुचि।

तीसरा काम है **"संग विवर्जिता"** अर्थात् संग रहित होना। इसका मतलब है सत्संग के अतिरिक्त और किसी का संग न करना। संग रहित न होने से संसार का चिन्तन होता है—प्रभु का नहीं।

अधिकांश एकान्त में रहकर प्रभु चिन्तन में ही वृत्ति को लगाना, केवल जीवन निर्वाहार्थ ही संसार से सम्बन्ध रखना—वह भी मन से नहीं अमन होकर, मन प्रभु को देकर तन से संसार का काम करना ही "संगविवर्जिता" है।

चौथा काम है **"वसुधैव कुटुम्बकम्"**। सभी में बन्धुत्व भावना होना। सबका सुख अपना सुख मानो। सबका दुःख अपना दुःख मानकर दुःखी हो। परहित की भावना रखकर अपने पराये का भाव न रहे। शत्रु-मित्र की भावना न रखना। सम भाव होने पर राग-द्वेष मिट जाता है। अहंकार समाप्त हो जाता है।

भैया रे! यदि यह होली खेली तो निश्चय ही प्रभु के श्री चरणारविन्दों को पाने का अवसर जीवन में आवेगा इसमें सन्देह नहीं।

(आज होली का दिन है। आकाश बादलों से आच्छादित है। कभी-कभी कुछ बूँदा बाँदी सी भी हो जाती है। श्री पूज्यपाद जी का आज श्री सत्यनारायण का व्रत है। प्रतिमास प्रति पूर्णिमा को व्रत रखकर श्री सत्यनारायण कथा व पूजन करते हैं। नियमानुसार आज भी पूजनादि से निवृत्त हो, भोजन प्रसाद पाकर अपने कमरे में जमीन पर टाट के गद्दे पर विश्रामार्थ लेटे हैं। श्रीकृष्ण का एक चित्र बिलकुल समीप ही रखा है। समय सायंकाल 3 बजे के लगभग एक रामभक्त बहिन आई है। उन्हीं से वार्ता हो रही है। पास ही चटाई पर श्री माँ भी बैठी हैं। गोविन्द भैया भी (श्री पूज्यपाद जी के कनिष्ठ पुत्र)।)

चित्र की ओर संकेत करते हुए पूज्यपाद— संसारी लोगों की निगाह में तो यह लकड़ी के चौखटे में बन्द एक फोटो है, पर मेरी आँखों से देखो "यह मेरा यार है, जो हर समय मेरे साथ रहता है, एक क्षण को भी मेरा

साथ नहीं छोड़ता।"

श्री गोस्वामी जी का कहना है "तुलसी होइ न सकत है, रवि रजनी एक ठाँव" पर यहाँ तो देखो भैया रे! रवि-रजनी का मेल। यहाँ रवि-रजनी एक ठाँव है। क्या ही अद्भुत है यह मिलन। प्यारे श्याम का कमलानन कोटि रवियों को मात दे रहा है और श्याम अंग की कान्ति पर अगणित रजनी निछावर हो रही हैं। मैं ज्यादा देर देख नहीं सकता, इसे देखता हूँ तो संसार खो जाता है। मैं भी खो जाता हूँ।

(आज मंगलवार है दि. 25 जनवरी 1971। स्थान सत्संग कक्ष। प्रति मंगल को मधुपुरी से कुछ व्यक्ति आते हैं आज भी आए हैं। समय सायंकाल साढ़े तीन बजे के पश्चात् पिछले दिनों पाकिस्तान की लड़ाई के समय ब्लैकाउट के कारण समय बदल दिया है। अन्य दिनों की भाँति श्री पूज्यपाद ठीक समय आकर अपने आसन पर विराजे हैं। आज कुछ अधिक प्रसन्न हैं। बीच-बीच में जोर जोर से हँसने लग जाते हैं।)

श्री पूज्यपादजी— गाँव में एक ही दुकान है। लाला का स्वभाव खरखरा है सीधी बात नहीं करता पर क्या करें सौदा तो लेना ही पड़ेगा अगर गरज है तो। नहीं लें तो काम कैसे चले।

श्रीकृष्ण को पाने का भी एक ही उपाय है सत्संग। यदि वह नहीं करते तो मिलन होगा नहीं। तो भैया रे! इससे भागोगे तो काम बनेगा नहीं। इसके सिवा कोई चारा नहीं।

गोस्वामी जी भी यही कह रहे हैं—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

—दोहावली 22

'अबहीं' मतलब आज की बात है, वायदा है, कल का नहीं। पर कब? 'तजि कुसमाजु' कुसमाजु मतलब कुसंग। कुसंग छोड़कर सत्संग करो। 'बिगरी...सुधरै' से मतलब राम मिलन है।

भरत राम को मनाने वन जा रहे हैं। मार्ग में मुनि के आश्रम में ठहरे हैं। मुनि उनके राम प्रेम को देखकर कह रहे हैं—

तुम तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू॥

भैया भरत! ऐसा लगता है मानो तुम भरत नहीं, राम प्रेम ही देह धारण कर भरत हो गये हो।

एक दिन मैंने देखा यह जगत्, जगत् नहीं अहंकार ने ही जगत् का रूप धारण कर लिया है। इसके कण-कण में अहंकार भरा है मानो अहंकार ही देह धारण कर जगत् बन गया है।

भैया रे! प्रभु से मिलने में बाधक है एकमात्र अहंकार। यह अहंकार समाप्त हो, दीनता आवे तो प्रभु से मिलने में देर नहीं। प्रकृति का कण-कण सिखा रहा है, कब किस अवस्था में प्रभु से मिलन होता है। यह रज कण पूछता है, "प्रभु से मिलना चाहते हो। आओ मेरी स्थिति में मान अपमान की दुनिया से ऊपर उठ जाओ। मैं को मिटा दो। देखो मुझे, क्या मैं किसी से कुछ कहता हूँ?"

"प्यार करते हैं जो अपमान को, प्राप्त कर लेते हैं वह भगवान् को"

(स्थान बिहारीपुरा के मकान का कक्ष। समय सायंकाल साढ़े चार बजे के पश्चात्। आज मंगलवार है। अब श्री पूज्यपादजी, प्रति मंगलवार को ही भक्तों के साथ वार्ता करते हैं। मधुपुरी से कुछ युवक भक्त आये हैं। श्री पूज्यपाद अपने टाट के आसन पर मसनद को गोद में लिए विराजे हैं। आनन्द विभोर गद्गद् हृदय।)

श्री पूज्यपादजी— भैया मैं अपने परिवार में बैठा हूँ तुम सब मेरे परिवार के लोग हो। तुमसे सहज वार्ता करने आ बैठा हूँ। मैं चाहता हूँ सब सुखी हो जावें। किसी के पास कोई अच्छी चीज होती है वह चाहता है सबको बाँटकर खाऊँ। मेरा यह शुरू से स्वभाव रहा है खाने की कोई अच्छी चीज मिलती थी तो बाँट कर खाता था। अब मुझे आनन्द मिला है, सुख होता है। चाहता हूँ सबको बाँट दूँ। ले जाओ भैया! अच्छा लगे तो रखना अन्यथा फेंक देना नाली में।

भैया रे! मुझे भगवान् ने भूतल पर भेजा ही ऐसे दिन है, जिस दिन जल ग्रहण करना भी निषेध है। इससे संकेत मिलता है कि यहाँ की कोई वस्तु हमारे लिए ग्राह्य नहीं है। तो आये क्यों हैं? श्रीकृष्ण को खोजने के लिए। बस एक काम यही है, तुम सब भी यही करो।

(समय सायंकाल लगभग 4 बजे। श्रीपूज्यपाद नित्य की भाँति आसन पर विराजे हैं। कुछ भक्तजन शान्ति से कुछ सुनने की जिज्ञासा से बैठे हैं।)

जगत में रमणीयता (सुन्दरता) दीखती है भैया! वस्तुतः है नहीं। भ्रममात्र है। नहीं जानते तो विचार कर देखो—इस हाड़-मांस से बने पुतले को। क्या है इसमें? एक मात्र गन्दगी। हाड़, मांस, रुधिर मल-मूत्रादि बस या और कुछ उसी पर त्वचा (खाल) का खोल चढ़ रहा है। जिसमें सुन्दरता का भ्रम हो गया है।

तनिक चार-छः दिन भयंकर किसी बीमारी के पश्चात् अथवा दो दिन टट्टी लग जाने के बाद जब मक्खी भिनकने लगती हैं तब देखो उस सुन्दरता को। घृणा आती है। छूने को मन नहीं करता। कहाँ गया वह सौन्दर्य? अरे यह तो उस नटखट खिलाड़ी का सौन्दर्य है उसी की सत्ता है। **यह भाव, शव है शव।** इसे तो मर जाने पर फेंकना ही पड़ता है। छूने पर स्नान करना पड़ता है।

तो देख लिया न! सौन्दर्य किसमें है? इसी प्रकार जगत् की प्रत्येक वस्तु जो सुन्दर सी लगती है, मन को बरबस अपनी ओर खींचती है वास्तव में सुन्दर है नहीं मात्र भ्रम है। यदि जगत् में रमणीयता नहीं तो मन हट गया। यहाँ से हटा तो जो रमणीय है वहाँ लगेगा। रमणीय है एकमात्र श्रीकृष्ण।

दूसरी बात है, जगत् को सुखरूप देखना। इस पर भी विचार करलें, यहाँ की कौन सी वस्तु सुखद है? शरीर? यह तो रोगों से भरा पड़ा है चलते-चलते कहीं भी गिर सकता है, कोई भी अंग किसी क्षण भी बेकाम हो सकता है। तो यह भी सुखद नहीं। धन? यह तो मिटने वाला है। आज करोड़पति हो कल भिखारी भी हो सकते हैं।

देख लो भैया! मैं कोई ऐसी बात नहीं कह रहा जो समझ में न आवे तो धन भी सुखद नहीं।

तीसरी बात स्नेह! इस जगत् में जो हमारे स्नेह के नाते जुड़े हुए हैं यह सब धोखा है, स्नेह कहाँ? स्वार्थ है। बिना स्वार्थ कोई किसी को नमस्कार तक नहीं करता। तो स्नेह भी सुखद नहीं रहा।

अन्तिम बात है जगत् की सत्ता। इसको जो सत्य माना हुआ है और है वास्तव में असत्य। यही सबसे बड़ी भूल है। मैं सच कहता हूँ, इस जगत् की सत्ता केवल स्वप्न है वास्तव में है कुछ नहीं। इस भूल को सुधार लिया जाय तो प्रभु तो मिले हुए ही हैं भैया! भूल की धूल के धुंधलाहलट में दीखते नहीं।

बद्रीनाथ जाने वाले यात्री को मार्ग में चट्टियाँ पड़ती हैं उन पर विश्राम करता हुआ यात्री एक दिन बद्रीनाथ पहुँच ही जाता है। श्रीकृष्ण दर्शनाभिलाषी की यात्रा में भी चट्टियाँ हैं। पहली चट्टी (विश्रामस्थल) है विवेक। मन इधर-उधर दौड़-भाग छोड़कर विवेकपूर्वक बढ़े तो लक्ष्य अवश्य प्राप्त कर सकता है।

विवेक कब होता है? सत्संग से। सत्संग प्राप्त होता है अनुभवी सन्तों से। अनुभवी सन्तों का मिलन निश्चयात्मिका बुद्धि से होता है। अचल एवं ध्रुव सत्य संकल्प ही निश्चय है। निश्चय में परिवर्तन नहीं होता जो एक बार निश्चय कर लिया वह अमिट होता है। किसी भी परिस्थिति में बदल नहीं सकता।

इस सम्बन्ध में मेरे जीवन से सम्बन्धित एक घटना है जो मेरे जीवन प्रारम्भ की पूर्वावस्था में अन्तर्मन में विचार के रूप में घटी थी। वह है—

संसार की समस्त वस्तु, भोग ऐश्वर्य की सामग्री तो तेरे लिए है और तू किसके लिए है? बस इसी विचार ने, इसी प्रश्न ने मेरे जीवन पथ को मोड़ दिया, निश्चय हो गया और मैं चल पड़ा।

तो भैया! निश्चय करके चल पड़ो। चलोगे तो पहुँचोगे नहीं, मैं यह नहीं मानता अर्थात् अवश्य पहुँचोगे। अपनी शिथिलता ही हमें स्थान-स्थान पर असफल कर देती है।

(समय सायंकाल तीन बजे के पश्चात् का है। एक राम भक्त बहिन श्री पूज्यपाद के दर्शनार्थ कुछ जिज्ञासा लेकर आई हैं। श्री पूज्यपाद अपने छोटे कक्ष में टाट के गद्दे पर प्रसन्न मुद्रा में विराजे हैं। श्री माँ भी पास बैठी हैं।)

श्री पूज्यपादजी— मन की दशा 36 का अंक बनी हुई है। अभिप्राय? अभिप्राय है, मन प्रभु से विमुख है 36 के अंक के समान।

यदि इसको उलट कर 63 बना लिया जाय, अर्थात् प्रभु के सम्मुख कर लिया जाय तो श्रीराम मिलन में देर नहीं। मन की पाँच अवस्थाएँ हैं।

पहली उलटा मन। हर बात को उलटा सोचता है। **दूसरी** अचेत मन। जिसे परमार्थ का होश नहीं, भोगों के नशे में अचेत पड़ा रहता है। **तीसरी** है रोगी मन। रोगी मन सदा पाप रोग से ग्रसित रहता है। पाप कर्म में स्वाभाविक रुचि रहती है। **चौथी** है मरा मन अर्थात् मुर्दा-मन। इस अवस्था में न तो प्रभु पर विश्वास होता है और न उनको मानता है। यह चारों अवस्थाएं प्रभु मिलन में बाधक हैं।

पाँचवीं अवस्था है स्वस्थ मन। स्वस्थ मन विकार शून्य होता है इसमें कोई विकार राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ, अभिमान ईर्ष्यादि नहीं रहते। समता आ जाती है। यह अवस्था सन्तों के मन की होती है। साधक का मन स्वस्थ कैसे हो?

सन्तों की शरण में जाकर नम्रता से प्रभु विषयक ज्ञान प्राप्त करें, फिर प्रभु-दर्शन की चाह की झाड़ से मानस को झाड़कर साफ करें, उसमें राम के अनुराग का जल भर कर गोता लगावें, गोता लगाते ही मन विकारशून्य हो जायगा। अविकारी मन ही स्वस्थ होता है।

अब मन स्वस्थ हो गया। बोझा हल्का हो गया। शांति है, कोई खट-पट नहीं तब भजन होगा। बैठ कर प्रतीक्षा करो राम प्रभु के आगमन की। एक

दिन अवश्य राघवेन्द्र तुम्हारी कुटिया पर पधारेंगे। प्रतीक्षा में अपने आप को भूल जाओ। खो जाओ उनकी याद में। बस राम प्रभु की याद ही हो और कुछ नहीं। उनके बिना जीवन सूना लगे खाना, खाना न रहे। हँसना, बोलना कुछ न भावे। जिस प्रकार विदुषी स्त्री का पति से वियोग होने पर विधवा जीवन हो जाता है। श्रृंगारादि अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार राम प्रभु के वियोग से उनके बिना वैधव्य जीवन हो जाय।

"साजन बैठे घर के भीतर बाहर ढूँढत कहाँ डोले" तो भैया! तुम्हारे साजन, तुम्हारे प्रभु, तुम्हारे इष्ट, तुम्हारे मन मन्दिर में बैठे हैं। तुम बाहर ढूँढ रहे हो। अरे भैया! चीज तो घर में है बाहर सड़क पर कहाँ मिलेगी। तो तुम्हारे इष्ट तुम्हें अपने मन मन्दिर में कैसे दीखें वही करो।

अपने साथ अन्याय न करो, अपने साथ दया न करो। अन्याय करने से अभिप्राय है अपने आप को महान् मानना। जो नहीं हो, उसे समझना, बस यही अन्याय है। देखो कि तुम्हारी वास्तविक हालत क्या है? भीतर क्या हो, बाहर क्या दिखा रहे हो? इस दिखाने से प्रभु नहीं रीझते भैया।

अपने साथ दया मत करो। कठोरता से अपना निरीक्षण करो। अपने को चेक करो अपनी बुराइयों को एक-एक करके, खोज-खोज कर निकाल कर फेंक दो, बस फिर प्यारे प्रीतम को ढूँढ़ो। वह यहीं तो विराजे हैं। झलमल उनकी झाँकी करो।

तालाब या किसी भी जलाशय में कंकड़ डालते हैं तो उसकी लहरें उठती हैं और वह लहरें सीधी किनारे तक चली जाती हैं बीच में ठहरती नहीं। यह तो आपने देखा होगा, यह कोई नई बात नहीं है।

ऐसे ही भैया! यदि मानसरोवर में श्रीकृष्ण चिन्तन का कंकड़ डालोगे तो मिलनेच्छा की लहरें उठेंगी। वह लहरें तुम्हें ले जाकर श्रीकृष्ण चरण किनारे पर ही छोड़ेंगी बीच में नहीं।

(आज मंगलवार है। दिनांक 10.12.68। समय सायंकाल 4:30 बजे के लगभग। श्री पूज्यपाद सत्संग कक्ष में टाट के गद्दे पर मसनद के सहारे विराजे हैं। भक्तजन कुछ सुनने की इच्छा से उत्सुकता से बैठे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— छिपाओ मत, दिखाओ मत, यह क्या? हाँ हाँ यही है। कन्हैया से मिलना चाहते हो तो यही करना होगा। उनसे कुछ छिपाओ मत। जो कुछ तुम्हारे पास है सब उन्हें दिखा दो। दिखाओ मत दुनिया को, जैसे हो वैसे ही आ जाओ सामने। भगवान् श्रीराम प्रभु कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

तो निर्मल मन कैसा होता है? कपट रहित। यह कब होता है? जब कोई दिखावा न हो, कोई छिपाना न हो। दिखाओ भी मत, छिपाओ भी मत। यह दोनों बातें नहीं है तो कपट रहित निर्मल मन हो जायगा और निर्मल मन होते ही कन्हैया मिल जायगा।

श्री प्रभु से मिलने में सबसे बड़ी जो बाधा है वह है अहंता और है अनेक प्रकार का अभाव। अभाव! अभाव! अभाव! यह अभाव कभी पूरा नहीं होता। जब अभाव पूरा नहीं होता तो मन क्षुभित होता है। क्षुभित मन में अनेक विकार, राग-द्वेष, ईर्ष्या, क्रोधादि पैदा हो जाते हैं। पीड़ाएँ जन्म लेती हैं मन रोगी हो जाता है। रोगी होकर फिर वह कैसे प्रभु की याद करे? जब याद नहीं तो चाह नहीं और यदि चाह नहीं तो मिलने का सवाल ही कहाँ?

प्राणी मात्र के अन्दर एक बड़ा दोष है जो उसके परमार्थ साधन का बहुत बड़ा रोड़ा है। वह है परचर्चा। बेकार में लोग एक दूसरे की चर्चा करते हैं। वह अच्छा है, वह बुरा है। अगर वह नानात्व की भावना समाप्त हो जाय तो विलम्ब नहीं लगता। दूसरों के गुण दोषों का वर्णन करना बहुत बड़ा दोष है। इसी के चक्कर में मनुष्य प्रभु को भूला रहता है। बस यही सब दु:ख का कारण है। तो भैया मेरे प्रभु को भूलना ही दोष है और है दु:ख का कारण। उनको याद करना ही है गुण और सुख, अति सुख का मूल। यदि सुख चाहते हो तो दोषों का त्याग कर गुण ग्रहण करो।

"सुनियै सबकी कहिए न कछू, रहिये इमि या भवबागर में" बोलो मत सुनो सब की। बोलने वाला ही गिरता है।

आसुरी सम्पदा का अन्त कहाँ है? संकल्प की, दृढ़ संकल्प की पराकाष्ठा में। संकल्प इतना दृढ़ हो कि कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति हमें तनिक भी, किंचित् मात्र भी विचलित न कर सके। जिस लक्ष्य को लेकर हम चलते हैं, उससे हम राई के करोड़वें अंश के बराबर भी न हटें। प्राणों की आहुति दे दें पर संकल्प में ढिलाई न आवे। यदि यह दृढ़ता है तो लक्ष्य प्राप्ति में विलम्ब नहीं।

"तृणादपि सुनीचेन" सभी ऐसा कहते हैं। स्थान-स्थान पर संकेत मिलता है। अपने आप को तिनके से भी नीचा मानो। पर भैया! मैं कहता हूँ अभी इसमें अपनी सत्ता है। तिनके से छोटा ही सही पर स्व (मैं) की सत्ता तो है ही। मैं तो कहता हूँ इसे भी मिटा दो। हृदय से बोल उठो **"मैं कुछ नहीं सब कुछ तुम्हीं हो।"**

केवल तुम, तुम ही तुम और कुछ नहीं। बस खेल बन गया। जब मैं ही मिट गया तो अहं कहाँ रहा? अहं नहीं तो समस्त विकार छूट गये, मिट गए। विकार हीन निर्मल मन पुकार उठेगा **"तुम्हीं तुम हो, मैं कुछ नहीं।"**

भैया रे! आज तनिक इस मैं को ढूँढें यह 'मैं' क्या है? कहाँ है? मैं! मैं! क्या चक्कर है यह 'मैं'? देखो शरीर के प्रत्येक भाग पर नजर डालो। क्या सिर 'मैं' है? उत्तर मिलता नहीं। हाथ-पाँव? नहीं। भीतर देखो हाड़-माँस? नहीं सब कुछ देखा पर इस 'मैं' का कहीं पता नहीं चला। आखिर क्या बला है यह मैं? जिसकी अकड़ में कुछ सूझता ही नहीं तो भैया मेरे! मैं कुछ नहीं। बस अहंता का मिथ्या अभिमान है यह 'मैं'। इस 'मैं' को भुला दो। इस पर्दे को फाड़ दो। इस मल-मूत्र की गठरी में, 'मैं' 'मैं' का व्यर्थ अभिमान लादे फिर रहे हो इसे फेंक दो। बोझ हलका हो जाय तो स्वाँस आवे, आँखें खुलें तब देखो उस अनोखी सूरत की मनोहर सलोनी झाँकी को।

क्या बताऊँ मेरे भाई! उस अनोखे की अदा। अगर तुम एक बार तनिक सी झलक भी उसकी देख लोगे तो पागल हो जाओगे। देखने की चीज ही वह है और सब तो कूड़ा है। क्या देखते हो इस कूड़े को? यह जो कुछ तुम्हें दीख रहा है वास्तव में कुछ है नहीं। नाम ही नाम है वस्तु कुछ नहीं। वस्तु तो बस एक तुम्हारा कन्हैया है।

"प्याज"! प्याज का नाम प्याज है। देखो क्या है प्याज? जब उसे छीला तो आदि से अन्त तक छिलका ही मिला। प्याज नाम की कोई वस्तु न मिली तो यह जो कुछ तुम्हें दीख रहा है बस नाम ही नाम है। है कुछ नहीं। यदि यह समझ में आ जाय तो कैसा अभिमान। काहे का अभिमान? जब कुछ है ही नहीं तो रागद्वेषादि किससे?

जब इससे मुक्ति मिली तो जीवन में समता आ जाती है। समता में सब समान हो जाता है। सुख से आनन्द नहीं, दुःख में क्लेश नहीं, निन्दा से क्षोभ नहीं, स्तुति से प्रसन्नता नहीं, कोई अच्छा नहीं, कोई बुरा नहीं, कोई अभाव नहीं, परमशान्ति है। बस तब प्रभु का निरन्तर चिन्तन होगा।

भैया! मैं तो सरल से सरल उपाय बताता हूँ। पर तुम चलना ही नहीं चाहते और दोष देते हो मुझे। दोष दो यहाँ तक तो ठीक है मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं तो फैसला कर चुका हूँ पर खड़े-खड़े दोष मत दो, चल पड़ो। चलते-चलते तुम्हारी समझ में जो आवे मुझे कहते जाओ। जब पहुँच जाओगे तो अपने आप देखोगे, कौन दोषी है। मेरे अनोखे कन्हैया की सूरत देखते ही सब भूल जाओगे।

सचमुच बड़ा अनोखा है। क्या अनोखा है जी? अरे वह कन्हैया बड़ा अनोखा है। यदि उससे क्रोध करो तो प्रेम बन जाता है, लोभ करो तो प्यार बन जाता है और काम की इच्छा करो तो प्रेम बन जाता है। क्या पूछते हो उस अनोखे का अनोखापन। जो बातें इधर बाँधने वाली हैं वह उधर बंधन काटने वाली हैं। यही तो सबसे अधिक अनोखापन है।

(दिनांक 17.12.68 समय सायंकाल साढ़े चार बजे के पश्चात्। आज मंगलवार है। साप्ताहिक वार्ता श्री पूज्यपाद भक्तों के साथ करते हैं। आज भी भक्तजन शान्ति से बैठे हैं। कुछ युवक भक्त मधुपुरी से भी आये हैं।)

श्री पूज्यपादजी— आँखों में जाला पड़ गया है भैया! जब यह कटे, साफ हो तब दिखाई पड़े। कहते हो कन्हैया दीखता नहीं। दीखे कैसे? आँखें साफ हों तब ही तो दीखेगा। आखें साफ कैसे हों? जाला कटवालो भैया। किससे कटवायें? डाक्टर से। कन्हैया के प्यारे ही इस रोग के डाक्टर हैं। जहाँ तुम्हारी आत्मा माने उनके चरणों में अपने आपको समर्पण करके निश्चिन्त हो जाओ। वह आप सब सँभाल लेंगे तुम तो बस तन-मन-धन से उनके हो जाओ।

काँटा लग जाता है तो उसे निकालने के लिए दूसरे काँटे की आवश्यकता होती है। यह भव रोग का काँटा लगा हुआ है। इसे निकालने के लिए कन्हैया के प्यार के काँटे की जरूरत है। यदि अपने आप काँटा नहीं निकलता तो किसी से निकलवाना पड़ता है। तो भैया रे! पीड़ा से छूटना चाहते हो तो यह तो निकलवाना ही पड़ेगा। जो निकालना जानता है उसके पास जाना ही पड़ेगा। अकड़ोगे तो काम कैसे चलेगा?

अपेक्षा न हो कोई आवश्यकता हो ही नहीं। अगर आवश्यकता नहीं है तो चिन्ता भी नहीं है, चिन्ता नहीं तो संसार का चिन्तन (यह हो वह हो यह नहीं है, वह नहीं है आदि आदि) समाप्त हो जाय, जब इधर का चिन्तन मिटा तो उधर प्रभु का चिन्तन होने लग जाय। चिन्तन करना नहीं पड़ता, होता है।

भैया रे! जिससे प्यार होता है उसकी याद आती है करनी नहीं पड़ती। जिसकी आवश्यकता है, जरूरत है तो उसकी याद आवेगी ही। देखलो तुम्हें किसकी जरूरत है? जरूरत पड़ने पर ही व्याकुलता होती है, प्राप्त करने की इच्छा होती है, उपाय सोचना पड़ता है, प्रयत्न करते हैं, तब वह मिल जाती है। तो कन्हैया की जरूरत है तो उपाय सोचो, प्रयत्न करो। एक दिन वह मिल ही जायगा यह मेरा वायदा है।

अपने से मिलने में कोई कठिनाई नहीं होती, कोई बाधा नहीं होती, कोई रोक नहीं सकता। दृष्टा के रूप में मेरा कन्हैया है और यह है उसका दृश्य—जो देख रहा है वह भी वही है। सब कुछ वही तो है। वही एकमात्र अपना है तो उससे मिलने में क्या कठिनाई है?

अभी रास्ते में एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा, "आप क्या जानते हैं?" मैं बोला भैया रे! मैं तो एक अपने कन्हैया का नाम जानता हूँ और कुछ नहीं जानता। आज मैंने शौच से लौटते समय पृथ्वी में खूब लात मारी फिर थूक दिया। शौच करके आया ही था पर उसने मुझसे कुछ नहीं कहा। तब मैंने देखा यह स्वरूप तो मेरे कन्हैया का है।

फिर वहीं खड़े हुए पेड़ों को देखा। पूछा, "तुम सबको अपनी छाया में आश्रय देते हो, कोई पत्थर मारे, कोई डण्डा मारे, कोई सिंचन करे, किसी से कुछ नहीं कहते"? यह तो मेरे कन्हैया का स्वभाव है।

यों ही चारों ओर कण-कण में कन्हैया दीखने लगे तो यह संसार, यह जीवन आनन्दमय हो जाता है। बस आनन्द ही आनन्द। आनन्द के सिवा और कुछ दीखता ही नहीं। सब दिशाएँ आनन्दमयी हो जाती हैं। आनन्द, आनन्द बस आनन्द (पूज्यपाद ऐसा कहते-कहते भाव-विभोर हो गये और आँखों से अश्रु धारा बहने लगी।)

नियम के नाम से आज का साधक घबड़ाता है। कारण नियम, प्रमाद व आलस्य की छाया को भी नहीं चाहता। आज लोग कहते हैं नियम वियम कुछ नहीं होता। नहीं मेरे भाई! यह प्रमाद की ध्वनि है। प्रेम उत्पन्न ही नियम से होता है। नियम की पराकाष्ठा ही प्रेम है। उस स्थिति में पहुँचकर प्रेम और नियम एक हो जाते हैं, नियम स्वतः ही छूट जाता है। छोड़ना नही पड़ता। दोनों एक रूप हो जाते हैं। अतः श्रीकृष्ण को पाने की इच्छा रखने वालों को नियम का पालन करना आवश्यक है।

"जहाँ बैठारो तहाँ ही बैठूँ, जो देओ सोई खाऊँ।" मीरा अपने प्रीतम प्रभु गिरधर से कह रही है। यह आवाज कब निकलती है? जब साधक

पूर्णतया निष्काम हो जाता है। कोई कामना नहीं, कोई अपेक्षा नहीं। प्रत्येक स्थिति में सन्तोष है। यदि तुम भी अपने प्रीतम प्रभु की इच्छा में अपनी इच्छा को मिला कर मीरा की भाँति पुकार उठो तो सारी खटपट मिट जाय, निष्काम जीवन हो जाय। जब कोई कामना नहीं तो अभाव कैसा? अभाव नहीं तो क्रोध का प्रश्न समाप्त हो गया, समता आ गई, प्रभु का चिन्तन निरन्तर होने लगा। चिन्तन के साथ ही प्रभु का अनुभव होगा।

(स्थान बिहारीपुरा के मकान का कक्ष। दिनांक 22.2.72, आज मंगलवार है। प्रति मंगल ही श्री पूज्यपाद भक्तों के साथ आध्यात्मिक वार्ता करते हैं। मधुपुरी से भी कुछ भक्तजन आये हैं। उन्हीं सबसे वार्ता हो रही है।)

श्री पूज्यपादजी— सोना खोटा है भैया! खोटे सोने की पूरी कीमत नहीं मिलती। खरा करा लो। खोट निकलते ही पूरी कीमत मिल जायगी।

मन में खोट भरा है दूसरों की निन्दा करने का। इस खोट को निकाल दो आज से, अभी प्रतिज्ञा कर लो, अब इस जीवन में किसी की निन्दा नहीं करनी। सवाल तत्काल का है, दो चार दिन, महीने दो महीने का नहीं। भोजन करते ही क्षुधा की तृप्ति हो जाती है। यह नहीं कि आज अब भोजन किया क्षुधा फिर कभी मिटेगी।

तो भैया! आज यही ले जाओ। इस मुँह से किसी की निन्दा निकलेगी ही नहीं। यदि तुमने सत्संग की बात को माना तो यह मेरा वायदा है तुम्हें इसी जन्म में कन्हैया मिल जायगा। क्या तुम्हारी आत्मा यह मानती नहीं? कितना सस्ता सौदा है। यदि इस अनित्य को फेंक कर नित्य वस्तु कृष्ण तुम्हें मिल जायँ तो इससे अधिक और क्या चाहते हो? तो अभी, आज ही इसी क्षण से दूसरों की निन्दा करना छोड़ दो।

खाली दीया है, बाती और तेल नहीं है वहाँ पर प्रकाश चाहते हैं? दोष देते हो औरों को, कोई हमारा दीया नहीं जलाता। कभी अकड़ते हो कोई हमारा दीया जलादे तो जानें कि दीया जलाना आता है अरे मेरे भैया! खाली दीया नहीं जलता। इसमें बाती डालो, स्नेह (तेल) भरो, दीया तैयार हुआ कि तुरन्त जल जायगा फिर देर नहीं लगती।

तुम्हारा हृदय दीपक खाली है। इसमें प्यारे प्रियतम प्रभु के विरह की बाती डालो, चाह तथा स्नेह (तेल) भरो, तब किसी दीवाने के पास जाओ (कृष्ण के प्यारे के पास)। वह तत्काल प्यार की, कन्हैया के प्रेम की दियासलाई दिखा देगा, ज्योति जल उठेगी। प्रकाश हो जायगा तो तुम्हारा मन मन्दिर जगमगा उठेगा। वहीं तुम्हें प्यारे प्रीतम का दर्शन होगा बाहर मत भटको। बहिर्मुखिता छोड़ो, औरों को मत देखो, अपने को देखो।

अन्धा व्यक्ति यदि अपने घर पहुँचना चाहता है तो उसे किसी आँख वाले का कन्धा पकड़ना पड़ता है। अगर अहंकारवश वह अकड़ता है, सहारा नहीं लेता तो ठोकर खायेगा ही।

आज का मानव सब प्रकार हीन है। इस युग को अन्य युगों की अपेक्षा सबसे हीन माना गया है। आयु में! अल्प आयु। बुद्धि में! अल्प बुद्धि और विद्या में! अविद्या सभी में। परन्तु अकड़ में क्या पूछते हो? न जाने वह अपने आपको क्या समझता है। अन्धा होते हुए भी अपने को अन्धा मानने को तैयार नहीं। अन्धा, अन्धे को पकड़कर चल रहा है भैया!

(समय सायंकाल लगभग आठ बजे का है। अभी-अभी श्री पूज्यपाद श्री शुकदेव जी के मन्दिर से दर्शन करके आये हैं। आज अक्षय तृतीया है। बाहर भीड़ है। लोग श्री बिहारी जी के चरण-दर्शन के लिए भागे जा रहे है। श्री पूज्यपाद बाहर छत पर खाट पर बैठे हैं। पास ही पूज्य माँ भी बैठी हैं। (उनकी लीला सहचरी)। गोविन्द भैया (उनके कनिष्ठ पुत्र) भी वहीं बैठे हैं। एक दो जिज्ञासु भी पास बैठे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— हम श्री शुकदेव जी का दर्शन करने गये वहाँ बिल्कुल भीड़ नहीं थी। वहाँ कोई भी शायद ही पहुँचता है। जिन्होंने श्री बिहारी जी को प्रकट किया है उनके दर्शन करने कोई नहीं जाता। भागा-भागी मच रही है कोई सुनता ही नहीं। बन्द है सब इस जेल खाने में।

गोविन्द भैया— पिताजी मैं बताऊँ कौन से जेलखाने में? बताओ। माया के जेलखाने में। हाँ भैया! और पिताजी! पहरेदारों का कड़ा पहरा है,

वह निकलने ही नहीं देते हैं। हाँ भैया सच कहते हो। पहरेदार कौन है बताऊँ पिताजी? बताओ। काम, क्रोध, लोभ इत्यादि। शाबास! तुम ठीक कहते हो। अविद्या में सब फँस रहे हैं।

चील कितनी भी ऊँची आकाश में उड़ रही होती है परन्तु उसकी दृष्टि माँस पर ही होती है। इसी प्रकार लोग भी दोष ही देखते हैं गुणों पर उनकी दृष्टि जाती ही नहीं। यही तो अविद्या है पिताजी! हाँ महाराज! (कभी- कभी वह भैया को इसी प्रकार सम्बोधन करते हैं।)

गोविन्द भैया— अविद्या क्या है तथा उससे छूटने का उपाय क्या है? यह बताऊँ पिताजी! बताओ महाराज! काम क्रोधादि में फँसे रहकर ममत्व रखना, यह मेरा है, यह सोचना ही अविद्या है। ममत्व को त्यागकर श्रीकृष्ण के हो जाना ही माया से छूटने का उपाय है। यही बात है।

श्री पूज्यपादजी— बुद्धि की पाँच अवस्थाएँ होती हैं। पहली संशय, दूसरी विपर्यय, तीसरी निद्रा, चौथी स्मृति और पाँचवीं निश्चय। इनमें तीन; साधक को पतन की ओर और दो; उत्थान की ओर ले जाती हैं। प्रत्येक साधक को अपना निरीक्षण स्वयं करना होगा कि उसकी अवस्था क्या है?

संशय! यदि उसे संशय होता है तो वह बढ़ नहीं सकता। क्योंकि उसे यह विश्वास ही नहीं होता कि जो सन्मार्ग बताया जा रहा है वह ठीक है या नहीं? अतः संशय का त्याग करने से काम चलेगा।

विपर्यय! इसमें सत्य को असत्य, उलटा को सीधा, असत्य को सत्य और सीधे को उलटा देखता है। यह बहुत बड़ा दोष है। इसको हटाये बिना लक्ष्य की ओर बढ़ा नहीं जा सकता।

निद्रा! इसमें न तो साधक सुनता है, न समझता है। जब सुनता ही नहीं तो समझेगा क्या? जब समझ में नहीं आया तो विचार का तो प्रश्न होता ही नहीं। जब इन दोषों को हटाकर साधक महापुरुषों की वाणी को सुनेगा तब सुना हुआ उसकी स्मृति में रहेगा। "स्मृति" में रहेगा तभी उस पर विचार

करेगा, विचारेगा तो श्रद्धा होगी, श्रद्धा तभी होगी जब विश्वास करेगा, विश्वास तब होगा जब ऊपर कहे तीनों विकार नहीं होंगे।

स्मृति ! स्मृति में रहने पर ही उस पर विचार होता है। विचार करने पर विश्वास होता है, विश्वास होने पर निश्चय करता है, निश्चय करके चल पड़ता है। चलते-चलते लक्ष्य तक न पहुँचे यह हो नहीं सकता।

तो भैया ! विकारों से छूटे बिना काम नहीं चलता। विकारी को यदि साक्षात् प्रभु को दिखा दिया जाय तब भी उसको विश्वास नहीं होता। उसमें भी वह कुछ न कुछ अड़ंगेबाजी लगा ही देता है। "अजी ढोंग है ढोंग" इत्यादि (टॉर्च से दीवाल पर लक्ष्य करते हुए दिखाया) देखते हो यह क्या है? दीवाल नहीं यह श्रीकृष्ण हैं। यह खड़े हैं तुम्हें दीखते नहीं। क्यों? विश्वास नहीं है न? "हाँ"।

यह एक स्थिति होती है जब सब कुछ वही दीखते हैं और कुछ दीखता ही नहीं (पूज्य माँ की ओर आमुख होकर) ऐसे लोग जल्दी उन्नति करते हैं जो अपनी स्थिति को ठीक समझते हैं। जब दीखते ही नहीं विश्वास ही नहीं तो यह (एक भक्त की ओर संकेत करते हुए) कैसे कहें कि दीखते हैं। जो भीतर था वही कह दिया छिपाया नहीं।

पंखा झलने को मना करते हुए कहने लगे वह एक ऐसी स्थिति होती है जहाँ इन गुणों का प्रवेश नहीं होता। शायद उनका यह कहने से अभिप्राय था कि जब मन प्रभुमय हो जाता है तो वह ऐसी स्थिति होती है, जहाँ सर्दी-गरमी आदि गुणों का प्रवेश नहीं होता। इन सब बातों का सम्बन्ध तो मन से है। मन नहीं तो अनुभव कौन करे?

रात्रि समय 9 बजे से ऊपर हो चुका था। श्री पूज्यपाद ने घड़ी देखी तो 9 बजकर कुछ मिनिट थे।

(स्थान बरसाना प्रियाकुण्ड का कक्ष। दिनांक 9 जून 1966। आज सोमवार है। परम पूज्य श्री पूज्यपाद जी बरसाने तीन-चार दिन हुए तब वृन्दावन से आए हैं। उन्हें यहाँ विशेष अच्छा लगता है। प्रतिक्षण अधिक प्रसन्न रहते हैं। यह समय

लगभग साढ़े सात आठ बजे प्रातः काल का है। कुछ बादल से हो रहे हैं। बड़ा सुहावना समय है। श्री पूज्यपाद प्रियाकुण्ड में स्नान करके अभी कक्ष में आकर टाट पर बैठे ध्यान मग्न श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाकृपाकटाक्ष स्तोत्र का पाठ कर रहे हैं। भाव समाधि में विभोर नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है। माँ की अगाध असीम कृपा का अनुभव कर अत्यन्त गद्‌गद् हो रहे हैं। स्तोत्र पाठ समाप्त कर प्रकृतिस्थ हो कक्ष में एक छोटी खाट पर विराजे हैं। आज अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक प्रसन्न हैं। पास बैठे एक युवक भक्त से कह रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— भाई! आज तुम हमें अपना मानस पाठ सुनाओ तो फिर हम भी तुम्हें अपना मानस सुनायेंगे।

युवक भक्त— पहले आप ही सुनाइये।

श्री पूज्यपादजी— अच्छा! सुनो! मैंने जो अभी देखा है वही सुनाता हूँ। सागर है उसमें अनेक असंख्य मछलियाँ हैं, अनन्त नहीं असंख्य। अनन्त तो केवल श्रीकृष्ण हैं। इस सागर की इन असंख्य मछलियों को जल समान रूप से प्राप्त है। ऐसा नहीं कि किसी को कम किसी को अधिक। ऐसा भी नहीं किसी को प्रातः किसी को सायंकाल और न ऐसा ही है किसी को आज किसी को कल और न ऐसा कि किसी को है ही नहीं।

यह जल ही इन मछलियों का प्राण है। एक क्षण भी यह जल से पृथक् होकर जीवित नहीं रह सकती। इसी प्रकार इस संसार-सागर के इन असंख्य जीवों को प्यारे श्रीकृष्ण का प्यार, उनकी कृपा समान रूप से प्राप्त है। श्रीकृष्ण ही सबके प्राण हैं। उससे पृथक् जीव की कोई सत्ता नहीं। बस यह अनुभव करने की बात है। इसका अनुभव होते ही आनन्द! महा-आनन्द। चारों ओर आनन्द ही आनन्द है। भैया रे! बरसाने में, हाँ बरसाने में। समझ रहे हो मैं क्या कर रहा हूँ? "बरसाने में आनन्द बरस रहा है।"

चारों ओर आनन्द की बाढ़ आ रही है। बाँध ले चलो जितना चाहो, भर ले चलो। फिर अशान्ति क्लेशादि का क्या काम? बस आनन्द, आनन्द, आनन्द ही आनन्द ।

मैं यह देखने ही तो यहाँ आया था कि मेरा यार यह कन्हैया क्यों बार-बार दौड़कर बरसाने आता है तो मुझे दिखा दिया। बस, अब बस इससे आगे और कुछ है ही नहीं। बस यही याद रखना बस।

कितनी करुणामयी हैं श्रीजी! संसार के लोग तो यदि किसी पर किसी कारणवश प्रसन्न होते हैं तो कुछ धन अथवा कोई पद दे देते हैं। परन्तु यह अपार करुणामयी माँ तो अपने जीवन सर्वस्व श्रीकृष्ण को ही दे डालती हैं।

अरे देखो तो इसका प्यार? मैं क्या करूँ भैया रे! तुम्हें नहीं दीखता। देखो! लुटा रही है दोनों हाथों से ।

एक बार इससे पहले मैं यहाँ आया था। पुजारी ने मुझे बताया महाराज! यहाँ श्रीजी का राज्य है, श्रीकृष्ण तो बाहर खड़े रहते हैं उनका यहाँ प्रवेश नहीं। सुनकर बड़ा दुःख हुआ इन बेचारों को पता ही नहीं कि क्या कह रहे हैं? यह नहीं जानते श्रीकृष्ण श्रीजी के प्राण हैं। क्या भला प्राण बिना देह रह सकते हैं! यह दोनों "एक प्राण द्वै देह हैं"। बस सच बात यह है श्रीजी का तो स्वाँस लेना भी श्रीकृष्ण का आनन्दवर्धन करने के लिए होता है।

सच बात तो यह है भैया! मेरा यार यह कन्हैया ही तो श्रीजी बना बैठा है भक्तों का रंजन करने के लिए। वही तो यह सब लीला कर रहा है। श्रीजी का मान– क्या पूछते हो मान की बात? भैया! इस मान में अनुराग का समुद्र लहरा रहा है। नरसी जी भी अपने सांवलशाह से मान करते हैं, "जाओ चले जाओ अब आए हो मुझे मिट्टी में मिलाकर।" कन्हैया मनाते हैं, नरसी जी और रूठते हैं। जब नहीं मानते तो कन्हैया भी रूठ कर चल देते हैं। नरसी दौड़कर पकड़ लेते हैं "क्या सचमुच जा रहे हो?" यही राधा भाव है।

भैया रे! यह वाणी का विषय नहीं है। यह तो अनुभव से सम्बन्ध रखने वाली बात है। अनुभव करो और डूब जाओ आनन्द के इस अथाह सागर में।

फिर यह बाहर के विषय तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। लोहा पारस का स्पर्श पाकर सोना हो जाता है, फिर वह लोहा नहीं रहता और न फिर वापस लोहा हो सकता है। दुबारा पारस से छूकर भी वह लोहा नहीं हो सकता। अब तो वह सदा के लिए सोना हो गया। सो भैया! श्रीकृष्ण पारस का स्पर्श करलो फिर सदा के लिए जन्म जन्मान्तरों के लिए सोना हो जाओगे।

तुमने प्रिया कुण्ड में स्नान किया? जी हाँ ! तो वह भूलना नहीं कि तुम प्रियाकुण्ड में स्नान कर चुके हो। इसके आगे और कुछ है नहीं। बस प्रियाकुण्ड में स्नान– समझे मेरा मतलब! बस यही है सब कुछ इसी को याद रखना, भूलना नहीं ।

शान्त! शान्त का मतलब समझते हो? जो अन्त रहित हो वही शान्त है तो, यह सब जो कुछ तुम देख रहे हो सभी कुछ शान्त है। एक दिन सब का अन्त होना है। अनन्त अर्थात् अन्+अन्त जिसका कभी अन्त न हो वह तो तुम्हारा कन्हैया है। अब देखलो भैया! अपने मतलब की चीज। पर सोच लो अन्त होने वाली सभी चीजें दुःखदायी हैं। तो ऐसा कौन है जो इन्हें लेगा? अपन को तो वही चाहिए भैया! जिसका कभी अन्त न हो। बस अब बस।

अब तुम सुनाओ अपना मानस पाठ। मैं तो सुना चुका। अब तुम्हारा सुनूँगा भैया रे! मैं मन्दिर गया, यह लोग (श्री पूज्य माँ एवं गोविन्द भैया की ओर संकेत करते हुए) कहने लगे "श्रीजी को दण्डवत् करो, उनको पंखा करो। देखो, भला यह भी कोई बात है मैं क्यों करूँ? क्या मेहमान ऐसा करते हैं? मेहमानों का तो आदर किया जाता है। मैं तो इनके यहाँ मेहमान बनकर आया हूँ। समझे मेरा मतलब! बरसाना हमारी ससुराल है। अब समझे। अरे भैया! जब हमारे दादा की ससुराल है तो हमारी ससुराल नहीं? अच्छा अब तुम सुनाओ। अपना मानस पाठ कर चुका हूँ, तो सुनूँगा अवश्य।

कहते हैं बाल हठ, राज हठ और न जाने क्या-क्या हठ होते हैं बड़ी विकट हठ होती है। मैं बड़ा हठी हूँ। पर जानते हो यह कैसी हठ है? यह निराली हठ है। यह बड़ी विकट हठ है। मैं क्यों श्रीजी का पंखा करूँ? वो तो

मेरा करेगी। अरे मैं क्या कह रहा हूँ? यह हठ अनोखी हठ है। जानते हो यह कैसी हठ है? यह अनुराग की हठ है, यह भक्त की हठ है। अच्छा सुनाओ अपना मानस पाठ।

(वहीं बरसाने में प्रियाकुण्ड पर धर्मशाला का कक्ष। समय दोपहर का है लगभग डेढ़ बजा होगा। अभी कुछ समय पूर्व ही श्रीजी के मन्दिर से दर्शन कर भोग प्रसाद लेकर सब वापस आये हैं। श्री पूज्यपाद कक्ष में खाट पर बैठे हैं। श्री पूज्य माँ भी दूसरी खाट पर बैठी हैं। यद्यपि इधर बहुत समय से श्री पूज्यपाद जी को कान की पीड़ा से कष्ट है परन्तु उनकी बाह्य अवस्था से किसी को पता नहीं चलता। परम प्रसन्न हैं, कह रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— यह पीड़ा-वीड़ा कुछ नहीं है। अरे भैया! इस पीड़ा में भी आनन्द है। यह सब उस आनन्द के सागर में समा जाती हैं। अब मैं जो कहता हूँ वह सुनो। तुम भी उसी आनन्द सागर में डुबकी लगाओ। बस सुखी हो जाओगे सदा के लिए।

(श्री भगवान् रामकृष्ण परमहंस बाबा की पुस्तक से कुछ सुना रहे हैं। सुनाते-सुनाते बीच में ही बता रहे हैं)।

श्री पूज्यपादजी— यह मैं और मेरा— यही बन्धन है। इससे छूटते ही परम आनन्द, परम शान्ति मिल जाती है।

इससे छूटने का बड़ा सरल उपाय है। सुनाऊँ? सुनोगे? ध्यान-निष्ठ चिन्तन से प्रभु श्रीकृष्ण को सन्मुख अनुभव करके तन- मन-धन जो भी कुछ तुमने अपना माना है, उनके श्री चरणों में समर्पित कर दो। भैया रे! यह है भी वास्तव में उन्हीं का, यह तो बेईमानी से तुमने अपना मान रखा है, झूठा कब्जा कर रखा है। जब सब उनको उन्हें सौंप दिया तो बोझा हल्का हो जायगा। बोझा हल्का होते ही निश्चिन्त हो गये। बस अब क्या रहा? आसक्ति समाप्त हो गई, चिन्ता दूर हो गई। रह गया "मैं" सो यह भी उन्हीं का है। इसके लिए भी कह दो "मैं तुम्हारा हूँ।" बस पीछा छूटा। सब झंझट समाप्त हो गए, मजे से आनन्द सागर में गोते लगाओ।

मैं तो निश्चिन्त हूँ भैया! "व्यास भरोसे कुँवरि के सोवत पाँव पसारि" मैं भी पाँव पसार कर सोता हूँ।

जीवन का एकमात्र लक्ष्य ही श्रीकृष्ण को प्राप्त करना है। काम ही बस एक यही है। स्वामी रामतीर्थ ने कह दिया "काम था सो कर लिया अब रहा है बाकी ही क्या, बस भागीरथी की गोद में सो गये।"

(स्थान जुगल-विहार। दिन सोमवार एकादशी दिनांक 16 जून, 1966 समय सायंकाल। यहाँ श्री पूज्यपाद नित्य ही सायं 4 से 5 बजे तक भक्तों के साथ आध्यात्मिक वार्ता करते हैं। श्री पूज्यपाद कल ही बरसाने से वापस आये हैं। ग्यारह दिन से भक्तजन उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब उन्हें यह अमृतपान करने को मिले। श्री पूज्यपाद मसनद के सहारे अति प्रसन्न मुद्रा में विराजे हैं। चारों ओर पुरुष एवं महिला भक्त घेरे बैठे हैं। वातावरण बिल्कुल शान्त है।)

श्री पूज्यपादजी— मैं देख रहा हूँ संसार का प्रत्येक प्राणी मुक्ति के लिए दौड़ रहा है, मुक्ति के लिए। मुक्ति का मतलब है छुटकारा, बन्धन से छूट जाना। कोई दरिद्रता से मुक्ति के लिए दौड़ रहा है तो कोई भूख की ज्वाला से छूटने के लिए। कोई भय से मुक्ति के लिए तो कोई बन्धन से छूटने के लिए। मेरा मतलब है दौड़ सबकी मुक्ति की ओर है। कोई दु:खों से मुक्ति के लिए दौड़ रहा है? पर भैया! इस दौड़ा-दौड़ी से तो काम बनेगा नहीं। विचार से काम बनेगा। ठीक है मुक्ति के लिए यह दौड़ बुरी नहीं, बस इसकी दिशा मोड़नी है। बजाय इस मुक्ति की दौड़ के संसार से मुक्ति पाने की दौड़ आरम्भ हो जाय तो काम बना बनाया है। समझे मेरा मतलब? इस मुक्ति के लिए तो जन्म-जन्मान्तरों तक दौड़ने से भी मुक्ति न पा सकोगे। इसलिए इसकी दिशा (मार्ग) बदल दो।

यह काम कब होगा? जब थैली के पीछे की दौड़ छूटे। मैं थैली ही कहता हूँ इसे। वह चाहे माँस की थैली हो अथवा धन की। थैली के पीछे की दौड़ तब छूटे जब उससे अच्छी कोई वस्तु मिले। तो वह अच्छी वस्तु है कन्हैया का प्यार।

उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति, कल्पना में नहीं, ध्यान में नहीं, विचार में नहीं और स्वप्न में भी नहीं है। प्रत्यक्ष अनुभूति यह कैसे हो?

भोगों की कामना समाप्त होने पर उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। कामना कैसे समाप्त हो? जब श्रीकृष्ण से प्यार हो जाता है तो भोगों की कामना नहीं रहती। देखो न! जब उससे प्यार होगा तो उसकी याद आयेगी, याद आयेगी तो मिलने की चाह होगी और चाह होगी तो मिलन होना ही है।

सभी का कहना है भोग (भोग से मतलब है प्रारब्ध भोग जिनके लिए सभी कहते हैं "भोग तो भोगने से ही मिटेंगे")। तो भोगने से ही कटेंगे। नहीं भैया! मैं कहता हूँ कन्हैया के सामने भोगों की सामर्थ्य नहीं जो टिक सकें। नहीं, टिक सकते ही नहीं। बस समाप्त हो गये।

अब प्रश्न है कन्हैया से प्यार कैसे हो? जब उनके लिए व्याकुलता हो तो प्यार हो जायगा। व्याकुलता होने पर कुछ अच्छा नहीं लगता। सबसे मन हट जाता है। बस एक उसी की प्रतीक्षा में आँखें बिछी रहती हैं। अरे भाई! प्रेम करना तो तुम सभी जानते हो जिसे तुम चाहते हो यदि वह न मिले तो कैसा लगता है? सब कुछ सूना। खाना-सोना हँसना-बोलना कुछ नहीं सुहाता। यहाँ तक कि शरीर पर कपड़े भी अच्छे नहीं लगते। बस यही व्याकुलता श्रीकृष्ण के लिए हो जाय तो काम बन जाय।

अब गाड़ी यहाँ अटकी कि व्याकुलता कैसे हो? सो भैया रे! व्याकुलता तो अनुभवी पुरुषों के संग से होगी। इसका एक मात्र उपाय यही है और कुछ नहीं।

अरण्य में, निर्जन वन में। असह्य शीत पड़ रहा है। हिंसक पशुओं का भय लग रहा है। चारों ओर घोर अन्धकार है। इससे बचने का उपाय क्या है? इससे बचने का एकमात्र उपाय है अग्नि प्रज्ज्वलित करना। अग्नि के ताप से, तेज से, तीनों कष्टों से मुक्ति मिल जायगी। शीत से छूटने का एकमात्र उपाय केवल अग्नि तपन ही है। अग्नि के तपन से शीत निवारण हो जायगा।

ठीक है, इसे हम तार्किक कह सकते हैं। कपड़ों से भी शीत निवारण हो सकता है पर कपड़ों से भी गरमी ही मिली न? तो बात वही है। मैं कहता हूँ, शीत को मिटाने, भय से छूटने, अन्धकार दूर करने का एक उपाय अग्नि ही है। पाप वासनाओं के शीत से जग के लोग काँप रहे हैं। मौत का भय छाया हुआ है। चारों ओर अविद्या का घोर अँधेरा छाया हुआ है। इससे छूटने के लिए, महत्जनों का संग ही एक उपाय है। उसी अग्नि से इन तीनों तापों से छूट जाओगे। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय है नहीं भैया!

श्रीकृष्ण से प्यार करने वाले प्रेमी की अवस्था उन्माद पूर्ण अवस्था हो जाती है। उस विरही को सारा जग अपने प्रियतम का विरही दीखता है। बरसते हुए घन उसे अपने प्रियतम के विरह में आँसू बहाते दीखते हैं। तारों भरी रात में पूर्ण चन्द्र भी रोता सा प्रतीत होता है। सारी प्रकृति ही उदास दीखती है। प्रेमी अपने प्रियतम, परमाराध्य में एकाकार हो जाता है।

(आज मंगलवार है। 29 फरवरी 1972। कल होली होकर आज धुलहड़ी भी हो चुकी है। समय सायंकाल साढ़े तीन बजे के लगभग है। मधुपुरी आदि से भी कुछ भक्तजन आये हैं। श्री पूज्यपाद सत्संग कक्ष में उन्हीं सबसे आध्यात्मिक वार्ता कर रहे हैं।)

सेवा! सेवा ही, केवल सेवा से ही कन्हैया को वश में किया जाता है। सेवा में बड़ा बल है भैया! वह नटखट भी सेवा की रज्जु में बँध जाता है, वश में हो जाता है। सेवा का स्वरूप है, सहज सेवा। उसमें सेवक को यह भान ही नहीं होता कि मैं सेवा कर रहा हूँ। वह तो इस कार्य को अपना धर्म, अपना कर्त्तव्य समझकर करता है। स्वामी के मुँह की ओर ताकता रहता है कब कुछ आज्ञा हो। यदि यह भान है कि मैं सेवक हूँ सेवा कर रहा हूँ, तब तो इस सेवा में अभिमान की झलक है। यदि ऐसा है तो सेवा नहीं।

सेवा में कोई माँग नहीं, कोई बदला नहीं, कोई चाह नहीं होती। उसे यह भी ध्यान नहीं कि स्वामी को मेरा ध्यान है कि नहीं? उसके सामने एकमात्र सहज सेवा होती है। सेवा से अभिप्राय है पूर्ण आत्म समर्पण। सम्पूर्ण रूप से

आत्म-समर्पण पर सहज ही हनुमान जी की तरह अन्तर से पुकार होती है "राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ विश्राम"। तभी वह सेवक अपने स्वामी को देखता है वह उसके सहज वश में हो जाते हैं। सेवक उनके द्वार का पहरेदार हो जाता है। उसकी आज्ञा के बिना उसके स्वामी के पास किसी का प्रवेश नहीं "राम दुआरे तुम रखवारे, होत न आज्ञा बिनु पैसारे"।

सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधन से कन्हैया को बाँधना असम्भव है। यह ब्रजलीला की एक झाँकी में देखिए। काल का भी काल जिसकी भृकुटी के संकेत पर काल नाचता है, वह ब्रह्म, वह श्रीकृष्ण माँ यशोदा के आगे हाथ बाँधे खड़ा है। काँप रहा है अरे देखो! यह क्या हो रहा है?

(एकायक भावावेश में श्री पूज्यपाद चिल्ला उठे। कण्ठ गद्‌गद्‌ हो गया। भीतर से हिलोरें उठ रही हैं। शायद वह चाह रहे हैं यह सब देखें अपनी आँखों से इस दृश्य को। पर वह आँखें कहाँ?)

श्री पूज्यपाद जी फिर कहने लगे– देखो वह खड़ा है। हाथ जोड़ कर माँ से अनुनय विनय कर रहा है। अरे देखो **"सियावर रामचन्द्र की जय"** काल का काल "मैया! अरी मैया! मारै मत मोकू"। मैया कहती "आज तोकू बाँधे बिना न छोड़ूँगी"। सारे ब्रज की रस्सी मँगाई पर क्या उस नटखट को बाँधा जा सकता है। माँ थक गई। दो अंगुल की कसर रह ही जाती है। सब साधन मैया के सब प्रयत्न विफल। कन्हैया को न बाँध सकी। आखिर मैया ने कन्हैया की ओर देखा। हो गया आत्म-समर्पण कन्हैया बँध गया।

तो भैया! यह आत्म-समर्पण ही तो सहज सेवा है। इसी में वह नन्दलाल बँध जाता है। यह भाव तभी प्राप्त हो सकेगा जब महत्‌जनों की सेवा एवं उनका संग होगा। अन्य सभी साधनों (ग्रन्थपाठ, जप, तप, ध्यानादि) में दो अंगुल की कसर रह ही जावेगी।

देखते हैं प्रकृति को! यह सारी प्रकृति सेवा का सहज स्वरूप है। जल, पृथ्वी, वृक्ष, हवा आकाशादि सभी तो सेवा में लगे हैं। अरे और की क्या पूछते हो, तुम्हारे प्रभु स्वयं श्रीकृष्ण भी तो सेवा करते हैं। हाँ! हाँ! वह भी सेवा

करते हैं। उनकी सेवा का स्वरूप है जीवमात्र पर सहज कृपा करना, उनकी कृपा बरस रही है सब पर समान रूप से।

सन्त भी सेवा ही करने आते हैं, इस भूतल पर। उनकी सेवा का स्वरूप है उपकार। तो इस प्रकार देखा कि सेवा ही एकमात्र साधन है। सेवा के अपने-अपने स्वरूप हैं।

सेवक की सेवा का स्वरूप है उसका धर्म, उसका कर्त्तव्य। सन्तों की सेवा का स्वरूप है उपकार और प्रभु की सेवा का स्वरूप है कृपा। सम्बन्ध अर्थात् सम+बन्धन जो कभी ढीला न हो। सदा समान रहे वह है सम्बन्ध। रिश्ता। यह सेवा के साथ सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। सेवा करने से सम्बन्ध हो जाता है। सम्बन्ध होने पर मिलन तो होना ही है।

काल का काल भैया! वह यशोदा मैया के सामने हाथ बाँधे खड़ा है। क्यों? मैया का कनुआ से सम्बन्ध है। वह मैया का बेटा, काला कनुआ है न। माँ ने अपनी सेवा से उसे वश में कर रखा है। मैया से कन्हैया की आत्मीयता है। वह उसका अपना है। तो भैया! तुम भी कन्हैया से रिश्ता कर लो, सम्बन्ध जोड़ लो, उसे अपना सगा बना लो। अन्य भी तो दुनिया भर के रिश्ते तुमने सबों से जोड़ रखे हैं, उन्हीं के साथ कन्हैया से भी एक रिश्ता जोड़ लो। जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो। वह सब कुछ होने को तैयार है। पिता मानलो, पुत्र मान लो, माँ मान लो, मित्र मान लो, स्वामी मान लो। मतलब जो तुम्हारी इच्छा हो उसे वही मान लो। देखो आज जिसने कन्हैया से रिश्ता जोड़ लिया वह अवश्य ही इसी जन्म में, इन्हीं आँखों से उसे देखेगा। मैं कह रहा हूँ भैया! अवश्य देखेगा और कैसे कहूँ। जैसे तुम मुझे और मैं तुम्हें देख रहा हूँ उसी प्रकार इस नन्द के लाल को भी देखोगे।

सगे! सगे ही एक मात्र श्रीकृष्ण हैं। इनसे सम्बन्ध ही सच्चा सम्बन्ध है। औरों से सम्बन्ध सब छूट जायेंगे, टूट जायेंगे पर प्रभु से सम्बन्ध कभी नहीं टूटता। वह जन्म जन्मान्तरों के लिए हो गया। इस जगत् के जुड़े रिश्ते मरने पर टूट जाते हैं, कुछ पता नहीं कौन किसका क्या था? क्या होगा? परन्तु प्रभु

से जुड़ा रिश्ता तब भी नहीं छूटता। वह अमिट रिश्ता है। डरो मत भैया! मैं बदले में कुछ नहीं चाहता। बस यही इच्छा है तुम दुःख से छूट जाओ, सुखी हो जाओ। यह एक धुन मुझे है।

तो भैया! पाप रूपी शीत, मौत के भय और अविद्या के अन्धकार से छूटने के लिए सेवा और सम्बन्ध ही मुख्य साधन हैं। महत् जन के संग से अग्नि को प्रज्वलित कर लो। उनकी सेवा कर उनसे सम्बन्ध जोड़ लो। वह दीवाने, जिन्होंने कन्हैया से रिश्ता जोड़ रखा है, तुम्हारा भी रिश्ता करा देंगे।

सब के द्वार पर काँटे का वृक्ष है। निकलते-बढ़ते काँटे चुभते ही हैं, कष्ट पाते हैं उससे बचने का उपाय नहीं करते। बताया जाता है तो सुनते नहीं, मानते नहीं। यदि किसी ने मान भी लिया तो विपरीत बुद्धि के कारण उलटा करते हैं। उखाड़ने के बजाय उसका सिंचन करते हैं। **भोगों में आसक्त रहना ही काँटों का सिंचन करना है।**

(दिनांक 30.8.66 आज रक्षाबन्धन की पूर्णिमा है। दिन मंगलवार। समय वही सायं साढ़े चार बजे के पश्चात्। श्री पूज्यपाद अपने आसन पर विराजे हैं। भक्त जन फर्श पर बैठे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— हम जप करते हैं, तप करते हैं, व्रत रखते हैं और न जाने क्या-क्या सब कुछ करते हैं। किस लिए? शान्ति मिले। पर शान्ति नहीं मिलती। इसका कारण क्या है? कभी सोचा? सोचते ही नहीं फुरसत ही नहीं।

आपने सब कुछ छोड़ दिया। अपने को इन्द्रियों के भोगों से रोक लिया। यहाँ तक कि बोलना, निकलना भी बन्द कर दिया, पर शान्ति नहीं। आखिर क्यों? इसका कारण है भैया अहं! मैं! जब तक यह मैं रहेगा देहाभिमान नहीं छूटेगा तब तक शान्ति मिलेगी नहीं। काम बनेगा नहीं, लक्ष्य प्राप्त होगा नहीं और दो अंगुल की कसर रह ही जायगी।

श्रीकृष्ण! तुम्हारे मालिक प्रभु स्वयं कहते हैं "मैं! जप, तप, योग, ज्ञान, ध्यान, वैराग्य आदि की रस्सियों से नहीं बँधता। सब रस्सियाँ दो अंगुल छोटी

पड़ेंगी। केवल सत्य की डोरी में ही मुझे बाँधने की सामर्थ्य है। सत्य की डोरी में मैं बँध जाता हूँ। सत्य का ही दूसरा रूप है अन्तर प्रेम।"

तो भैया! सत्यमय जीवन बनाओ यदि श्रीकृष्ण से मिलना चाहते हो। शान्ति चाहते हो तो अहं, जो असत्य है इसका त्याग करो। इसके त्याग का एकमात्र उपाय है महापुरुषों की शरण में जाकर निश्चल भाव से उनकी सेवा।

सेवा का अर्थ केवल यही नहीं कि कुछ लाकर उनके ऊपर पटक दो। या उनकी आवश्यकता जैसे-तैसे पूरी कर दो।भाई! सेवा यह नहीं। सेवा में यह देखना है वह चाहते क्या हैं? उनके संकेत पर उनकी आज्ञानुसार अपने इस "मैं" को मिटा दो। बस काम बन जायगा।

इतना प्रयत्न करने पर और ऐसा लगने पर भी मन कुवासनाओं में चला जाता है। ऐसा क्यों? यह विचारणीय विषय है।

इसका कारण जो मुझे मालूम हुआ है वह यह है कि बुद्धि में सूक्ष्म रूप से वासनाओं का निवास रहता है जिसे साधक सहज जान नहीं पाता। अवसर पाकर बुद्धि, मन को बहका देती है तब मन कुकृत्यों की ओर दौड़ जाता है तो अब इसका उपाय करना है। बुद्धि को शुद्ध करना है तो भैया मेरे! इसका उपाय भी वही है। एकमात्र उपाय है महापुरुषों की शरण, उनके चरणों की धूल का सेवन। बस उपाय ही यही है। मैं तो यही जानता हूँ वही तुम्हें बता रहा हूँ। यदि मान लोगे तो संकट से सहज छूट जाओगे।

आज मैं अखबार पढ़ रहा था तो मैंने देखा श्रीकृष्ण-मिलन लोगों को क्यों नहीं हो रहा? तो पता चला मन मलिन है। जब तक मन शुद्ध नहीं होगा यह काम बन नहीं सकता। मन शुद्ध कैसे हो? इसका उपाय है "सत्यनिष्ठा"। सत्य का पूर्ण रूप से पालन, जीवन सत्य से ओत-प्रोत हो। सत्य की मृत्तिका से मन मँजकर निर्मल हो जाने पर श्रीकृष्ण मिलन अवश्य होगा।

तो भैया देर हो रही है, समय जा रहा है, न जाने कब खेल खत्म हो जाय इसलिए जल्दी अपना काम कर लो, सत्य को पकड़ लो। कठिनाई क्या है?

सत्य धारण करने के लिए सरल जीवन हो, रहनी में कोई दिखावा न हो। कोई बनावा, कोई खेंचतान न हो। सरल जीवन निश्छल होता है। उसमें कोई कपट नहीं होता। निश्छल हृदय में सत्य का निवास बिना किसी प्रयास के स्वतः ही हो जाता है। जब कोई दिखावा नहीं होगा कुछ छिपाना नहीं होगा और कपट भावना नहीं होगी तो असत्य की आवश्यकता ही क्यों पड़ेगी? सरल स्वभाव जो है जैसा है वैसा ही कह दिया जायगा, कर लिया जायगा और दिखा दिया जायगा। सत्य के धारण होते ही मन निर्मल हो जाता है और निर्मल मन मन्दिर में प्रियतम प्रभु आ विराजते हैं देर क्या है!

प्रभु कहते हैं "जो मुझे जैसे याद करता है मैं भी उसे वैसे ही याद करता हूँ।" इसका प्रमाण श्री रुक्मिणी जी के जीवन से मिलता है। उन्होंने कुण्डिनपुर में गवैयों से श्रीकृष्ण प्रभु का यश सुना। मन में इच्छा हो गई यह तो मेरे पति होने योग्य हैं। यहाँ इधर इन्हें याद आई उधर द्वारकापुरी में प्रियतम के हृदय में भी भाव होता है। कुण्डिनपुर की राजकुमारी ही मेरी पत्नी होने योग्य है। दोनों ओर वरण हो गया, वरण होते ही प्रयत्न प्रारम्भ, प्रयत्न होते ही मिलन। तो यह कैसे हुआ? सत्य धारणा से। यदि विचार सत्य है तो ठीक उसी प्रकार कार्य हो जाता है।

अब रही भाव की बात? तो यह तो अपनी रुचि की बात है। हमारा मन प्रभु को जिस भाव से चाहे, हम उन्हें वैसे ही प्यार करें। वह भी उसी प्रकार मान लेते हैं।

व्रजभाषा में मुख्य चार भाव हैं— वात्सल्य, सख्य, दास्य और मधुर। तुमको जो भावे उसी भाव से उनसे रिश्ता जोड़ लो। मानो तुम्हारा दास भाव है तो तुम भी श्री रुक्मिणी जी की भाँति अपने प्रियतम स्वामी, मालिक को हृदय में पाती लिखकर उनके पास भेज दो। प्रभु मेरे मालिक! यह कुवासनायें, शिशुपाल रूप होकर मुझे पकड़े ले जा रही हैं, तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं तुम्हीं इनसे छुड़ा सकोगे प्रभु! जल्दी आओ। तो जिस प्रकार समस्त असुर सेना का संहार कर श्री रुक्मिणी जी को प्रभु ले गये उसी प्रकार तुम्हें भी ले जायेंगे। खबर भेजो तो सही।

अरे भैया! वह कहीं दूर थोड़े ही हैं। वह तो तुम्हारे मन मन्दिर में ही विराजे हैं। विचार की पाती उन्हें लिखो वह तुरन्त पढ़ लेंगे देर क्या लगती है? उनको पाती लिखने के लिए दो काम करने होंगे, तब इस योग्य हो सकोगे।

पहला कर्म की साधना और दूसरी धर्म की साधना। कर्म साधना में भगवत् बुद्धि से कर्म करना। जो भी कार्य किया जाय वह प्रभु की आज्ञा समझ कर, प्रभु की प्रसन्नता के लिए करना। फल की कामना न हो, फल कामना रहित कर्म से कर्म बन्धन कट जाता है अब स्वतन्त्र हो गये। जब इधर से निश्चिन्त हो गये तो चिन्तन के सिवा और काम ही क्या रहा?

दूसरा है धर्म की साधना। यों तो शास्त्र में धर्म के दस लक्षण बताये हैं। परन्तु सबसे प्रमुख है "सत्य"। सन्त महात्मा तुलसीदास जी ने मानस में बताया है। "धर्म न दूसर सत्य समाना", कैसे? "आगम निगम पुराण बखाना"। सत्य स्वरूप निर्मल मन में ही प्रभु का प्राकट्य होता है। सत्य को धारण कर मन की मलिनता दूर करने के लिए संसार का चिन्तन छोड़ना होगा। संसार का चिन्तन बन्द होते ही असत्य से सम्बन्ध टूट जायगा और प्रभु की याद आने लगेगी।

असत्य का सहारा क्यों लेते हो? मृत्यु के भय से। तो भैया! बात यह है कि यह शरीर तो गिरने वाली चीज है। एक दिन गिरेगा ही। फिर बखेड़ेबाजी क्यों किसके लिए? इस गिरते शरीर के लिए। यदि इसका सच्चा बोध हो जाय तो धारणा दृढ़ हो जाय और भय समाप्त हो जाय।

अब मरने का भय नहीं है क्योंकि यह बोध हो गया कि आखिर मरना तो एक न एक दिन है ही तो असत्य का सहारा भी क्यों लिया जाय। जब असत्य का आश्रय नहीं रहा तो रह गया सत्य। सत्य की शरण ही प्रभु मिलन है। मेरी अपनी धारणा तो यह है कि सत्य स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं और मृत्यु भी स्वयं वही हैं। "बोल सियावर रामचन्द्र की जय।" अरे जिसे तुम प्यार करते हो, जिसे तुम चाहते हो उससे डर? भला क्यों? प्रियतम से मिलन ही तो मृत्यु है। वही तो इस वेश में आये हैं।

इस गिरने वाली वस्तु (शरीर) के नाश के भय से असत्य का सहारा लेकर हम अपने प्रियतम से दूर होते जा रहे हैं। इसका प्राणीमात्र को बड़ा अभिमान है। "मैं" मैं किसी से कम हूँ क्या? यह मिथ्या अभिमान। अरे भैया! यह क्या भरोसे की चीज नहीं, चलते-चलते कहीं भी गिर जाएगी। मेरी दृष्टि में तो इसका भाव गिर गया है। यदि तुम भी इसकी असली कीमत (भाव) समझ लो तो काम बन जाय।

आज एक महात्मा से मेरा मिलन हुआ। उन्होंने बताया वस्तु पाकर मनुष्य को अभिमान हो जाता है। बात उनकी ठीक थी। परन्तु मेरा विचार है वस्तु पाकर ही अभिमान से पीछा छूटता है। है न अजीब बात! अरे मेरे भाई! वस्तु तो वास्तव में स्वयं प्रियतम प्रभु श्रीकृष्ण हैं और सब तो अवस्तु अर्थात् कुछ है ही नहीं। वस्तु ही श्रीकृष्ण हैं तो उन्हें पाकर क्या भला अभिमान होगा? नहीं, कभी नहीं।

तृष्णा अर्थात् "प्यास"! पानी की इच्छा होने पर एक क्षण की भी गुंजायश नहीं रहती, वास्तव में यदि प्यास लग रही हो। अन्दर से जल की माँग हो, प्राण छटपटा रहे हों तो तुरन्त जल चाहिए। तड़पन! मछली जैसी तड़पन। मछली जल से बाहर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। उस तड़पन से भी कोटि गुनी तड़पन हो। यह तड़पन करोड़ों व्यक्तियों में से किसी एक को होती है। यही है भजन का स्वरूप, आत्मा की प्यास।

इस प्यास में, इस तड़पन में क्या होता है? संसार अच्छा नहीं लगता, भोजन नहीं भाता, नींद नहीं आती। यहाँ तक कि शरीर के कपड़े भी असह्य हो जाते हैं। केवल हा कृष्ण! हा श्यामसुन्दर! हा प्रियतम! तुम कहाँ हो, तुम्हारे बिना जीवन सूना है, संसार सूना है, चारों ओर अँधेरा है। इसके सिवा और कुछ नहीं भाता है। हृदय प्रतिक्षण यही पुकारता रहता है। यह पीड़ा अजीब पीड़ा है। इस दर्द में मिठास है, आनन्द है। संसार के वैद्यों पर इसकी दवा नहीं, इसका अन्य कोई इलाज नहीं। महात्मा मीरा ने बता दिया-

"मेरी पीर तो तभी मिटे जब वैद्य साँवरिया होई।" तो भैया इस दर्द का इलाज तो वह साँवरिया ही करेगा। बस तुम तो दर्द पैदा कर लो।

अब प्रश्न हुआ दर्द पैदा कैसे हो? वह निर्मल मन में होता है जैसे, कपड़ा स्वच्छ होने के लिए कितने कष्ट सहता है। पहले खार में लिपटकर खारा होता है फिर भट्टी में अपने को तपाता है और फिर सिलापर कूट-कूट कर जल में डूब-डूबकर स्वच्छ हो जाता है। यदि तुम भी अपने आपको प्रिय मिलन विरह की भट्टी तपाकर, मिलन की चाह शिला पर कूट कर, अनुराग जल से धोकर इस मन को निर्मल करलो तो वह दर्द, वह पीड़ा पैदा हो जायगी और तुम्हारे साँवरिया वैद्य तुम्हारा उपचार करने आ जायेंगे। तुम्हें देखने अवश्य आवेंगे। हो गया सहज मिलन।

(स्थान— गणेशजी (मोटा गणेश) वाले मकान का कक्ष। श्री पूज्यपादजी दोपहर के भोजन के उपरान्त विश्रामार्थ खाट पर लेटे हैं। श्री पूज्य माँ निकट ही बैठी प्रसाद पा रही हैं। आप उन्हीं से वार्ता कर रहे हैं बता रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— आज मैं अखबार पढ़ रहा था। उसमें पढ़ा सन् 1970 तक सबको मकान मिल जायेंगे कोई बिना घर के नहीं रहेगा। यह तो ठीक है पर मैंने सोचा, यह तो हुआ सबको मकान मिल जायेंगे कोई बिना घर के न रहेगा। परन्तु क्या यह भी कोई कहता है सबको कृष्ण मिल जायेंगे कोई बिना कृष्ण के न रहेगा? यह मकान आदि तो मिटने वाली वस्तु है, यह नष्ट हो जायगी स्थाई नहीं है। इनको लेकर क्या करोगे? श्रीकृष्ण को लेकर तो जन्म-जन्मांतरों के लिए सुखी हो जाओगे, आवागमन से छूट जाओगे।

आओ मैं तुम्हें श्रीकृष्ण को देता हूँ। लेने की वस्तु तो बस एक यही है जो न कभी नष्ट होगी, न घटेगी, न दूर होगी और न कभी साथ छोड़ेगी। यह मकानादि तो टूट जायेंगे, तुम्हारा साथ छोड़ देंगे, मरने पर साथ नहीं जायेंगे। देख लो विचार कर लो जिसमें लाभ हो वही करो। मैं तुम्हें कृष्ण को दे रहा हूँ निस्वार्थ किसी से कुछ चाहता नहीं। मैं पुकार-पुकार कर कहता हूँ पर कोई सुनता नहीं। श्रीकृष्ण की किसी को आवश्यकता ही नहीं। जहाँ वस्तु

नहीं वहाँ लोग दौड़कर जाते हैं मगर जहाँ वस्तु है उधर देखते भी नहीं। कितना अंधेर है।

मैं कहता हूँ तुम्हें अथाह सागर में ले चलूँगा। यह सीमित जल है, सड़ रहा है, कीड़े पड़ रहे हैं। पर कोई नहीं सुनता, सच्चे सुख की किसी को चाह नहीं। चिल्लाते हैं "हम दुःखी हैं कोई बचाओ" पर सुनते नहीं किसी की। माया ने आँखों पर पर्दा डाल रखा है इसलिए अच्छा बुरा सूझता ही नहीं।

पालतू कुतिया है। मालिक के द्वार पर लोहे की जंजीर से बँधी है फिर भी आने वालों पर गुर्राती है, काटने को दौड़ती है। मकान में घुसने नहीं देती। यदि आगन्तुक बाहर से मालिक को पुकार लेते हैं तो मालिक के आते ही उसका संकेत पाते ही कुतिया पूँछ हिलाने लगती है और सिकुड़ कर एक ओर हो जाती है। आने वाला सहज मकान में भीतर घुस जाता है।

यह है माया! माया-वाया कुछ नहीं तुम्हारे प्रियतम के द्वार की पहरेदार कुतिया है। मालिक को पुकार लो, फिर यह तुम्हारी ओर ताकेगी भी नहीं, उलटे पैर चाटेगी। कबीरदास जी ने तो इसे कह दिया "तू कहा नैना मटकावे, दास कबीरा तेरे हाथ न आवे"। भक्त का माया कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

(दिनांक 24.11.68। आज मंगलवार है। साप्ताहिक वार्ता में भक्तों से श्री पूज्यपादजी वार्ता कर रहे हैं। समय सायंकाल साढ़े चार के पश्चात् का है।)

श्री पूज्यपादजी— गाँठ खोल कर देखा नहीं भैया। तो पता कैसे चला इसमें क्या है? कौन सी गाँठ? भक्ति का दुरुपयोग यह कैसे? कोई धन का भक्त है, कोई सन्तान का तो कोई राष्ट्र का, कोई जाति का तो कोई स्त्री का और न जाने काहे-काहे का। कोई शरीर का ही भक्त है उसे हर समय इसी की चिन्ता रहती है। तो देखा! इस प्रकार सब ही किसी न किसी के भक्त हैं। जो जिसका भक्त है वही उसको प्राप्त है।

इससे यह तो पता चल गया कि भक्ति का निवास सब में है। अन्योन्याश्रय, पारस्परिक सम्बन्ध, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य इन तीनों का एक ही स्थान पर निवास है। जहाँ भक्ति है वहाँ भगवान् का निवास भी अवश्य है। तो भक्ति भी सब में है भगवान् का निवास भी भक्ति के साथ सबके अन्तर में है तो दीखते क्यों नहीं? गाँठ खोलकर देखा कहाँ? देख लो तो मालूम हो जायगा। गाँठ कैसे खोलें? भक्ति का सदुपयोग कैसे? इसका मुँह (अपनी वृत्ति, स्वभाव) भगवान् की ओर मोड़ दो। इसका दुरुपयोग छोड़कर सदुपयोग करो। गाँठ खुल जायगी, दादा (श्रीकृष्ण) से भेंट हो जायगी।

प्यार, व्यापार की वस्तु नहीं है। भक्ति का ही नाम प्यार है जिसे हम प्यार करते हैं उसकी हर समय याद आती है। यह याद ही भक्ति है, भजन है। यह लेन-देन की चीज नहीं है यह सौदा नहीं है, यह तो अन्तर की एक माँग है। प्यार गुणों से नहीं होता, रुप से, ऐश्वर्य से भी नहीं। प्यार तो होता है प्यार के लिये। गुणों के साथ किया हुआ प्यार गुणों के साथ ही समाप्त हो जाता है, मिट जाता है।

दान! क्या दान? दान कर दो। क्या दान कर दें? अपने आपको। अपने आपको भी दान किया जाता है कहीं? वस्तु तो दान सभी करते हैं। बस यही तो है अपने आपको दान करना ही तो वास्तविक दान है। किसको कर दें, कैसे कर दें? बस श्री प्रभु के श्री चरणों में अपने आप को चढ़ा दो, उनके हो जाओ। दान से प्रारब्ध समाप्त हो जाता है।

लोगों का तो कहना है प्रारब्ध भोगने पर ही समाप्त होता है। अरे नहीं! अपने आप को दान करते ही प्रारब्ध समाप्त हो जाता है।

"यदि स्वभाव में तीन बातें आ जायें तो प्रभु-मिलन में देर नहीं, सारी खटपट समाप्त हो जाय, मन में पूर्ण शान्ति हो जाय। शान्ति ही सुख है। सुख! प्रभु प्राप्ति ही सच्चा सुख है। वह तीन बातें हैं। क्या पाया? क्या पाना है? क्या नहीं पाया?" बस यही ध्यान में रहे। तो देखा अभी तक कुछ नहीं पाया तो अब प्रभु को पाना है।

यात्रा में चलने वाले व्यक्ति को मार्ग की व्यवस्था करनी होती है। जब लोक यात्रा में व्यवस्था की अपेक्षा है तो परलोक यात्रा में नहीं होगी? नहीं भैया! वहाँ के लिये भी व्यवस्था बनाकर चलना होता है। तो मैं तुम्हें व्यवस्था की बात बताऊँगा। इसमें दो-तीन बातें हैं। यह वही बता सकता है जिसे उस व्यवस्था का पता है, तोता नहीं बता सकता। ग्रन्थों से कुछ पढ़कर बताने वालों को मैं तोता कहता हूँ।

सभी का कहना है "कृष्ण-चिन्तन बड़ा कठिन है।" मैं पूछता हूँ कठिनाई क्या है? संसार के कार्यों में तो कठिनाई अवश्य है, कृष्ण-मिलन में कुछ नहीं। जिस काम में वास्तव में कठिनाई है उसे तो सब करते हैं और हाथ कुछ नहीं लगता, न उसे कठिन मानते हैं। कृष्ण मिलन में कोई कठिनाई नहीं, उसे कठिन मानते हैं।

आओ, आज इसी पर विचार कर लें, फैसला कर लें, बही खाता साफ कर लें। मैं पूछता हूँ, कठिनाई क्या है? क्या लाख दो लाख रुपया खरचने हैं? नहीं। बहुत बड़ी सेना चाहिए? नहीं। अगम्य पहाड़ पर चढ़ना है? सो भी नहीं। तो फिर कठिनाई क्या है? देखा तो कुछ नहीं।

बस देखना यह है कि हमारी वृत्तियाँ किस ओर जा रही हैं— संसार की ओर या प्रभु की ओर। यदि रूप की चाह है, क्रोध से छाती जलती है, द्वेष की ज्वाला धधक रही है तो यह पतन का कारण है और यदि सत्संग में रुचि है, सेवा भाव है, संसार से अरुचि है तो यह उत्थान की ओर ले जाने वाली वृत्तियाँ हैं। तो काम बस यह करना है कि अपनी वृत्तियों को मोड़ना है। इसमें कठिनाई क्या है? बताओ मेरे भाई! केवल विचारपूर्वक वृत्तियों को मोड़ना ही तो है।

दूसरी ओर तनिक इस बात पर विचार करें कि क्या यहाँ की कोई भी चीज अपना हित कर सकती है। धन, जन, यश, विद्या, सम्पत्ति, सन्तति आदि-आदि। देखा, विचार किया तो पता चला कि इसमें हमारे हित की कोई चीज नहीं। यह तो सब मिटने वाली हैं एक दिन साथ छोड़ देंगी, साथ छोड़ना

पड़ेगा। तो हितकर क्या है? एक मात्र भगवान् श्रीकृष्ण—वही हमारे सच्चे हितू हैं। वह कभी साथ नहीं छोड़ेंगे तो भैया! उन्हीं को आश्रय बनाओ।

तो आज यह फैसला कर लो, उनको आश्रय मानकर चलो तो देखोगे क्या मिलता है। उस अपार सुख का स्वाद पाकर तुम स्वयं उसे न छोड़ोगे। मैंने तो इस जग में कुछ नहीं पाया! मेरे भाई जिससे मेरा हित हो, वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ। मान लोगे तो सुख पाओगे, नहीं तो जो तुम्हारी समझ में आवे सो करो।

मेरे भाई! आप लोग विचारते नहीं, कभी ध्यान देते ही नहीं कि यह हो क्या रहा है? जहाँ यह बात हैं कि एक नाम से ही मनुष्य तारण-तरण हो जाता है वहाँ देखते यह हैं कि लक्ष-लक्ष (लाख-लाख) नाम लेने पर भी जहाँ की तहाँ। तो ऐसा क्यों?

क्या यह विचारणीय नहीं है? इसका कारण ही मैं आपको बता रहा हूँ। इसका मुख्य कारण है कि हमने अपने आपको नाम लेने योग्य बनाया ही कहाँ? जब संसार की चीजें भी योग्य होने पर ही मिलती हैं तो परलोक के लिए कुछ आवश्यकता नहीं? नहीं मेरे भाई! योग्यता की तो हर क्षेत्र में आवश्यकता रहती है। अयोग्य को कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती।

तो मैं बता रहा था कि हमें लाभ क्यों नहीं हो रहा? इसका मुख्य कारण है "अहं— मैं और अभिमान"। यही आगे बढ़ने नहीं देता। इससे पीछा छूटे तो काम हो। इससे पहिले पीछा छुड़ाओ। इससे छूटते ही हृदय से स्वतः ही नाम निकलेगा, आनन्द हिलोरें लेगा। तब एक ही नाम से काम हो जायगा।

अब विचारना यह है कि इससे पीछा कैसे छूटे? तो भैया! इसका तो एक ही उपाय है जो मेरे अनुभव में आया है कहीं से सुना पढ़ा नहीं। वह है सन्तों की कृपा प्राप्त करना। अब युक्ति तो मैंने बता दी तुम काम ऐसा करो जिससे सन्तों की कृपा प्राप्त हो। यदि सुख चाहते हो, दुःख से छुटकारा चाहते हो, प्रभु को पाना चाहते हो तो यह तो करना ही होगा इसके बिना काम चलेगा नहीं।

मैं उपदेश नहीं दे रहा। लैक्चर देना तो मैं जानता ही नहीं। मैं तो आप सबसे बातें कर रहा हूँ प्यार की बात। साधारण भाषा में इसी प्रकार सब जगह बोलता हूँ। यहाँ भी वैसे ही बोल रहा हूँ। तो मैं यों पूछ रहा हूँ भैया! ईमानदारी से कहना, क्या कभी कन्हैया को देखने की तुम्हें इच्छा हुई है? नहीं हुई, होती ही नहीं, क्यों? इसलिए कि तुमने कन्हैया को अपना माना कहाँ? मिलने की इच्छा तो अपने से होती है। तुम तो परिवार को अपना मानते हो, धन को अपना मानते हो, मेरे कन्हैया को कहाँ? इस मेरेपन में कितनी ममता है। एक बार तनिक हृदय से कहो तो भैया! "मेरे कन्हैया"।

अरे भैया! तुमने सोचा नहीं यहाँ तुम्हारा कोई नहीं है। न धन अपना है, न परिवार, देख लो विचार कर। यदि कोई अपना है तो बस कन्हैया, एक कन्हैया। सुन्दरता की सीमा कन्हैया। क्या तुम्हारा जी नहीं ललचाता? अरे एक बार सच्ची चाह करो तो सही उसे आते देर नहीं लगती।

मेरे भाई! यह ठीक है वह शंकर की समाधि में नहीं आता, ब्रह्मा के ध्यान में नहीं आता, विष्णु भी उन्हें नहीं देख पाते। तो क्या इससे हम निराश हो जायँ? अरे नहीं भाई! इनके ध्यान, समाधि में चाहे वह न आवे पर जो उसका होकर दीनता से उसे बुलाता है, पुकारता है—"भगवन्! तुम्हारे सिवा मेरा यहाँ कौन है तुम्हीं एक मात्र मेरे आश्रय हो"—उसके लिए वह ऐसा दौड़ता है जैसे हाल ब्यायी गाय अपने बछड़े के लिए। तनिक एकबार बुलाकर तो देखो।

वह जप से नहीं आता, तप से राजी नहीं होता, ज्ञान-वैराग्य में उसे बुलाने की ताकत नहीं। उसे तो हृदय की दीन पुकार ही बुलाने में समर्थ है। भौमासुर के बन्दीगृह में सोलह हजार राजकुमारियाँ कष्ट पा रही थीं। उनका कोई सहारा नहीं, कोई रक्षक नहीं। आर्त होकर वह पुकारती हैं कन्हैया को। वह तो तैयार ही बैठा रहता है सदैव भक्त की पुकार सुनने को, तो क्या उन्होंने बड़ा भारी दान किया था? कोई तप किया था? कुछ भी तो नहीं। बस दीन होकर पुकारा था।

मन! यह मन ही सब कुछ है भैया! यह साधक भी है, बाधक भी है और घातक भी है। यदि यह प्रभु की ओर ले जाय तो साधक है। तो भैया रे! तुम इसे समझाओ अकेले में बैठ कर इससे पूछो कि इस सब को जो तूने अपना माना है क्या सचमुच यह तेरे हैं? नहीं भाई! यह कोई भी तेरा साथ नहीं देंगे। यहाँ अपना कोई नहीं, कुछ नहीं। बस अपने तो श्रीकृष्ण हैं। इसे यदि यों समझाया तो यह मान जायगा। वह बड़ी जल्दी मानता है, यह समझा कर तो देखो तनिक इसे।

(समय सायंकाल पाँच के पश्चात् का है। दि. 12.10.66। बुधवार। श्री पूज्यपादजी अभी सत्संग भवन से भक्तों से वार्ता करके वापस आकर अपने कमरे में बिछी खाट पर बैठे हैं। श्री पूज्य माँ ने छुके हुए चने तथा अंगूर खाने को दिए हैं और पास ही जमीन पर बैठी हैं। चने चम्मच से मुँह में डालते हुये श्री पूज्यपाद कह रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— बहुत खाया अब खाने-वाने की इच्छा नहीं। जिसे उससे ममता हो जाती है तो क्या यह चने और क्या अंगूर अच्छे लगेंगे? (श्री माँ को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं) "ममता" कितना प्यारा है यह शब्द 'ममता'; ममता बुरी नहीं यदि यह कन्हैया से हो। हाँ संसार की ममता तो गिरा देती है। "मेरा कन्हैया"! तनिक एक बार कहो तो। मेरे से तो कहा भी नहीं जाता। हृदय में हिलोरें उठती हैं "ममता" नाम लेते ही।

आज मैं यमुना गया। यमुनाजल देखते ही कन्हैया याद आ गया। अहा यह जल! यह जल तो मेरे कन्हैया के श्री चरणों का स्पर्श किया हुआ है। ममता उमड़ आयी, मेरा कन्हैया इस जल में केलि करता है। जल अंजुलि में भर लिया, छाती से लगाया, मेरे कन्हैया के चरणों से स्पर्श हुआ है यह जल!

आत्म निवेदन! आत्म निवेदन से ही वास्तव में कन्हैया से ममता हो जाती है और वही श्रीकृष्ण से मिला देता है। सच्चे हृदय से आत्म निवेदन हो। मन, वस्तु, शरीर आदि के निवेदन से काम बनता नहीं भैया! काम बनेगा आत्म निवेदन से। यह कब होगा? महापुरुषों की एक मात्र कृपा से और किसी प्रकार नहीं।

मेरे कन्हैया को पाना क्रिया साध्य नहीं। यह किसी कर्म का फल नहीं। भैया मेरे। यह ऐसी बात कह रहा हूँ जो सहज समझ में नहीं आवेगी। पर बात यही है। किसी कर्म के द्वारा कन्हैया को देखा नहीं जा सकता, चाहे कितनी ही माला फेरो, अन्य कोई साधन करो। पद मिल जायगा, यश-कीर्ति आदि मिल सकती है, सिद्धि प्राप्त हो सकती है परन्तु कन्हैया की वह मधुर मुस्कान भरी प्यारी सूरत देखने को नहीं मिल सकती।

सम्पूर्ण बद्धता! सब प्रकार जकड़ा हुआ व्यक्ति, गुड़ में चिपकी मक्खी की तरह पंख फड़-फड़ा कर मिट जाती है, परन्तु अपनी शक्ति से छूट नहीं सकती जब तक कोई दूसरा छुड़ाए नहीं। माया के बन्धनों में जकड़ा जीव राग-द्वेष की ज्वाला में जल जलकर मर जाता है परन्तु भव बन्धन से छूट नहीं सकता। वह तो महापुरुषों की कृपा से ही छूट सकता है पुस्तकीय ज्ञान से नहीं।

वर्णमाला का प्रथम अक्षर है "अ" और अन्तिम है "ह"। दोनों मिलकर हो गया अहं अर्थात् अभिमान, अहंता। तो समस्त वर्णमाला यानी विद्या का सार है अहंकार। इस "अहंकार" से छूटकर ही भगवत् प्राप्ति हो सकती है।

आत्मग्लानि! आत्मग्लानि होने पर ही विषयों से पीछा छूट सकता है। मन की ग्लानि अथवा अभ्यास के द्वारा नहीं। आत्मग्लानि ही एकमात्र इससे बचने का उपाय है। आत्मग्लानि होते ही साधक विषयों से ऊपर उठ जाता है। विषयों से ऊपर उठकर ही सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है। यह एक अवस्था होती है।

सिद्धि! कुछ चमत्कार दिखा देना सिद्धि है और सिद्ध एक अवस्था है जो विषयों से ऊपर उठकर होती है। सिद्ध अवस्था में संशय समाप्त हो जाते हैं। सिद्ध कोटि के साधु को कभी किसी प्रकार का भी संशय नहीं होता। वह हर समय सम अवस्था में रहकर परम शान्ति का अनुभव करता है।

स्वप्न में जागृति की अनुभूति! स्वप्न में देखे हुए दृश्य को देखकर वह विचार करता है तो उसे विदित होता है कि यही सब तो जागृत अवस्था में भी होता है। तब उसे वास्तविक स्थिति का बोध हो जाता है कि जागृति और स्वप्न दोनों समान हैं। असल और नकल दोनों बराबर हैं। उस समय उसे स्वप्न में जागृति का अनुभव होता है। यह होते ही संसार का असली स्वरूप (असार) उसके सामने आ जाता है। वास्तविक स्वरूप का बोध होते ही वह स्वप्न में जागृत (चेतन) हो जाता है। जागृति होते ही उसे सच्ची आत्मग्लानि होती है।

आत्मग्लानि होने पर विषयों से आन्तरिक घृणा होती है। यह घृणा ही उसे सिद्ध अवस्था में पहुँचाती है तब वह संशय मुक्त हो जाता है। तब आगे चलकर साधक अनुभव में डूब जाता है। उसी अवस्था में संसार की सत्यता का लोप हो जाता है। वास्तविक अनुभव है प्रभु को समझना। जब प्रभु को समझ लिया तो संसार की सत्यता का जो अनुभव किया था वह प्रभु की सत्यता में डूब जाता है। तब उसे दीखने लगता है कि एक मात्र सत्य तो श्रीकृष्ण ही हैं और सब तो नाम मात्र है। है कुछ नहीं।

(समय सायंकाल पाँच बजे के लगभग। दि. 14.3.69, श्री पूज्यपादजी आँगन में बिछी खाट पर विराजे हैं। कोई अंक (कल्याण का) पढ़ रहे हैं। कभी माला करने लगते हैं। इस समय गम्भीर मुद्रा में हैं। एक भक्त का आगमन। उसे देखते ही आदर पूर्वक बैठाते हुए बोले।)

श्री पूज्यपादजी— तुम कुछ लेने आये हो? तो लो। मैं इस संसार को असार देख रहा हूँ। इसमें से सार निकाल कर तीन वस्तु प्राप्त करनी है, सो ले लो। पहली सत्संग, दूसरी प्रभु उपासना और तीसरी सुख-दुःख सहने का स्वभाव। बस इनको लेकर चलो काम बन जाएगा।

प्रभु उपासना में बस तुम तो इतना ही करो क्योंकि काम वाले आदमी हो, समय अधिक नहीं है, नित्य एक बार, समय निर्धारित कर लो। ठीक समय पर प्रभु से हाथ जोड़कर नम्र होकर, श्रीचरणों में बैठकर, श्रद्धापूर्वक, कह दो

"न जानामि योगं जपं नैव पूजां, नतोऽहं सदा सर्वदा कृष्ण तुभ्यम्।"

बिना श्रद्धा सफलता नहीं होती भैया!

हे प्रभु! न मैं योग जानता हूँ, न जप कर सकता हूँ, न पूजा करना ही आता है। तुम्हें किस प्रकार संतुष्ट करूँ यह भी नहीं जानता। बस तुम्हारे श्री चरणों में सदा सर्वदा नमस्कार करता हूँ।

प्रकाश में अन्धकार नहीं होता। वैराग्य-त्याग यह लेने छोड़ने की चीज नहीं है। यह तो एक स्थिति है जो हृदय में उत्पन्न होती है। विशेष सन्तों के माध्यम से यदि यह लेने छोड़ने की वस्तु होती और उस लेने छोड़ने से भगवत् प्राप्ति का कोई सम्बन्ध है, यदि ऐसी बात होती तो चक्रवर्ती सम्राट दशरथ भगवान् राम को पुत्र के रूप में प्राप्त न कर पाते। महाराजा जनक महाशक्ति श्री सीता को पुत्री रूप में पा गये। ऐसा क्यों? क्या इन्होंने वैराग्य-त्याग के नाम पर कुछ लिया-छोड़ा था? नहीं। तो इससे विदित हो गया कि यह लेने-छोड़ने की वस्तु नहीं। यह तो एक महान् स्थिति है जो विरलों को ही प्राप्त होती है।

(स्थान औषधालय कक्ष। समय प्रातः 9:15 के पश्चात् आज अक्षय नौमी है। दिनांक 7.11.70, श्री पूज्यपादजी अपनी कुर्सी पर विराजे हैं। कुछ रोगी वहाँ हैं।)

श्री पूज्यपादजी— प्रश्न है शाश्वत शान्ति कैसे मिले? शाश्वत शान्ति का एक मात्र उपाय है "मनः शान्तिः"। मन ही सुनता है, मन ही देखता है, मन ही सूँघता है आदि-आदि। मतलब यह है कि सारा व्यापार मन के द्वारा ही होता है। देखलो यदि मन न हो तो बढ़िया से बढ़िया भोजन भी नहीं भाता, कोई स्वाद नहीं आता। बड़ा भारी जुलूस निकल जाने पर भान भी नहीं होता।

तो यह कैसे हो? मन शुद्ध होने पर। मन शुद्ध कब अथवा कैसे होता है? वह होता है निष्काम सेवा से। मन के शुद्ध होने पर आवश्यकता होगी स्थिरता की। मन स्थिर कैसे हो? बुद्धि के शासन द्वारा वैराग्य से संसार को सच्चे मायने में असार, अनित्य मानने तथा समझने पर मन स्थिर हो जाता है।

जब यह समझ लिया कि यहाँ कुछ भी नित्य नहीं तो उपरामता आ जाती है, मन सब से उदासीन हो जाता है। जब मन में उपरामता आ गयी तो डोलेगा क्यों?

मन शुद्ध और स्थिर हो गया तो अहंकार आ घेरता है, "मैंने मन जीत लिया" इस प्रकार का अभिमान का भाव सहज आ जाता है यदि यह आ गया तो सब करा कराया चौपट। अतः अहंकारशून्य यह कैसे हो? श्री गुरु चरणों में विनम्र भाव से, अन्तर मन से, पुनः पुनः नमन करने पर अहंकार गल जायगा, आपा मिट जायगा। बस शान्ति! परम शान्ति! शाश्वत शान्ति प्राप्त हो जायगी।

आत्मसुख! परम शान्ति के लिए दो कार्य करने होते हैं। पहला संकल्प रहित जीवन, निःसंकल्प स्थिति। किसी प्रकार का कोई संकल्प हो ही नहीं। दूसरा निष्काम भाव! कोई कामना न रहे। जो उस साँवरी सूरत को एकबार देख लेता है उसमें कोई कामना रहती ही नहीं। तो वही काम करो जिससे साँवरे की सूरत को देख सको। उसके लिए समता, समदृष्टि कर लो।

"ज्ञान मान जहाँ एकउ नाँही, देखहि ब्रह्म समान सब मांही" जहाँ सब यह ब्रह्ममय दीखने लगे तो समझो कि दृष्टि सम हो गई है। बस फिर निष्काम भाव उत्पन्न हो जाता है।

(समय दोपहर दो बजे के पश्चात् का है। श्री पूज्यपादजी अपने कक्ष में टाट के बिछे गद्दे पर विराजे हैं। भागवत सामने रखी है। श्री माँ से कह रहे हैं।)

आओ तुम्हें एक अच्छी बात बताएँ। यह लौकिक काम! यह तुम्हारे कुछ काम न आवेगा और न यह कभी समाप्त होगा। मैं जो कहूँ वह तुम सुनो। इस काम से तुम्हारा कुछ हित नहीं होना। आत्म चिन्तन का यही समय है।

आज साढ़े तीन बजे के करीब मेरी नींद खुल गयी। उस समय मुझे बताया गया इस नींद में सुख नहीं। नींद विश्राम नहीं दे सकती, सुख

आत्म-चिन्तन में है, विश्राम आत्मा के चिन्तन में मिलता है नींद में नहीं। देव दर्शन! देव दर्शन के लिए पवित्र होकर जाना चाहिए तब दर्शन का लाभ प्राप्त हो सकता है। परन्तु यह कहाँ हो रहा है? देव दर्शन के लिए जाने से पूर्व स्नान करके वस्त्र बदलकर अत्यन्त पवित्रता से मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए। पर यहाँ तो भागा-दौड़ी चल रही है इसीलिए लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। स्नान से मेरा मतलब मन के स्नान से है शरीर से उतना नहीं। शरीर को यदि स्नान करा लिया मन गन्दा रहा तो लाभ नहीं होगा। मन का स्नान करके तब देवदर्शन को जाओ देखो कैसे लाभ नहीं होता। मन पूर्ण पवित्र हो श्रीकृष्ण को छोड़ कर अन्यत्र कहीं न जावे।

रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श आदि इन्द्रियादि भोगों में मन न दौड़े। मन परम पवित्र हो तब देव दर्शन करो और देखो क्या होता है देवदर्शन कब होता है? जब शरीर का भान न रहे। क्या कभी ऐसा हुआ है? क्या काम पड़ता है। फुरसत ही नहीं किसी को सोचने की। तेरी-मेरी भागा-भागी, निन्दा, स्तुति, गुटबन्दी आदि-आदि से भी। मेरे भाई! यों काम नहीं चलेगा। वहीं आना पड़ेगा जहाँ से आत्मदर्शन देवदर्शन होता है। आत्मा को परमात्मा में और परमात्मा को आत्मा में देखा जाता है। वह शुद्ध स्वरूप इन्द्रियातीत परमात्मा इन इन्द्रियों का विषय नहीं। वह तो हृदय से देखा जाता है, अन्तःकरण शुद्ध होने पर उसका दर्शन होता है।

आत्मा का निरन्तर चिन्तन करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है शान्ति से बैठकर आत्म चिन्तन करो। देखो! यह शरीर आत्मा नहीं है, यह मन आत्मा नहीं है, यह इन्द्रिय आत्मा नहीं है। जब यह सब आत्मा नहीं है तो फिर आत्मा क्या है? जब यह भाव होगा तब आप वहाँ होंगे जहाँ इसका उत्तर है। उस समय शरीर की स्मृति नहीं रहती। शरीर की स्मृति नहीं रहती तो संसार भी नहीं रहता। जब संसार नहीं तो इन्द्रिय सम्बन्धी सब भोग भी समाप्त हो जाते हैं। जब यह स्थिति होती है तब आत्मदर्शन होता है और तब निरन्तर आत्मचिन्तन होने लगता है। काम तो तभी चलेगा जब यहाँ आओगे भैया।

भैया रे! यह व्यर्थ साम्प्रदायिक भाव क्यों? यह द्वैत, अद्वैत जब तक रहेगा कुछ होना नहीं है। दिखावा चाहे कितना ही करो। दिखावे से कन्हैया को रिझाया नहीं जा सकता। वह तो अन्तर्यामी है सबके अन्तर की बात जानता है। हमारे पूर्वज ऋषियों ने तिलक को ब्रह्म चिन्तन की दृष्टि से, इड़ा-पिंगला को सुषुम्ना नाड़ी का संकेत बताया है। परन्तु आज तिलक को लेकर परस्पर झगड़े चल रहे हैं।

जो तिलकधारी नहीं वह वैष्णव समाज में स्पर्श योग्य नहीं। वह नास्तिक माना जाता है। उसके हाथ का पानी पीना निषेध समझा जाता है। क्या यह दु:ख की बात नहीं? मैं कहता हूँ यदि उसके हृदय में श्रीकृष्ण के प्यार का सागर हिलोरें ले रहा है तो वह उन करोड़ों तिलक-कण्ठीधारियों से महान् है जो बड़े-बड़े तिलक लगाकर उसकी आड़ में व्यभिचार करते हैं। वैष्णवता की आड़ में मल खाते हैं। मुझे बड़ा दु:ख होता है भैया! तभी मैं इस प्रकार गाली देने लगता हूँ। मेरा विरोध किसी के साथ नहीं। जो सब में अपने कन्हैया को देखता हो वह विरोध किसका करेगा?

मैं तो कन्हैया का काम करने आया हूँ। चाहता हूँ सब सुखी हो जायँ बस यही मेरा स्वार्थ है। तो भैया रे! इस दौड़ा-दौड़ी, गुंडागर्दी को जब तक न छोड़ेंगे, सुख की शान्ति की छाया भी न पा सकोगे। कृष्ण की चर्चा सुनने से काम न चलेगा। उसका यश सुनने से काम न बनेगा और न उसका गुणगान करने से कुछ होना है। माला पर लाख नाम रोज जपने से भी कुछ बनना नहीं है। काम बनना है विवेक पूर्वक समझने से। उसी में आनन्द है।

बर्फी की चर्चा सुनने से, उसकी प्रशंसा करने से, उसका यश सुनने से स्वाद नहीं आवेगा। स्वाद तो उसे खाने पर ही आवेगा। क्या यह मैं गलत कह रहा हूँ? इसी प्रकार श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में भी केवल चर्चा करने, सुनने से काम नहीं बनेगा। काम बनेगा उसका अनुभव करने से। अनुभव हृदय में होता है। हृदय जब शुद्ध होगा तब मन श्रीकृष्ण को छोड़कर कहीं न जायेगा।

परमात्मा ने मुँह एक दिया है, जुबान भी एक ही दी है और मन भी एक ही दिया है उससे एक ही काम करो। यह दोगलापन बढ़ने नहीं देगा। आजकल वृन्दावन में ही वैष्णव समाज में एक बड़ा अँधेरा छा रहा है। सोचता हूँ तो बड़ा दुःख होता है। वह है कृष्ण- गोपीभाव यहाँ के पुरुष सब श्रीकृष्ण हैं और स्त्रियाँ गोपी। हाय-हाय! यह क्या हो रहा है? प्रकृति से निर्मित शरीर कृष्ण और गोपी? यह घोर नरक का साया है।

राधा-कृष्ण को लेकर ही परस्पर झगड़ा चल रहा है। कोई कहता है राधा बड़ी है तो कोई कहता है कृष्ण बड़ा है। अरे भैया! यह घोर अंधकार है, प्रकाश में आओ। पुकारता हूँ कोई सुनता ही नहीं। कहते हैं "हमारा तो यही प्रकाश है तुम्हें क्या पड़ी।" तो पिटाई निश्चय होगी, हम क्या कर सकते हैं?

एक बार मैं बरसाने गया। देखते ही पुजारी-पण्डा जो भी हो उसने समझा कोई सेठ है। "आओ सेठजी आओ, देखो यहाँ श्री जी का धाम है। यहाँ श्रीकृष्ण का प्रवेश नहीं। वह तो दरबान के रूप में बाहर खड़े रहते हैं।" सुनते ही बड़ा धक्का लगा। सोचो भैया! क्या यह विचार ठीक है? श्री जी अपने जीवन सर्वस्व श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही मूर्च्छित हो जाती हैं। उन्हें एक क्षण का भी वियोग सहन नहीं। जिसके प्राण ही श्रीकृष्ण हैं वह यह सब सुनकर क्या प्रसन्न होंगी।

अरे मेरे भाई! तनिक सोचो हम कहाँ जा रहे हैं? कोई कहता है "हम तो ब्रज के कृष्ण को मानते हैं द्वारिका के कृष्ण को नहीं।" और न जाने क्या कहते हैं। तब विचार करो, सोचो क्या यह अपने इष्ट का अपमान नहीं है? अरे! जिसे तुम प्यार करते हो वही तो यह सब लीला कर रहा है। उसका अपमान करोगे तो क्या वह प्रसन्न होगा? तो मैं कहता हूँ यह अविद्या जनित बातें त्यागो, सत्य को पहिचानो, उन्हें धारण करो। प्राण-प्रण से सत्य का पालन करो और उस सत्य-स्वरूप प्रभु का दर्शन करो।

(श्री पूज्यपाद जी अभी बाजार से आये हैं। बरामदे में मोढ़े पर बैठे हैं। श्री पूज्य माँ से कह रहे हैं।)

"यह चवन्नी लो" मैंने दुकानदार से कहा "भैया! मैं यह चवन्नी लाया हूँ। यह खराब है यदि तुम इसे ले सकते हो तो ले लो नहीं तो यह दूसरी भी मेरे पास है।" उसने देखकर कहा "यह तो मैं नहीं लूँगा" मैंने कहा, "मैं तो यही विचार कर आया हूँ कि तुम लोगे।" वह बोला—"श्री महाराज इस प्रकार आप कहेंगे तो कोई नहीं लेगा।"—"तो धोखा देकर मुझे किसी को देनी नहीं है।" वह आश्चर्यचकित हो गया। कहने लगा, "महाराज आज के युग में आप जैसा व्यक्ति मिलना मुश्किल है।" और तब उसी ने वह चवन्नी ले ली।

तो भैया! सत्य में ही बल है। मेरा धर्म सत्य है। तुम मेरी सह-धर्मिणी हो तो तुम भी मेरे धर्म का पालन करो। बस मैं यही चाहता हूँ। असत् बात किसी भी मूल्य पर मानने को तैयार नहीं हूँ। इसी प्रकार तुम भी मत मानो।

श्रीकृष्ण को पकड़ने की सत्य में ही सामर्थ्य है। शिशुपाल ने कृष्ण को खूब बुरा-भला कहा, पर अन्त में उन्होंने उसे निज धाम दिया। ऐसे हैं वह उदार श्रीकृष्ण। भागवत में लिखा है कि शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को जो कुछ कहा वह सब कुकुर क्रन्दन था। मैं भी यही कहता हूँ यह दुनिया के लोग सत् से हटकर जो कुछ कहते हैं वह कुकुर क्रन्दन मात्र है। यदि तुम भी इसे समझ लो तो कोई दुःख न रहे। कौन अच्छा कह रहा है कौन बुरा कह रहा है यह विचार ही समाप्त हो जाय।

(श्री पूज्यपाद अधिकांश धोती का अध्धा एवं बनियान में रहते हैं। मकान बदला है। अब गोस्वामियों के मुहल्ले में हैं— गोस्वामी का ही मकान है। अतः श्री माँ का कहना है कि अब आप इस वेश में न रहा करें, इसके उत्तर में बता रहे हैं।)

ठीक है भैया! तुम जैसा कहोगे वैसा करूँगा। यह सब उसी नटखट का खेल है जैसे खिलायेगा खेलूँगा। यह साजियों (स्वामियों) का मुहल्ला है।

मुझे यहाँ लाकर रखा है, जो स्वांग करवाएगा, करूँगा। वह नाटककार रंगमंच पर जो पार्ट देगा वही खेलना है। सफल कार्य करके उसको रिझाना है। यदि तुम लोग भी यही समझो तो कितना अच्छा रहे।

यह सब उस मंगलमय प्रियतम का मंगल प्रसाद है। प्रियतम के प्रसाद को पाकर क्या प्रेमी दुःखी होगा? अरे नहीं! यही तो उसकी चाह है। प्रसाद को पाकर ही वह खुश होता है, सुख का अनुभव करता है। वह प्रसाद को अच्छा-बुरा नहीं कहता। रोग का, क्लेश का, निंदा का, अपमान का, तिरस्कार का, सभी का प्रेम से आलिंगन करता है। यह मेरे प्रियतम का प्रसाद है। ऐसी स्थिति में उसे दुःख हो सकेगा? अरे नहीं भाई! उसके लिए भला दुःख! दुःख सुख हो जाता है।

(स्थान सत्संग भवन। समय साढ़े चार बजे के पश्चात्। श्री पूज्यपाद स्व आसन पर विराजे हैं। भक्तजन भी अपने-अपने स्थान पर शान्ति पूर्वक बैठे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— यों तो प्रभु ने अपने मिलने के बहुत साधन बताये हैं। गीता में कहा है—"युक्त आहार-विहार से मिलता हूँ।" परन्तु दया परवश हो अपने मिलन का सुगम से सुगम उपाय अपने प्यारों के द्वारा बताता हूँ। बाँका है न! बाँके की सभी बातें बाँकी हैं। कलाधारी की कला का एक नमूना मैं आप लोगों के सामने रखता हूँ। यह बात अपने में अनोखी है। कभी न पढ़ी होगी न सुनी होगी। देखलो मुझे तो नई लगती है भैया! मैं भी तुम्हारे संग श्रोता बनकर सुनता हूँ और बड़े आनन्द का अनुभव करता हूँ। तुम्हारी तुम जानो। तो वह नमूना यह है।

जब प्रभु चिन्तन करने बैठो तो पहले शरीर का चिन्तन करो। है न अजीब बात! शरीर का चिन्तन, हाँ भैया! शरीर का चिन्तन। उस चिन्तन में देखो यह शरीर क्या है? हाड़, मांस, रक्त, मल, मूत्रादि का भांड है और विनाशी है, अनित्य है। चलते-चलते कभी भी गिर जायगा। जब यह बोध हुआ तो इससे आस्था हट जायगी। आस्था हटते ही देह का भान छूट जायगा, विदेह हो जाओगे। और क्या होगा? नराकार से

निराकार हो जाओगे। निराकार होते ही समस्त विकार भाग जायेंगे। भैया रे! विकार तो आकार में है जब आकार ही नहीं विकार कहाँ? जब अपने को निराकार पाया तो देह को अनित्य देखा। तो सबसे बड़ा हमारा शत्रु, जो अभिमान है, वह समाप्त हो गया।

यह अभिमान ही समस्त दुष्कर्मों का मूल है। जब यह समाप्त हो जायगा तो मन, बुद्धि, चित्त सबके सब एक दम निर्मल हो जायेंगे। उस निर्मलता में ही होता है प्रभु मिलन। तो भैया! शरीर का चिन्तन करो और इसको अनित्य देखो। कहो मत, देखो। भलाई-बुराई, निन्दा-स्तुति, अच्छा-बुरा, यह मात्र शब्द हैं। वास्तविकता इनमें कुछ नहीं। तनिक विचार कर देखो क्या है? किसी ने आपकी बुराई कर दी तो आपकी आँखों में खून उतर आया और यदि प्रशंसा कर दी तो बड़े प्रसन्न हुए। आखिर इससे हुआ क्या? आप जैसे थे वैसे ही रहे। किसी के कहने से आप में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ, कुछ बना बिगड़ा नहीं। अरे मेरे भाई! कभी यह सोचा नहीं, यह केवल मनोभाव है। इनसे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मुझे तो दोनों ही भाव समान लगते हैं। यदि यह निश्चय कर लिया तो इधर से ध्यान हट गया। इधर से हटते ही श्रीकृष्ण से जुड़ गया। यही हमारे काम की चीज है।

हमारे पास दो यंत्र हैं। एक है मन और दूसरा है बुद्धि। इन्हीं के द्वारा सारा कार्य व्यापार चलता है। मशीन को यदि साफ नहीं करते तो जंग लग जाती है। यन्त्रों से कार्य न लिया जाय तो बेकार हो जाते हैं। तो हमारे मन बुद्धि में भी जंग लग गयी है जिनसे श्रीकृष्ण प्रभु को ढूँढ़ना था वह कुंठित हो गए हैं। तो भैया मेरे! यदि इनको माँज-धोकर साफ कर लिया जाय तो यह निर्मल हो जाय। तब उस अनोखे बाँके की झाँकी होगी। इनको आत्मगंगा के जल से साफ करलो और फिर प्रभुचिन्तन से भर लो। तब जिस प्रकार सीपी स्वाति बूँद लेकर समुद्र तल में उलटकर चली जाती है उसी प्रकार यह तुम्हारी बुद्धि भी आत्मजल से धुलकर प्रभुचिन्तन से भर जायगी तो उलटकर हृदय समुद्र तल में चली जायगी। तब वहाँ हृदय मन्दिर में विराजे बाँकेबिहारी का

दर्शन होगा। वहीं होगा दर्शन, अरे भैया! वह कहीं दूर थोड़े ही हैं? वह तो तुम्हारे उरस्थल में ही बैठे हैं। खोज लो, मार्ग मैंने बता दिया।

(स्थान हितरूप भवन का छोटा कक्ष। समय दोपहर का है। श्री पूज्यपाद अपने टाट के गद्दे पर विराजे हैं। भागवत सामने रखी है। पाठ कर रहे हैं। बीच में ही बता रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— देखो भैया! मैं बताता हूँ तो लोग सुनते नहीं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कह रहे हैं—"जो केवल धातु, मृत्तिका, पाषाणादि में ही मुझको देखता है, केवल मूर्ति में ही मुझको मानता है और चराचर संसार में व्याप्त समस्त प्राणियों में मुझे नहीं देखता, उससे मैं प्रसन्न नहीं होता। जो केवल मूर्ति में मुझे मानकर मेरी सेवा करता है, ज्ञानी महापुरुषों का आदर नहीं करता और उनका जो तिरस्कार करता है वह महान् पापी है"।

तो भैया! यह स्वयं प्रभु कह रहे हैं। अरे जिसे तुम प्यार करते हो जिससे मिलना चाहते हो— उनकी बात नहीं मानते। बड़े आश्चर्य की बात है। फिर क्या मानते हो? मुझे तो ऐसा लगता है कुछ भी नहीं मानते। तो ऐसे काम नहीं चलेगा। सत्य को अपनाओ, सत्य की आवाज सुनो। तुम्हारी अन्तरात्मा की प्रेरणा ही सत्य की आवाज है। उसे सुनकर उसका पालन करो।

अभी कल की बात है। अखबार वाला ऊपर वालों को अखबार दे गया। मेरी इच्छा हुई इसे देखूँ। यह इच्छा आते ही अन्तर से ध्वनि मिली क्यों? यह तुम्हारा तो नहीं है फिर तुम्हारा क्या अधिकार है परायी वस्तु के प्रयोग करने का? यह चोरी है। मैंने पेपर नहीं छुआ। तो भैया! बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। यदि तुम अपने परम प्रियतम कन्हैया को प्यार करते हो, उन्हें देखना चाहते हो तो वही करो जिसमें उन्हें सन्तोष हो।

सत्य में से ही विश्वास व श्रद्धा पैदा होती है। यह कहीं बाहर से आने वाली वस्तु नहीं है। जब विश्वास और श्रद्धा है तो अनुभव भी होगा। सर्वत्र श्रीकृष्ण की कृपा दीखने लगेगी। अरे भाई! उसकी मार भी प्यार है। वह इतना दयालु है देखो न! सबके ऊपर समान रूप से कृपा की वर्षा कर रहा है।

उसका स्वभाव ही अपने भक्त का रंजन करना है। उस पर काम ही यही है और कुछ काम ही नहीं।

जैसे गाय को अपने नवीन शिशु पर, कामी को कामिनी पर, लोभी को धन पर ममता होती है ठीक उसी प्रकार की, अरे नहीं मेरे भाई! उससे भी करोड़ गुनी ममता श्रीकृष्ण को अपने भक्त पर होती है। इसलिए तो उसका नाम भक्तवत्सल है।

अपने भक्त द्वारा किए हुए तनिक से को भी बहुत मानता है और अपना सब कुछ देकर भी यहाँ तक कि अपने आपको देकर भी संकोच करता है कि अपने भक्त को कुछ न दे सका। देखा कितना उदार है मेरा कन्हैया! तुम्हारा मन नहीं करता उसे प्यार करने को। अरे मेरे भाई! प्यार करने की चीज ही कन्हैया है और सब बेकार है।

नन्दबाबा को मथुरा से सन्देश भेजा—"भैया ऊधो! मेरे बाबा से कहना, जब किसी पर ऋण अधिक हो जाता है तो वह ऋण चुका नहीं पाता है। तो अपना मुँह छिपाकर भाग जाता है। सो मैं उनका ऋणी हूँ इसीलिए यहाँ भाग आया हूँ।"

तो मेरे भाई! इन हाड़, मांस, ईंट पत्थरों से क्यों सिर फोड़ते हो? कन्हैया से प्यार करो। यह सब तो अनित्य वस्तुऐं एक दिन या तो यह तुम्हें छोड़ देंगी या तुमको छोड़नी पड़ेंगी। तो पहले ही क्यों न इन से सम्बन्ध काट दिया जाय। सन्तजन तो बता गये हैं—

अन्तहु तोहि तजेंगे पामर, तू क्यों न तजै अबही ते।

कन्हैया को पाने के लिए एक कवच धारण करना पड़ता है फिर माया का प्रभाव नहीं हो सकता। वह माया कितने ही अस्त्रों का प्रयोग क्यों न करे सब विफल हो जाते हैं। जानते हो वह कवच क्या है? वह कवच है काम के वेग को पीना, भूख की ज्वाला को खाना नेत्रों से हाथ-पैरों आदि की देखभाल रखना कि इनसे कोई गलत काम तो नहीं हो रहा। हृदय से नेत्र तथा

कानों पर नियन्त्रण रखना कि कुछ गलत तो नहीं देख सुन रहे हैं। हृदय में सत्य को धारण करना होगा। काम के वेग को पी जाओ। मैंने तो कई वर्ष हुए इसको पी लिया। "सियावर रामचन्द्र की जै।" पी जाओ बस।

भैया रे! श्रीकृष्ण को अपने पुरुषार्थ से नहीं पाया जा सकता। पा सकते हो क्या कोई ऐसा साधन तुम्हारे पास है? देखते हैं, विचार करते हैं तो अपने आपको नितान्त असमर्थ पाते हैं। तो क्या यदि प्रभु कृपा करें तभी हो सकता है? कृपा कब होती है? जब हृदय शुद्ध हो जाता है। शुद्ध हृदय सरल होता है। सरल हृदय सच्चा हो जाता है तब प्रभु की कृपा हो जाती है।

हृदय शुद्ध, महापुरुषों की सेवा से होता है। महापुरुषों के रूप में स्वयं प्रभु ही कृपा करने पधारते हैं। यदि निश्चय भाव से महापुरुषों की सेवा की जाती है तो वह सुपुर्द कर जाते हैं, दे जाते हैं कन्हैया को सुपुर्दनामा होता है भैया। यह पुरुषार्थ से प्राप्त करने की वस्तु नहीं है। यह उन्हें ही दी जाती है जिन पर महापुरुष रीझ जाते हैं, उन्हें दे जाते हैं कन्हैया को। मुझे तो बाबा (गुरुदेव) सुपुर्द कर गये। बस काम हो गया।

हर कार्य की युक्ति होती है। काहे की? महापुरुषों को रिझाने की। वह क्या? सेवा, सेवा का स्वरूप लोगों ने समझा नहीं भैया! अरे कुछ उनका काम कर देना, कुछ लाकर खिला-पिला देना मात्र ही सेवा नहीं। सेवा में अपने आपे को भूल जाना, खो जाना, यह भाव ही न रहे—"मैं सेवा कर रहा हूँ।" स्वयं सेवा का स्वरूप हो जाना, उनकी प्रसन्नता का ध्यान रखना ही वास्तव में सेवा है। इससे अभिमान मिट जाता है, मर जाता है। मैं के मरने पर ही वह सुपुर्द के योग्य होता है। विश्वास के योग्य हो जाता है। विश्वास पात्र को ही कन्हैया सुपुर्द किया जाता है।

मतंग ऋषि शबरी को राम के सुपुर्द कर गये। शबरी ने राम को पा लिया। सबसे पहले राम शबरी की कुटिया पर ही पधारे। यह है युक्ति जिससे तुम भी पा सकते हो अपने कन्हैया को। निश्छल भाव से महापुरुषों के, जिनको तुम्हारी अन्तरात्मा स्वीकार करे उनके हो जाओ। किसी के कहने से

नहीं हृदय की माँग से, अन्तरात्मा की स्वीकृति से यदि उनके होकर सच्चे हृदय से उनकी सेवा की तो वह तुम्हें कन्हैया सुपुर्द कर देंगे।

विश्वास पात्र कौन होता है जानते हो? जो पूर्णकाम है जिसे कोई कामना ही नहीं हो। पूर्णकाम वही होता है जो पूर्णकाम से मिल जाता है। नहीं तो सभी चाहे वह सम्पत्ति में अरब खरब गणित की अन्तिम राशि का मालिक ही क्यों न हो विश्वास के योग्य नहीं। महापुरुषों का कृपापात्र पूर्णकाम ही होता है और उसी का सुपुर्द नामा होता है। चाहो तो योग्यता प्राप्त करो। महापुरुषों के कृपापात्र बनो। कामना का त्याग करो।

(समय दोपहर दो बजे के पश्चात का है। दिनांक 27.11.66, श्री पूज्यपादजी अपने कक्ष में जमीन पर बिछे टाट के गद्दे पर विराजे हैं। पास ही बिछी चटाई पर एक राम भक्त महिला बैठी है। आज कार्तिकी पूर्णिमा है। श्री सत्य नारायण का व्रत है। बहिन का प्रश्न यह है कि मैं नित्य मानस (रामायण) का पाठ करती हूँ। परन्तु शान्ति नहीं मिलती। उसी के उत्तर में श्री पूज्यपादजी उन्हें बता रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— देखो मैया! ऐसा है, शान्ति तो मनुष्य को तब मिलती है जब राम से मिलन हो जाता है। राम मिलन कब होता है? जब राम का विश्वास होता है कि राम प्रभु हैं, जो चीज है वह मिल भी सकती है। यह कैसे पता चले कि राम हैं? यह महापुरुष अपने अनुभव के आधार पर बताते हैं। तो पहली बात तो किसी महापुरुष को हृदय से वरण करना होता है। किसी के कहने से नहीं अपनी अन्तरात्मा की स्वीकृति से।

महापुरुष की शरण में जाकर व्रत लेना होता है जैसे तुमने आज व्रत किया है वह व्रत है सत्य का पालन और उनकी सेवा। सत्य को धारण कर सच्चे हृदय से गुरु की सेवा की जाती है तो हृदय शुद्ध हो जाता है। शुद्ध होने पर सरलता आ जाती है। अपवित्र हृदय कठोर होता है। कठोर हृदय सत्य को धारण नहीं कर सकता। सरल हृदय में ही सत्य उदय होता है और तभी वह सत्य स्वरूप राम प्रभु की सत्ता पर विश्वास करता है। फिर सन्देह नहीं करता।

तो भैया! राम मिलन के लिए शुद्ध सरल और सच्चा हृदय चाहिए। यह सच्चा हृदय तुम्हारा खेत है। अरे भैया खेती करोगे तभी तो उसका फल प्राप्त कर सकोगे। तो राम मिलन के लिए खेती करो। खेत के लिए पहले भूमि की अपेक्षा है तो यह तुम्हारा सच्चा हृदय ही भूमि है। इसमें हल चलाना होगा जिससे जंगली पौधे उखड़ जायें तथा जमीन पोली हो जाय। तब सत्कर्मों का हल चलाओ। सत्कर्म है सेवा, सत्संग, पर उपकार, महापुरुषों की निस्वार्थ सेवा और उनका संग तथा प्राणीमात्र का हित।

भजन के लिए भोजन और परहित (दूसरों) के लिए जीवन यह है सत्कर्म। यह दौड़ा-दौड़ी भोजन के लिए है लाला, केवल रोटी के लिए। यदि इस भोजन में भोग की भावना नहीं है, भजन की भावना है तो फिर क्या कहना। भोजन क्यों करते हैं? जीवन धारण के लिए। जीना क्यों चाहते हैं? राम-मिलन के लिए। हाँ, तब तो ठीक है।

तो भोजन भजन के लिए हुआ और जीवन पर उपकार के लिए। यह सब किया और लेखा-जोखा लाला (रामप्रभु) को सँभलवा दिया। अभिप्राय–कर्म। जो सत्कर्म तुमने किए वह श्रीकृष्ण को अर्पण कर दिए तो कर्म बन्धन से मुक्त हो गये। खेत में हल चल गया। जो जंगली पौधे यानी विकार थे समाप्त हो गये। जमीन पोली हो गई अर्थात् हृदय कोमल, सरल एवं सच्चा हो गया। तो जो बताया तत्क्षण धारण हो गया।

अब बीज बोना है तो हरिनाम का– रामनाम का बीज डालो। बीज पड़ गया अब जल की अपेक्षा है तो सत्संग का जल डालो। खाद भी चाहिए तो सन्तोष की खाद डालो और अब प्रतीक्षा करो। खेत लहलहायेगा और उसका फल होगा "राम"। भैया रे! निराश नहीं होना चाहिए। जिनके प्रति तुम्हारी आस्था है उनके वचनों पर प्रत्यक्ष के समान विश्वास होगा तो काम अवश्य बनना है इसमें सन्देह नहीं।

मैं अपनी बात बताऊँ साधन काल में मैं कुछ दिन यह सब करके कुछ निराश सा हो गया। सोचा इसमें कुछ नहीं। यह सब बेकार है। माला, मानस

(रामायण) सबसे आस्था हट गयी। परन्तु एक दिन मानस की एक चौपाई ने, गीता के एक श्लोक ने मेरे जीवन को बदल दिया, एक दम मोड़ दिया। वह चौपाई है–

मज्जन फल पेखिअ ततकाला, काक होंहि पिक बकउ मराला।

बगुला हंस हो जाता है? प्रश्न हुआ– तब तो इस सरोवर में अवश्य ही स्नान करना है। सत्य का कभी अभाव नहीं होता। असत्य की कोई सत्ता नहीं। जब उसकी कोई सत्ता ही नहीं तो उससे काम क्या हो सकता है। तब इसका त्याग करो। सत्य तो केवल राम है। बस उन्हीं को पकड़ो। करनी और कथनी की एकता जो कहते हो वही करो। समय और वचन की रक्षा करो।

आज पूर्णिमा है। एक वचन दो कि प्रति मास श्री सत्यनारायण का व्रत करूँगी। इससे तुमको बड़ा लाभ होगा। करके देखोगे तो स्वयं पता लगेगा। यदि तुमने अपना खेत तैयार करके बीज डाला और ठीक से सिंचाई करते रहे तो खेती न हो और उसमें फल न लगे यह असंभव है। लगेगा, अवश्य लगेगा। लगता है।

देखो भैया! ऐसा है जो प्रभु से मिलना चाहते हैं वही उनका अनादर करते हैं। अरे जिसे हम चाहते हैं प्यार करते हैं उन्हीं का अनादर? तो वह कैसे प्रसन्न होंगे? बताऊँ! कैसे अनादर करते हैं? चराचर विश्व समस्त प्राणी श्रीकृष्ण का ही तो स्वरूप है। यदि तुम्हारे द्वारा किसी को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा तो यह उनका अनादर हो गया। तो ऐसा काम करो कि जिससे किसी भी प्राणी को, जीव मात्र को तुम्हारे द्वारा मन से, वचन से, कर्म से कष्ट न हो।

तुम सुख चाहते हो तो बदले में सुख दो, मान चाहते हो तो मान दो। यदि दर्पण (शीशा) के अपने प्रतिबिम्ब में माला (गले में हार) चाहते हो तो अपने गले में पहन लो। यह विश्व उसी प्रभु का प्रतिबिम्ब है। यदि सुख, शान्ति, प्रभु का दर्शन चाहते हो तो उन्हें प्रसन्न करो।

यह त्याग, यह वैराग्य कहीं बाहर से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है, यह तो हृदय में उदित होती है। कभी-कभी मैं सोचता हूँ यह सब वस्त्र पहनना छोड़ दूँ। एक लंगोटी पहन लूँ। फिर सोचता हूँ क्यों? क्या इससे श्रीकृष्ण राजी होंगे? हाँ! वह नंगे से राजी तो होते हैं पर कैसे नंगे से? जानते हो? कामना के नंगे से, वस्त्र के नंगे से नहीं। वस्त्र का नंगा, नंगा नहीं होता। वास्तव में नंगा वह है जिसे कोई कामना नहीं है, इच्छा नहीं है, चाह नहीं है, अपेक्षा नहीं है।

प्रभु मिलन के लिए आवश्यकता है—आत्म समर्पण की। रुक्मिणी की भाँति समर्पण होता है। यह कैसे पता चले कि समर्पण हो गया? भैया रे! जिनके प्रति आत्म समर्पण होता है उनका सुख ही आत्म समर्पणकर्त्ता का सुख होता है। उसका अपना कहने को उसके पास कुछ नहीं रहता। मन, प्राण, धन, परिवार, शरीर सब कुछ उन्हीं का हो जाता है। भरत जी की भांति

"स्वारथ परमारथ सुख सारे,
भरत न सपनेहु मनहिं निहारे"

हो जाता है। समर्पित को न दिन का पता, न रात का ध्यान, न सुख की साध, न दु:ख की चिन्ता होती है। बस वह और उसके आराध्य प्रतिक्षण उसे यही चिन्ता रहती है। "क्या करूँ?" जिससे वह प्रसन्न हों, उन्हें सुख मिले।

कहीं जाने से पूर्व कुछ तैयारी करनी होती है। किसी से मिलने जाते हो तब भी कुछ न कुछ तैयारी करते ही हो। तो देखो क्या परम प्रियतम श्रीकृष्ण से मिलने के लिए तुमने कुछ तैयारी की है?

सबसे पहले तो यह देखो तुम्हारे अन्त:करण में कहीं गन्दगी तो नहीं है। जहाँ प्रियतम को बिठाना चाहते हो वहाँ उनके बैठने योग्य सिंहासन है क्या? देखो तुम्हारी चादर में कहीं दाग तो नहीं। यदि यह है तो पहले उसे साफ करलो। निराश मत हो भैया! पश्चाताप के जल से धो डालो, फिर उसको गन्दी मत होने दो।

अरे मेरे भाई! मेरा कन्हैया इतना कोमल इतना उदार है कि तनिक अपनी पोटली उसके सामने खोलकर उससे क्षमा माँगो तो सही कि उसे क्षमा करते देर नहीं लगती। बाली ने क्या किया? बस यों ही तो कहा "प्रभु! क्या मैं अब भी पापी हूँ? जब आप मेरे सामने खड़े हैं।" बस रीझ गये प्रभु राम। कह दिया "तू रह और अचल राज्य कर।" तो भैया! जो कुछ तुमने आज तक किया है उसको निश्छल भाव से प्रभु के सामने खोलकर रख दो। अपने कुकर्मों का पूरा चिट्ठा उन्हें सुना दो। पश्चाताप की भट्टी में तपाकर अपनी इस सनी हुई चादर को आँसू के जल से धो डालो और फिर गन्दी मत करो। प्रतिज्ञा करो "अब कोई कुकर्म नहीं करेंगे" बस काम बन जायगा।

दुनिया के लोगों का कहना है—

काजल की कोठरी में कैसोऊ सयानो जाय।
एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै॥

पर मैं कहता हूँ जो श्रीकृष्ण का हो चुका, जिसने अपने आपको श्रीकृष्ण को सौंप दिया, उन दीवानों की दुनिया में कालिमा को भी सफेद होना पड़ेगा। अरे मेरे भाई! सुन रहे हो मैं क्या कह रहा हूँ? कालिमा रहेगी ही नहीं तो लीक कहाँ से लगेगी। उन दीवानों के लिए भला कालिमा? कालिमा श्वेत हो जायगी। बात बड़ी अजीब है पर है सही।

(स्थान जुगल विहार। सत्संग बेला! समय सायं साढ़े चार बजे के पश्चात्। श्री पूज्यपादजी स्वआसन पर विराजे हैं। भक्त जन भी अपने-अपने स्थान पर शान्ति से सुनने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्री पूज्यपादजी बता रहे हैं।)

लोग कहते हैं "भजन नहीं होता।" परन्तु मुझे आज एक नई चीज मिली है। मुझे जो मिलता है, जो दीखता है वही आप लोगों को लाकर देता हूँ, बताता हूँ यहाँ बैठ कर जो वह कहलवाता है वही इस यंत्र से निकलने लगता है। तो लोग तंग हैं "भजन बनता नहीं, होता नहीं" अरे भाई! यह बात नहीं। भजन तो हर समय होता है। भजन के बिना मनुष्य एक क्षण जिन्दा नहीं रह सकता।

भजन ही उसका जीवन है। माँ के गर्भ में आते ही उसका भजन शुरू हो जाता है। यह बात बड़ी ही विचित्र है। इसे कोई-कोई ही समझ सकेगा। मुझे स्वयं ही आश्चर्य हो रहा है। मैं भी तो तुम्हारे साथ श्रोता हूँ। "भजन नहीं बनता" यह तो लोगों के पास बहाना मात्र है। अब तो मालूम हो गया कि भजन करना नहीं पड़ता भजन होता है और हर समय होता है। भजन के बिना प्राणी शव के तुल्य है अर्थात् वह शव (लाश) है।

भैया! यह कहने वालों को कि हमें समय नहीं मिलता, भजन नहीं होता उनको मैंने ताश खेलते देखा है। बड़ा आश्चर्य है इसके लिए समय कहाँ से आ गया?

हम भूल जाते हैं, याद नहीं रहता, चीज रखकर भूल गये, रास्ता भूल गये, पढ़ा-लिखा भी भूल गये, इष्ट मित्रों को भी भूल गये। और न जाने क्या-क्या भूल जाते हैं। इसी प्रकार यदि शरीर की सुधि-बुधि भी भूल जाय, इसका भान न रहे तो कन्हैया दूर थोड़े ही है। शरीर की सुधि भूलते ही वह सामने है।

मुझे तो रास्ता चलते-चलते कभी-कभी यह ध्यान नहीं रहता मैं कौन हूँ? कहाँ जा रहा हूँ? केवल कुहनी से नीचे-नीचे के हाथों का ध्यान रह जाता है। यह भी न रहेगा। इसी प्रकार यदि तुम्हें भी ध्यान न रहे तो मिलन हुआ-हवाया है। यह हो सकता है। मगर कैसे हो? जब कन्हैया के अनुपम सौन्दर्यमय मुखारविन्द का चिन्तन करते-करते उसमें मन लीन हो जाता है तो यह शरीर रहता नहीं, मन शरीर को भूल जाता है। स्वप्न में जिस प्रकार इसका ध्यान नहीं रहता भूल जाता है ठीक इसी प्रकार श्रीकृष्ण की याद में यह शरीर भूल जाता है।

प्रत्येक प्राणी विषयों के चिन्तन में, उनके संकलन में और उनके भोगने में ही अपनी समस्त आयु समाप्त कर देता है। उसे सचमुच यह पता ही नहीं कि उसे क्या करना था, क्या कर रहा है। इस शरीर से ममत्व इतना है कि कोई रोग हो जाय तो उसी का ध्यान बना रहेगा। मेरे तो न जाने कितने रोग भरे पड़े हैं। आप ही आते हैं और आप ही चले जाते हैं। मैं अपना काम करता हूँ, बस अपना।

तो भैया! भजन तो हर समय होता है केवल उसके स्वरूप में अन्तर है। विषयों का चिन्तन भी भजन ही है। बस इसके स्वरूप को बदलना है। विषयों का चिन्तन न करके श्रीकृष्ण का चिन्तन करो।

(समय सायंकाल लगभग सात बजे के पश्चात्! हित रूप भवन का कक्ष। श्री पूज्यपादजी अपने कमरे में बिस्तर पर प्रसन्न मुद्रा में अधलेटे की स्थिति में विराजे हैं। बता रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— भैया रे! समय का बड़ा मूल्य है। जो लोग इसे नहीं विचारते वह बहुत बड़ी भूल करते हैं। उनका कोटा पूरा नहीं हो सकता। तो समय का सदुपयोग करना सीखो, लोग समय के सदुपयोग का अभिप्राय पूछते हैं। समय के सदुपयोग से अभिप्राय है यह अमूल्य समय व्यर्थ कार्यों में, व्यर्थ की बातों में व्यय न हो। एक-एक मिनिट का मूल्य समझो। व्यर्थ व्यय किया हुआ वह एक मिनिट भी फिर करोड़ों क्या किसी भी कीमत पर नहीं मिल सकता। जो समय सत्कार्यों से हटकर अर्थात् व्यर्थ कार्यों में बीता वह व्यर्थ चला गया और जो सत्कार्यों में बीता वही उचित है।

अब देखना यह है कि सत् और असत् कार्य क्या है। मुख्य बात तो यह है जो समय भगवत् चिन्तन में, उनकी सेवा में, उनके भक्तों की सेवा में, दूसरों की भलाई में, परहित चिन्तन में व्यतीत होता है वह तो सत् कार्य है और उसी का सदुपयोग होता है तथा जो समय इसके विपरीत कार्यों में व्यय होता है वह असत् कार्य है और उसका दुरुपयोग होता है।

प्रतिक्षण अपने जीवन की हर बात पर दृष्टि रखो। तुम्हारा समय व्यर्थ तो नहीं जा रहा है। केवल अपने सुख की चाह में, अपने सुख के साधन में, विषय चिन्तन के भोगने में तो नहीं जा रहा है। यदि नहीं जा रहा है तब तो तुम्हारा मार्ग सही है अर्थात् निरन्तर श्रीकृष्ण मिलन की ओर बढ़ रहे हो।

जीवन वही सफल है जो दूसरों के परहित के लिए है। देखो! तुम्हारे कारण किसी भी प्राणी को कोई भी कष्ट तो नहीं हो रहा। यदि तुमने अपने सुख के लिए चींटी को भी कष्ट दिया तो तुमको श्रीकृष्ण का प्यार नहीं मिल सकता। भैया रे! जब तक एकात्म दर्शन नहीं करोगे—काम बनेगा नहीं। देखो! जो आत्मा तुम्हारे अन्दर है वही उस चींटी के अन्दर भी है।

यह जो आजकल गौ हत्या—गौवध बन्द हो; आन्दोलन चल रहा है इसमें चोटी के महात्मा भाग ले रहे हैं। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि क्या उन्होंने इस बात को भी सोचा है कि वह गौ रक्षा ही क्यों चाहते हैं? मैं कहता हूँ सृष्टि के प्रत्येक प्राणी की रक्षा हो। हाथी से लेकर चींटी तक की, यहाँ तक कि, सूअर तक की भी रक्षा मैं चाहता हूँ।

इस आन्दोलन में घुसकर नारे लगाने वालों से मैं पूछना चाहूँगा, कि तुम रात में मच्छरों से बचने के लिए डी. डी. टी. छिड़क कर लाखों करोड़ों मच्छरों की जान लेते हो, दूसरी ओर गौ रक्षा के नारे लगाते हो। क्या उन मच्छरों में तुम गौ की आत्मा का दर्शन नहीं करते? क्या करूँ भैया! मैं पागल हो गया हूँ या दुनिया पागल हो गई है— कुछ समझ में नहीं आता।

इस समय मुझे बड़ा कौतूहल सा होता है। जगत् पूज्य श्री शंकराचार्य जी महाराज अपने अमूल्य प्राणों की आहुति गौ रक्षा के लिए दे रहे हैं। क्या इस प्रकार गौ रक्षा हो सकेगी? गौ रक्षा तो गौ पालक ही कर सकता है। यदि सब लोग मिलकर सच्चे हृदय से उसे पुकारें और वह न आवे— यह मैं नहीं मानता। मैं तो कहता हूँ एक **सन्त की भावना में वह बल है जो सृष्टि को पलटने की सामर्थ्य रखता है। प्रार्थना में जो सामर्थ्य है वह किसी में** नहीं। मैं तो यही जानता हूँ मेरे भाई।

(सत्संग भवन का कक्ष। सायंकाल साढ़े चार के पश्चात् श्री पूज्यपादजी भक्तों के साथ आध्यात्मिक वार्ता कर रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— भैया रे! बोलना भी एक कला है? हाँ! हाँ बोलना भी एक कला है। जो बोलना जानते हैं वह प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं। तो

बोलना कला कैसे है यह जान लो। **पहली बात वाणी का मौन**। अभिप्राय? बिना आवश्यकता कतई मत बोलो। जीवन निर्वाह के लिये जितना अपेक्षित है उतना ही बोलो। अधिक बोलने से असत् बातें मुह से अवश्य निकलेंगी जो श्रीकृष्ण से दूर ले जाने वाली हैं।

दूसरी बात है मन का नि:संकल्प होना। कोई संकल्प उठे ही नहीं, जो हो रहा है सब ठीक है। वह जो तुम करोगे तब भी होगा, न करोगे तब भी होना है। जब कोई संकल्प नहीं तो विकल्प भी नहीं। संकल्प-विकल्प से खाली मन क्या करेगा? मौन हो जायगा। न कुछ चिन्तन को रहा न बोलने को। बस मन श्रीकृष्ण प्रभु का चिन्तन करेगा जिसका निरन्तर चिन्तन होगा वह दूर कहाँ रहा?

तीसरी बात है नानात्व का त्याग। यह तू है, यह मैं हूँ, यह अपना है, यह पराया है, यह कुत्ता है, यह गाय है, यह पूज्य है, यह अपूज्य है आदि-आदि। इस प्रकार की भावनाओं को त्यागकर सर्वत्र एकात्म दर्शन करो। सब में तुम्हारा कन्हैया बैठा है भैया! यह नामधारी शरीर तो शव है शव! नहीं तो देखलो जब कन्हैया इसको छोड़कर (मृत्यु होने पर) चला जाता है तो शव को छूने पर स्नान करना पड़ता है। शव को फेंक दिया जाता है। तो सब में उन्हीं श्रीकृष्ण का दर्शन करो जिनसे तुम मिलना चाहते हो। नामदेव को तो कुत्ते में भी कन्हैया दीख रहे थे तभी तो उनकी रोटी ले जाने वाले कुत्ते के पीछे घी की कटोरी लेकर दौड़े।

मेरे भाई! देर नहीं लगती उसे आने में। मैं पूछता हूँ तुमने उसे क्या समझा है? क्या वह एकदेशीय है? नहीं, क्या वह एक कालीय है? नहीं, क्या वह किसी धातु की प्रतिमा मात्र है? नहीं। मेरे भाइयो वह तो कण-कण में व्याप्त है। तुम जब चाहो, जहाँ चाहो, जिस समय चाहो उसे देख सकते हो। यदि किसी उच्च व्यक्ति से मिलना चाहो तो उससे पहले मिलने का समय लेना पड़ता है मगर मेरे कन्हैया के साथ इस प्रकार का कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। यदि तुम्हारी एकात्म भावना है तो मेरा कन्हैया तुम्हारे सामने हर समय खड़ा है।

सन्तोष और सेवा— यह दो गुण ऐसे हैं भैया! जो कन्हैया को बाँध लेते हैं। जो प्रभु कृपा से मिल गया उसको परम सन्तोष के साथ स्वीकार करो। दुःख को दुःख मत समझो। वह तुम्हारे प्रियतम का भेजा प्रसाद है। अरे तुम जिसे प्यार करते हो उसकी भेजी चीज को पाकर दुःख मानते हो। यह कैसा तुम्हारा प्यार?

श्रीकृष्ण प्रभु स्वयं कह रहे हैं **जिस पर मैं कृपा करता हूँ, जिसे मैं प्यार करता हूँ उसका सर्वस्व हर लेता हूँ। उसका अपना कहने को उसके पास कुछ नहीं छोड़ता। जब उसका कुछ नहीं रहता तो वह निराश, दुःखी असहाय होकर मेरी ओर दौड़ता है। तब मैं उसे छाती से लगा लेता हूँ,** अहा तुम ऐसे उदार हो कन्हैया! **देखा भैया कितना सस्ता सौदा है?**

सेवा! सेवा तो प्रभु को प्राप्त करने का अचूक अस्त्र है। सेवा के स्वरूप को समझो। सेवा में मरना पड़ता है। डरो मत, यह मरना, मरना नहीं। सिर्फ 'मैं' मर जाता है जो तुमको कन्हैया से मिलने नहीं दे रहा है। सेवा में अपना कुछ नहीं रहता। श्रीवास के घर पर जिस समय महाप्रभु श्री चैतन्यदेव कीर्तन में तल्लीन थे उसी समय श्रीवास का एकमात्र पुत्र मर जाता है। श्रीवास को पता लगता है। वह अपनी पत्नी से भी रोने को बिलकुल मना कर देता है। यदि शोर हुआ तो मैं भी प्राण दे दूँगा। शोर से प्रभु को विघ्न होगा। देखा यह है सन्तों की स्थिति।

कभी तुमने सोचा कैसी होगी वह अवस्था? जहाँ अपने सेव्य के सुख में विघ्न हो वहाँ अपने एकमात्र पुत्र की भी परवाह नहीं। तो मेरे भाई! सेवा तो कुछ और ही है। सेवा यह नहीं कि कुछ फल की टोकरी लाकर महाराज के सिर पर पटक दी, कोई अँगोछा आदि लाकर डाल दिया। यह सेवा का स्वरूप नहीं है।

श्रीकृष्ण से मिलना चाहते हो तो भावना करो उनसे मिलने की। भैया! वह दूर नहीं यदि तुम्हारे हृदय में श्रीकृष्ण विषयक भावना की चेष्टाऐं हैं, और श्रीकृष्ण विषयक क्रियाएँ हैं तो क्या वह तुमसे दूर रह सकते हैं? अरे नहीं!

तुम किसी को हर समय याद करो और वह तुम्हें याद न करे, तुम प्यार करो वह न करे, यह हो ही नहीं सकता। आखिर कब तक? एक न एक दिन उसे सामने आना ही पड़ेगा। यदि डटे रहे तो इन्हीं आँखों से इसी जीवन में कन्हैया को अवश्य देखोगे यह मेरा दावा है।

(स्थान हितरूप भवन का कक्ष। श्री पूज्यपादजी अपने टाट के गद्दे पर विराजे हैं। समय सायंकाल लगभग तीन चार बजे का है। एक बाल-शिक्षिका दर्शनार्थ आई है। उन्हीं से वार्ता कर रहे हैं। बता रहे हैं।)

श्री पूज्यपादजी— शिक्षक का काम साधारण काम नहीं। देश के निर्माण का, उसके सुन्दर भविष्य का निर्माता तो वास्तव में शिक्षक ही है। शिक्षक को अपनी पूरी जिम्मेदारी समझ कर कार्य करना है। भावी सन्तान का निर्माण शिक्षक को करना है। सफल शिक्षक वही है जो विद्यार्थी के संस्कारों को बदल दे। पढ़ने में रुचि पैदा कर दे। केवल कुछ किताबों को डण्डे के बल पर रटा देना ही पर्याप्त नहीं। वह स्थाई शिक्षा नहीं। संस्कार बदलना ही वास्तव में शिक्षा है।

आज कल तो यह हो रहा है भैया कि भय से छात्र को भयभीत कर उसको पढ़ने में अरुचि पैदा कर देते हैं। देखो, किस प्रकार छात्र में पाठ्य विषय के अन्दर रुचि पैदा की जा सकती है। उसे भयभीत मत करो, प्यार दो, आत्मीयता दो, छात्र तुमको अपना समझे।

काम का जहाँ तक प्रश्न है उसे ईमानदारी से करो। अपनी उपस्थिति का समय गलत मत लिखो, बच्चों की उपस्थिति गलत मत भरो। यदि तुम लेट पहुँचते हो तो सही समय डालो, गलत मत डालो, असत् मत डालो। असत् से आत्मा का पतन होता है। भयभीत मत हो शिक्षक का भय से क्या मतलब? शिक्षक वही बन सकता है जो स्वयं शिक्षित है, जो सही मार्ग पर है जो चरित्रवान् है, जिसका स्वयं का जीवन आदर्श है। मेरे पास तो यही है भैया! मिलने आए हो तो कुछ लेकर जाओ। खाली मिलना, मिलना नहीं—समय नष्ट करना है।

(समय सायं साढ़े चार बजे से ऊपर हो चुका है। यह समय पूज्यपादजी का सत्संग भवन में जाने का है। यदि साढ़े चार बजे से एक मिनिट भी ऊपर हो जाता है तो फिर नहीं जाते। इस समय कुछ अधिक प्रसन्न, भाव विभोर हैं। दो एक भक्तजन पास ही बैठे हैं। उन्हीं से वार्ता हो रही है।)

श्री पूज्यपादजी— आज सत्संग भवन नहीं गया, बैठा रह गया। वहाँ नहीं गया तो यहाँ बरसा दिया। मुझे तो बरसाना है बरसाना। भैया रे! देने लेने को मेरे पास कुछ नहीं। मैं तो उस कन्हैया की नौकरी करता हूँ। अब चाहता हूँ बोलूँ नहीं, देखूँ नहीं पर वह नहीं मानता। उसके सामने मैं तो हार गया हूँ, वह जीत गया है समझे, मैं हार गया हूँ। (पूज्यपादजी कीर्तन में मग्न हो रहे हैं।)

बड़े भाग पाइय सत्संगा। बिनहि प्रयास होई भव भंगा॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

बस अब अधिक नहीं ज्यादा नशा चढ़ जायगा। अधिक नशा चढ़ना मेरे लिए ठीक नहीं। नाम लेने की विधि है भैया तब नशा चढ़ता है। नाम का प्रभाव क्यों नहीं होता? लोग नाम लेते हैं वह बाहर निकल जाता है। यदि सही नाम लिया जाय तो वह भीतर उतर जाता है। तब झाल उठती है और बस!

(समय रात्रि लगभग साढ़े सात बजे का है। श्री पूज्यपादजी शौचादि से निपटकर वहीं अपने कमरे में गद्दे पर बैठे हैं। पास ही पूज्य माँ भी बैठी हैं।)

श्री पूज्यपादजी— इस ब्रह्माण्ड में एक झरना है जिसकी दो धाराएँ हैं। एक ऊपर को जाती है उसका नाम मन्दाकिनी है। जो नीचे को जाती है अतल को, उसका नाम गंगा है। मन्दाकिनी जब नाभिकुण्ड से हिलोर लेकर ऊपर चढ़ती है तो हृदय भर जाता है, हिलोर लेने लगता है तब आँखों पर चश्मा (अनुराग का चश्मा, यह चश्मा नहीं) चढ़ा कर कन्हैया को देखा जाता है। तभी वह दीखता है।

• हरि ओम तत्सत् •

"देखौ जामें कायै"

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता अ. 4 श्लो. 8)

श्री गीताजी में की हुई उपर्युक्त प्रतिज्ञा के अनुसार अजन्मा परात्पर प्रभु, दुष्टों का नाश करने और साधु जनों का उद्धार व रक्षा करने के लिए समय-समय पर किसी न किसी रूप में भूतल पर अवतरित होते हैं। कभी श्रीराम रूप में क्रोध का नाटक करके रावणादि राक्षसों का नाश करते हैं तो कभी श्रीकृष्ण रूप में खेल खेल में कंसादि दुष्टों का उद्धार करते हैं और अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। तो कभी महाप्रभु श्री चैतन्य देव के रूप में अवतरित होकर संकीर्तन की ध्वनि से दुष्टों का हृदय परिवर्तन करके उन्हें छाती से लगाकर उनका उद्धार करते हैं। कभी-कभी वह स्वयं न आकर अपने परिवारों द्वारा इस कार्य को कराते हैं। उन्हें भूतल पर भेजते हैं। महात्मा गांधी, श्री रामकृष्ण परमहंसदेव आदि आदि ऐसे ही प्रभु के परिकरों के रूप में भूतल पर आये जिन्होंने सत्य, अहिंसा की अमृत वाणी सुना-सुनाकर, दुष्टों का हृदय परिवर्तन कर उनका उद्धार कर साधुओं की रक्षा की।

इसी प्रकार प्रत्येक युग में समय-समय पर प्रभु अनेकों वेश धारण करके कभी वह स्वयं आते हैं तो कभी अपने परिकरों को भेजते हैं सन्तों के रूप में। ऐसे ही सन्तों में मेरे गुरुदेव भी हैं जिन्हें प्रभु ने अपना कार्य करने भूतल पर भेजा है। श्री गुरुदेव का कहना है कि **"मेरे कन्हैया ने मुझे ऐसे दिन भूतल पर भेजा है जिस दिन निर्जल रहने का दिन है।" इसका मतलब है यहाँ का कुछ ग्राह्य नहीं है। यहाँ तक कि जल भी ग्रहण योग्य नहीं है।**

श्री गुरुदेव का जन्म आज से 63 वर्ष पूर्व शुक्ला एकादशी को वशिष्ठ गोत्रीय चतुर्वेदी परिवार में हुआ था। आप बचपन से अच्छे संस्कारी हैं। प्रत्येक व्यक्ति कुछ संस्कार लेकर जन्मता है अच्छे अथवा बुरे। जो ठोस संस्कारी होते हैं उनके संस्कार बदलते नहीं। कमजोर संस्कारों पर संगति का प्रभाव पड़ जाता है। अच्छे ठोस संस्कारी भूतल पर भगवत् कार्य के लिए भगवान् द्वारा ही भेजे जाते हैं। अतः इस मायावी जगत् की आकर्षित वस्तुएँ इन पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकतीं। इनका जीवन हर हाल में सम (अपरिवर्तित) ही रहता है।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" श्री गुरुदेव के जीवन ने इस बात को चरितार्थ कर दिया है। आपने ही अपने श्री मुख से बताया कि उनकी माँ का कहना था कि हमने तुम्हारे बचपन को ही नहीं देखा अर्थात् बाल्यजीवन अन्य बालकों जैसा चापल्य युक्त एवं अज्ञानपूर्ण नहीं था। प्रारम्भ से ही गम्भीर एवम् विचार पूर्ण रहा है। आप सदैव ही कुछ खोज करने जैसी अवस्था में तत्पर रहे। वह खोज थी—सत्य की खोज!

जिन्हें सत्य की चाह होती है वह इस असत्य जगत् की अनित्य वस्तुओं में नहीं रमते। ऐसे व्यक्ति खाने-पीने, खेलने आदि में व्यर्थ जीवन नष्ट नहीं करते। इन सब में आपकी रुचि प्रारम्भ से ही नहीं थी। आपके खेल भी आम बालकों जैसे नहीं होते थे। उनमें भी कुछ भाव रहता था, रहस्य रहता था। सदा शुद्ध अन्न खाने की भावना आपकी स्वाभाविक थी जिससे जीवन का सच्चा निर्माण होता है। एक घटना से आपकी पूज्य माँ को आपकी इस भावना का पता लगा।

एक बार कहीं से आया हुआ पकवान आपको खाने को पूज्य माँ के द्वारा दिया गया। माँ के आदेशानुसार आपने उसे खा तो लिया, परन्तु इसे खाते ही आपका जी मिचलाने लगा और थोड़ी देर पश्चात् वमन (उल्टी) हो गयी। उस समय आपकी आयु लगभग आठ वर्ष की रही होगी। आपने माँ से पूछा तो विदित हुआ कि यह पकवान कहीं से आया हुआ था। आपने उसी समय

माँ से कह दिया—"माँ ऐसा कुछ खाने को मुझे मत दिया करो।" वह भावना आपकी अभी भी साकार है। कहीं से आयी हुई, अथवा किसी के द्वारा लाई हुई अपवित्र वस्तु आप ग्रहण नहीं करते। अपवित्रता से मुख्य अभिप्राय है जो पैसा अन्याय से कमाया हुआ होता है, रिश्वत आदि का होता है उससे खरीदी हुई वस्तु अथवा अन्न अपवित्र ही होता है।

ऐसी विभूतियाँ संसार में कुछ करने के लिए अवतरित होती हैं। वे भटके हुए निराश मानवों का मार्गदर्शन करने आते हैं। वे इस संसार की रंग-रेलियों में रमण नहीं करते। उन्हीं विभूतियों में से एक आप भी हैं जिन्होंने अपने अब तक के समस्त जीवन को परहित की बलिवेदी पर बलिदान कर सदैव दूसरों को सुख पहुँचाने की चेष्टा की है। परदुःख को दूर करना ही आपका स्वभाव है। परदुःख में दुःखी होकर अत्यन्त द्रवित विह्वल हो जाते हैं और उसको किसी भी प्रकार सुखी देखने को व्यग्र हो उठते हैं। इसी भावना ने आपको आज संसार के सामने एक डॉक्टर के रूप में ला दिया है।

आप भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही पथ के डॉक्टर है। आपका कहना है कि रोगी मनुष्य भजन नहीं कर सकता। उसे अपने रोग की ही चिन्ता लगी रहती है, पीड़ादि में मन लगा रहता है। वह प्रभु का चिन्तन कैसे कर सकता है? अतः आप होम्योपैथिक डॉक्टर का अभिनय कर रहे हैं। आपके द्वारा हजारों रोगियों को बिना कुछ लिए मुफ्त दवा मिलती है।

बिना किसी कठिनाई के औषधि समान रूप से सभी के लिए सहज सुलभ है। साथ ही गरीबों को पथ्य दूध फलादि भी दिया जाता है। आध्यात्मिक पथ में आप परम सन्त डॉक्टर के रूप में अपनी अनुभव पूर्ण अमृत वाणी सुनाकर भटके हुए दुःखीजनों का मार्गदर्शन विगत कई वर्षों से कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक आपके समक्ष उसी वाणी में बरसाये गये "मंगलीय सुमनों" का पुंज है। श्री गुरुदेव गृहस्थ होते हुए भी संन्यासी हैं। आपका कहना है—"वेश बनाना, कपड़े रंग लेना संन्यास नहीं, संन्यास है आसक्ति

का ममता का त्याग।" प्रत्येक भोग सहज सुलभ होने पर भी उन्हें भोगने की इच्छा न हो—वास्तव में संन्यास वह है। किसी में भी मन का लगाव न हो।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी।

उपर्युक्त रामायण की चौपाई पर विचार करते हैं तो विदित होता है कि श्री गुरुदेव का जीवन ही रामायण है। आपके जीवन के प्रत्येक पृष्ठ पर एक-एक "मानस" है जो घोर अन्धकार में भटकते हुए समस्त दुःखीजनों को अपने कर कमलों का सम्बल देकर परम प्रकाश में लाकर खड़ा करने में समर्थ है। आपका जीवन रामायण की ही भाँति भागवत भी है जहाँ वंशीधारी गोपाल नित्य विहार कर रहे हैं। भक्तमाल के समस्त भक्तों का जीवन आप में साकार रूप में एक ही स्थान पर प्राप्य है।

इतना सब जान लेने पर जिज्ञासु जनों को अवश्य ही कौतुहल होगा कि श्री गुरुदेव को इस विशाल ऊँचे टीले पर चढ़ाने वाली ऐसी कौन सी साधना थी, कौन सी बूटी थी जिसके परिणामस्वरूप वे हमारे सामने इस रूप में आये। वह था सत्य, एकमात्र सत्य जिसे आप प्रस्तुत पुस्तक में आगे देखेंगे। सत्य की साधना ही एकमात्र साधन है और कुछ नहीं। युवावस्था के द्वार पर खड़ा प्रत्येक प्राणी इस असत्य, अनित्य धोखा देने वाली सुन्दरता का पीछा करता है। इस मिटने वाले सौन्दर्य पर अपने चरित्र को खो देता है, वृद्धता को आमन्त्रित करता है। वहाँ इन सबके विपरीत श्री गुरुदेव सत्य की प्रतीक्षा कर रहे थे, उस सत्य को खोज रहे थे। इसी उद्देश्य से सदैव सत्पुरुषों के पास जाना, उनकी वार्ता सुनना, उन पर मनन करना आपका काम था।

आपके जीवन निर्माण में आपके पूज्यचरण माता-पिता दोनों का ही बहुत अधिक योग रहा। माता के द्वारा सत्पुरुषों की कहानियाँ सुनते थे जिनका प्रभाव आपको उदासीनता की ओर ले जाने में सहायक हुआ। आप माँ से कहते "माँ! मैं भी जंगल में जाकर रहने का इच्छुक हूँ।" बरबस समझा बुझाकर आपको रोका जाता था। पिताजी के द्वारा सन्तजनों का संग तथा उनका दर्शन समय-समय पर आपको मिलता रहता था।

पाठ-पूजा, भजनादि में आपकी प्रारम्भ से ही अभिरुचि रही है। मानस तथा गीताजी का पाठ आपका नित्य नियम था। इसी अवसर पर श्री गीताजी के दूसरे अध्याय के सोलहवें श्लोक ने आपको तत्परता से सत्य की खोज में लगा दिया। वह श्लोक निम्नलिखित है—

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

जो है असत् रहता नहीं, सत् का न किन्तु अभाव है।
लखि अन्त इनका ज्ञानियों ने यों किया ठहराव है॥

"अर्थात् असत्य की कोई सत्ता नहीं, सत्य का कहीं कोई अभाव नहीं।" इससे पूर्व आपको भी कई बार हम सभी की भाँति निराशा भी हुई। जिन्हें प्रभु भूतल पर अपना कार्य करने दुखियों का दुःख हरने भेजते हैं उन्हें भला क्या यह माया भुला सकती है? अपने जाल में फँसा सकती है, कदापि नहीं। आपने प्रयास नहीं छोड़ा और निरन्तर सत्य की खोज में लगे रहे।

मानस की एक चौपाई। "काक होहिं पिक बकहु मराला" से आपको प्रेरणा मिली। इस संसार में असम्भव कुछ नहीं फिर निराशा कैसी? सन्देह क्यों? अतः मानस एवं गीता दोनों ही आपके पथ-प्रदर्शक रहे। जिन्हें आज का मानव, समाज, केवल कवियों की कल्पना अथवा इतिहास की कहानी मात्र कहकर उपेक्षा करता है।

जिस मानस में गोते लगाकर बगुला भी हंस हो जाता है तो क्या वह कोई साधारण मानस है? नहीं। प्रश्न उठता है कि कौनसा है वह सरोवर, जहाँ कौआ कोयल और बगुला हंस बन जाता है? वह है सत्संग सरोवर, सत्संग ही एकमात्र वह सरोवर है जिसमें स्नान करने पर सत्य का दर्शन होता है।

यह सब समझ लेने पर आप और भी लगन से सत्पुरुषों की खोज में लग गये। सन्त दर्शन, सन्त सेवा श्री गुरुदेव के जीवन का मुख्य उद्देश्य रहा है। आपका कहना है कि जिस प्रकार आजकल लोग चाय के आदी (व्यसनी)

हैं उसी प्रकार मैं सन्त-दर्शनों का व्यसनी हूँ। लोग चाय के बिना नहीं रह सकते और मैं सन्त-दर्शन तथा उनकी सेवा के बिना नहीं रह सकता। किसी के जीवन का कुछ व्यसन है तो किसी का कुछ। मेरे जीवन का व्यसन सन्त-मिलन है। इसके लिये आप दूर-दूर तक जाते रहे हैं। अभी कुछ दिन पूर्व ही वृन्दावन से पंजाब की ओर लुधियाना में सन्त दर्शनार्थ ही गये थे। इसी प्रकार विदित होने पर अन्यत्र भी जाते रहते हैं।

सत्य-दर्शन की लालसा आपको गौतम बुद्ध के समान दिनों दिन उदासीनता की ओर ले जा रही थी। अतः आप विवाह करने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु माता-पिता के संतोष एवं सुख के लिए अपनी भावना को दबा कर अपनी इच्छा के विरुद्ध आपने इस दाम्पत्य बन्धन को स्वीकार किया। इससे आपकी मातृ-पितृ भक्ति का भी पता चलता है। इस गृहस्थ जीवन में बँधने में आपकी एक माँग अवश्य थी कि आपकी जीवन संगिनी ऐसी हो जो आपकी यात्रा में पूर्णरूपेण सहयोगी हो किसी भी प्रकार से बाधक न हो।

"जो इच्छा करिहहु मन माहीं।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाही॥"

ऐसा ही आपके लिए हुआ आपकी इच्छनुकूल ही आपका जीवन साथी मिल गया।

उमा राम चरण रति जिनही। विषय भोग वश करहिं कि तिनहीं।

यशोधरा की वेदना भरी आँखें, राहुल का वात्सल्यपूर्ण कमल मुख, महात्मा गौतम को लुभा न सके। माता की ममता राम को भुलावा न दे सकी। इसी भाँति सर्वगुण सम्पन्न पत्नी, सम्पन्न परिवार, माता-पिता का दुलार सब मिल श्रीगुरुदेव को लुभाने में समर्थ न हो सके। आप निरन्तर सत्य की खोज में लगे रहते, अपने प्रमुख उद्देश्य के होते हुए भी सब कुछ करते, गृहस्थ धर्म का समुचित पालन करते रहे। इसी साधना काल में आपने दो पुत्र रत्नों को जन्म दिया। परन्तु मन में एक ही धुन थी "सत्य को, उस परम तत्त्व को

प्राप्त करने की लालसा।" शरीर से गृहस्थ धर्म का पालन और मन से सत्य प्राप्त करने की लालसा, बस यही दोनों आपके प्रमुख कार्य रहे।

इसी अभिप्राय से आपका सद्ग्रन्थों का अध्ययन तथा सन्त-मिलन बराबर चलता रहा। श्री गुरुदेव रेलवे विभाग में कार्य करते हुए भी उसके वातावरण से प्रभावित न हुए। आप इसको "चोर मेहकमा" के नाम से पुकारते हैं। अतः वहाँ आपका मन कार्य करने में नहीं लगा। जहाँ सत्य का अपमान पग-पग पर होता था वहाँ आप अधिक समय तक अपने को न टिका सके। अतः चौबीस घण्टे का नोटिस देकर वहाँ त्याग पत्र दे दिया और सर्विस से मुक्ति प्राप्त करली। तत्पश्चात् श्री वृन्दावनधाम में रहकर सत्य प्राप्त करने का निश्चय कर लिया।

"मृगनयनी के नयन सर को अस लागि न जाहिं"

महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी के इस प्रश्न का उत्तर श्री गुरुदेव ने अपने आचरण से समाज के सामने रखा। आपने दिखाया कि जो सत्य का कवच धारण कर लेता है उस पर इस मृगनयनी माया के तीखे बाण अपना प्रभाव डालने में समर्थ नहीं हो सकते। सत्य में ही वह शक्ति है जिसके समक्ष माया भी घुटने टेक देती है। समस्त मायावी प्रलोभन टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं।

सत्य की महान् शक्ति का प्रभाव सुनकर अवश्य ही पाठकों को जिज्ञासा होगी। आखिर वह सत्य क्या है? सत्य स्वयं परात्पर प्रभु श्रीकृष्ण ही हैं। प्रभु का नाम ही सत्य रूपी कवच है जिसे प्रभु-प्यार का चसका लग जाता है उसे इस मायावी जगत् की कोई वस्तु अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। जो आँखें श्याम रंग में रंग जाती हैं उस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता। प्रभु ने स्वयं ही अपने श्री मुख से बताया है। "जिन्हें मैं अपनाना चाहता हूँ उसके पास अपना कहने को कुछ नहीं छोड़ता हूँ।" प्रभु उसे तपा कर अपने योग्य बना ही लेते हैं फिर जिनसे कुछ अपना कार्य कराना है उनका जीवन तो दूसरों का मार्गदर्शन करने योग्य होना ही है। उनके जीवन का प्रत्येक व्यापार जीव को

प्रभु की ओर ले जाने वाला होता है। प्रभु पग-पग पर उसे परीक्षा की भट्टी में तपा-तपाकर, निखारकर, चमकाकर संसार के सामने लाते हैं जिसके प्रकाश में अँधेरे में टकराने वाले जीव अपना मार्ग देख सकें।

श्री गुरुदेव ने सत्य-दर्शन की लालसा से जब श्री वृन्दावन धाम में रहने का निश्चय कर लिया तो उनकी परीक्षा भी प्रभु द्वारा होनी प्रारम्भ हो गई। आँधी में वृक्ष हिला करते हैं, पर्वत नहीं। जिनके जीवन का कुछ लक्ष्य होता है उन्हें कोई रोक नहीं सकता। संसार के आँधी तूफानों के थपेड़े टकराकर चूर हो जाते हैं, शान्त हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार आपके जीवन में भी विपत्तियों के अपार तूफान आये। आत्मीयजन शत्रुता करने लगे। अनेक प्रकार से अकारण ही अपमानित करना, कष्ट पहुँचाना उन लोगों का काम हो गया। परन्तु "परहित वस जिनके मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥" उनकी दृष्टि में पापी और पुण्यात्मा समान हो जाते हैं। वह सदैव ही प्रभु से प्राणीमात्र की भलाई, सुख तथा कल्याण की कामना करते रहते हैं। प्रतिशोध की भावना उनमें नहीं होती। उन्हें तो अपना काम करना है जिसके लिए वह इस भूतल पर आये हैं। बस उन्हें एक ही धुन रहती है जीव का कल्याण कैसे हो?

श्री वृन्दावन धाम में वास करके अब आपके समक्ष एक ही धुन थी वह श्री सत्य का साक्षात् दर्शन। अतः आप पूरी लगन से इस ओर बढ़ने लगे। सुख-दुःख, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा आदि के पचड़े में पड़ना आपका ध्येय न था। सन्तों की खोज, उनकी सेवा, उनसे कुछ प्राप्त करना, उस पर मनन करना फिर उसे क्रियान्वित करना आपका प्रमुख कार्य था। सद्ग्रन्थों द्वारा निर्देशित सच्चे पथ-प्रदर्शक को प्राप्त करके सत्य के दर्शन करने की लालसा में ही आपका सारा समय व्यतीत होता था। आपका सारा जीवन ही उस समय साधना की साक्षात् मूर्ति हो गया था। साधनाकाल में भोगों से उपरामता हो गई थी। केवल एक चाह थी कि कोई अच्छा पथ-प्रदर्शक मिले जो मार्ग दर्शन करा दे। गद्दी में आपका विश्वास नहीं था अतः यों ही

किसी महन्त को गुरु बना लेना आपको पसन्द नहीं था। 'जहाँ चाह—तहाँ राह'।

आपकी कठिन तपश्चर्या के समक्ष; हठ के आगे प्रभु हार गये और द्रवित हो गये। एक बार मार्गशीर्ष माह में ध्यानावस्था में दर्शन देकर स्वयं श्रीकृष्ण प्रभु ने ही अपने श्रीमुख की वाणी से आपको उपदेशामृत का पान कराया और आदेश दिया "तुम मेरे प्रति सखा भाव रखो। तुम तो मेरे तोष नाम के सखा हो। तुम स्वामी भाव नहीं सखा भाव रखो।" इससे पूर्व आपका श्री प्रभु के प्रति स्वामी भाव था।

ध्यान में ही श्री प्रभु ने आपको श्री गीता के अठारहवें अध्याय के पैसठवें श्लोक का उपदेश दिया कि इस प्रकार मेरी पूजा कर और मेरी शरण में आजा। हृदय में जिसके लिए प्यार होता है उसे पाने के लिए प्राण छटपटाने लगते हैं। हृदय व्याकुल हो उठता है, आँखें आतुर हो जाती हैं। "कहाँ तुम्हें पाऊँ? कैसे देखूँ? क्या करूँ?" इसके सिवा कुछ सूझता ही नहीं। इस छटपटाहट में यदि श्री प्रभु की ओर से कुछ सन्देश मिल जाय, कुछ आश्वासन प्राप्त हो जाय तब तो कहना ही क्या।

प्यार आश्वासन की भी अपेक्षा नहीं रखता। वह फटकार में भी अपने प्रियतम के दुलार को देखता है। यहाँ तक कि तिरस्कार में भी प्यार का अनुभव करता है। ज्यों-ज्यों प्रियतम सताता है प्रेमी का प्यार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। नवीन-नवीन प्रिय-मिलन का भाव जागृत होता है—

दोहा- चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख॥

—दोहावली 281

श्री गुरुदेव को जब से ध्यान दर्शन हुआ, तब से आपकी आकुलता और बढ़ गई। अब आप उस त्रिभुवन मोहन की साँवरी सूरत को देखने को अति ही व्याकुल हो उठे। न रात का ध्यान न दिन का पता। न शरीर की सुधि न संसार की याद। अब तो बस यही रह गया "कन्हैया तुम कहाँ हो? कैसे

मिलोगे? कौन बताये तुम्हारे घर का मार्ग"? इसी धुन में, प्रभु की याद में आप रात-रात भर रोते रहते। यमुना किनारे जंगलों में, वंशीवट, कभी कहीं, कभी कहीं, भाग जाते। श्री माँ एवं आपके ज्येष्ठ पुत्र आपको ढूँढ-ढूँढ कर घर को लाते। खाने को कहा जाता तो आप गला फाड़-फाड़ कर रोते। जब धैर्य का बाँध टूट जाता है तब लाज भाग जाती है और समाज की सुध-बुध भूल जाती है। मर्यादा अपना किनारा कर जाती है।

प्रभु अपने जन की समय-समय पर परीक्षा लेते रहते हैं। मित्र शत्रु हो जाते हैं, अपने पराये बन जाते हैं। संसारी जन उन्हें प्रभु की ओर जाता देख भुलावे में डाल देते हैं। जैसे "जिमि कपिलहि घालहि हरहाई"। श्री गुरुदेव के साथ भी यही सब करतब होने लगे। कुछ लोग इनकी दशा देखकर चिढ़ने लगे। कुछ केवल अपना मनोरंजन करने की भावना को लेकर अवसर विचारने लगे। अवसर मिलते ही एक बार कुछ व्यक्ति आपको सन्त दर्शन कराने का बहाना बनाकर एक रात्रि में वेश्या के यहाँ ले गये। जब आपको स्थिति का पता लगा तो आप किसी प्रकार बचकर वहाँ से भाग आये।

जहाँ श्री प्रभु अपने जन को परीक्षा की भट्टी में डालते हैं वहाँ रक्षा भी स्वयं ही करते हैं। वह अपने जन का पतन नहीं होने देते। उसके द्वारा साधकों का मार्गदर्शन कराते हैं संसार से उपरामता कराने के लिए। संसारी जनों का सच्चा स्वरूप दिखाने के लिए ही प्रभु इस प्रकार लीला करते हैं। प्रभु दिखाते हैं कि इन रंगे सियारों द्वारा किस प्रकार भोले साधकों को गड्ढे में डाला जा सकता है।

श्री गुरुदेव के साथ हुई उपर्युक्त घटना ने संसार का वास्तविक स्वरूप सामने रख दिया। अब आप और भी अधिक तत्परता से पथ-प्रदर्शक की खोज में लग गये। यह पहले ही बताया जा चुका है कि गद्दी में आपका विश्वास नहीं था। किसी की जीवनी पढ़कर ही आप मान लेने वालों में से नहीं थे। आपका कहना है कि अन्तरात्मा जिसका वरण करे, हृदय जहाँ स्वयं ही झुक जाय, वहीं से कुछ प्राप्त हो सकता है।

अपने साथ हुई उपरोक्त घटना के सम्बन्ध में आपका कहना है कि माँ शब्द में वह शक्ति है जहाँ कालिमा का निशान नहीं रहता। नारी हृदय वात्सल्य से भर जाता है और मातृभाव जागृत हो जाता है। पुरुष हृदय की काम वासना जल जाती है। वह साक्षात् जगदम्बा के दर्शन उसमें करने लगता है।

श्री गुरुदेव पथ-प्रदर्शक का लक्ष्य लेकर सन्त जीवनियों का अध्ययन करते रहे। अच्छे-अच्छे सन्तों की जीवनी आपने पढ़ी पर हृदय पर प्रभाव न डाल सकी। प्रभु कृपा न जाने कब किस रूप में हो जाती है इसे कोई कृपा पात्र ही अनुभव करता है। इसी बीच आपको परम सिद्ध सन्त साक्षात् भगवत् स्वरूप भगवान् परमहंस श्री रामकृष्ण देव जी की जीवनी पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जिन्होंने साम्राज्ञी से सिंहासन पर बैठाकर अपनी रूप-लावण्ययुक्त षोडश वर्षीय युवती पत्नी को साक्षात् जगदम्बा मानकर पूजा की। तत्पश्चात् परमहंस देव जी ने जीवन भर उनमें मातृभाव ही रखा और उन्हें माँ के रूप में ही अंगीकार किया। इस अनोखी घटना से आपका हृदय स्वतः ही ऐसे महान् सन्त के चरणों में झुक गया। हृदय से उन्हें वरण कर लिया। अब लालसा केवल उनके दर्शन की थी। परन्तु तल्लीनता से खोजने पर यह विदित हुआ कि यह अमर विभूति शरीर से भूतल पर नहीं हैं। तब आपने निश्चय किया कि उन्हीं से दीक्षित, उन्हीं के कृपापात्र किसी ऐसे सन्त से दीक्षित होना है जिसने बाबा परमहंस जी के दर्शन किये हों। अतः खोज निरन्तर चलती रही। "जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।"

प्रेमी जब अपने प्रियतम से मिलन की साध सँजोकर चलता है तो उसकी दिनों दिन मिलन लालसा तीव्रतर होती जाती है। व्याकुल होता है, तड़पता है, परन्तु देखता है उसका प्रियतम मौन है। इधर यह हाल होता है उधर अपने सगे पराये हो जाते हैं। पद-पद पर अपमान होता है। लोग तिरस्कार करते हैं, व्यंग करते हैं। प्यासा सब कुछ सहता है परन्तु देखता है प्रियतम मौन हैं। तब उसे अपने प्रियतम पर क्रोध आता है। प्रणय कोप करता

है, मान करता है और फिर भी देखता है उसका प्रियतम मौन है। प्रियतम का यह अदम्य मौन उनके अस्तित्व पर प्रेमी के मन में सन्देह उत्पन्न कर देता है, विश्वास खोने सा लगता है, सब्र का पुल टूट जाता है और वह पुनः जगत् की ही ओर दौड़ता है। आपके जीवन में भी वह अवसर आया। आपको प्रियतम के मौन ने अधीर कर दिया। भजन-पाठ पूजादि में अरुचि हो गई। एक बार यह निर्णय कर लिया, कि **"वस्तुतः भगवान् हैं नहीं यह मात्र कल्पना है।"**

परन्तु वह नटखट खिलाड़ी ऐसे पीछा छोड़ने वाले तो नहीं। यह तो स्वजनों के साथ उनका लीला विहार करना है। कभी छिप कर तड़पाना, कभी सामने आकर ललचाना यही तो उनका काम है। जब प्रियतम देखते हैं मेरा प्यारा मुझसे रूठ गया है तो मनाये बिना भी तो उन्हें चैन नहीं पड़ता। नरसी जी को खूब खिझा लिया, तड़पा लिया, अपमानित करा लिया। जब देखा मेरा प्यारा नरसी सब सह रहा है अब मुझसे रूठ गया तो झट आ पहुँचे साँवलशाह अपने भक्त को दर्शन देने और उसे मनाने के लिए श्री गुरुदेव के साथ भी यही हुआ। जब देखा मेरा प्यारा मुझसे रूठ गया तो उसे मनाने की युक्ति सोची और पुनः मानस-गीता पाठ में रुचि उत्पन्न करदी। जिस गीता एवं रामायण का वर्षों पाठ किया वही फिर सन्मुख थी। पर प्रभु की कृपा न जाने कब और किस रूप में भक्त पर हो जाय यह कोई नहीं जानता। यकायक गीता के एक श्लोक एवं मानस की एक चौपाई ने पुनः श्री गुरुदेव की धूमिल हुई पूर्व साधना को—प्रभु मिलन की साध्य को जाग्रत कर दिया। (श्लोक एवं चौपाई को पीछे दिया जा चुका है)

सत्य का अभाव नहीं तो उसका मिलना अवश्यम्भावी है। जो चीज है वह कभी न कभी, कहीं न कहीं एक न एक दिन अवश्य ही प्राप्त होगी। अतः आप प्रभु प्रेरणा से पुनः तत्परता से सत्य की खोज में लग गये।

प्रियतम के आगमन में विलम्ब होता देख प्रेमी अधीर हो उठता है प्रतीक्षा की घड़ियाँ भार हो जाती हैं। उस व्याकुलता में ही वह प्रिय की प्रतिज्ञा को भूल जाता है। प्रियतम का कायदा है—**"जो मुझे जैसे भजता है मैं भी उसे**

उसी तरह भजता हूँ।" तो जब प्रेमी उनके विरह में व्याकुल होकर रोता है तो उधर प्रियतम भी अपने प्रेमी के विरह में रोते हैं, व्याकुल होते हैं। उन्हें इस विरह में ही आनन्द मिलता है। भक्त की परीक्षा है न!

इधर प्रेमी इस आनन्दमयी वेदना का आनन्द लेता है उधर प्रियतम उसका उपभोग करते हैं। दोनों ओर प्रेम पलता है, आनन्द का सागर लहराता है। दोनों उस प्रेम के प्रवाह में डूब जाते हैं। मिलन और विरह की बात भूलकर दोनों एकाकार हो जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण विरह पीड़ित गोपीजन और परम प्रियतम प्यारे श्यामसुन्दर हैं, उनकी मथुरा गमन लीला है।

मथुरा से वृन्दावन दूर नहीं, वृन्दावन से मथुरा दूर नहीं, दोनों ओर सामर्थ्य का अभाव नहीं। परन्तु मिलने की चेष्टा नहीं। विरह में ही आनन्द आता है। मिलन से आनन्द में व्यवधान होता है। जिसे दोनों ओर विरहावस्था में भोगा जा रहा है। मिलन से विरह में अधिक आनन्द है इसीलिए तो प्रियतम आने में विलम्ब करते हैं। श्री गुरुदेव के साथ भी यही लीला चक्र चल रहा था।

प्रभु अपने प्रेमी का रंजन करने के लिए, उसके साथ विहार का रसास्वादन करने या यों कहिये मिलन उत्कण्ठा को अधिक वेगवती करने जैसी लीलाएँ भक्त के साथ करते हैं जो बड़ी विलक्षण होती हैं, अद्‌भुत होती हैं। प्रभु प्रत्यक्ष में मौन होकर प्रेमी को निराश सा कर देते हैं परन्तु परोक्ष में छिप छिपकर ललचाते हैं, उसे अपने समीप जाने का मौका देते हैं।

अन्त में **"हरिप्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं"** श्री गुरुदेव की साधना सफल हुई। प्रभु ने कृपा कर परम सिद्ध सन्त बाबा के रूप में घर पर आकर ही स्वयं गुरुदेव पर कृपा की। कुछ दिन वह आपकी कुटिया पर ही रहे। श्री गुरुदेव ने उनके चरणों में आत्म समर्पण कर दिया, अपने आपको उन्हें सौंप दिया और उन्होंने बदले में श्री गुरुदेव को श्रीकृष्ण प्रभु को हमेशा-हमेशा के लिए सौंप दिया। इस प्रकार दोनों ओर का कार्य सम्पन्न हुआ। अब आप (श्री गुरुदेव) एक अच्छे सिद्ध सन्त के रूप में हमारे समक्ष हैं। हजारों भूले भटके

जनों का मार्ग दर्शन कर रहे हैं। वेश भूषा से उन्हें कोई सन्त रूप में नहीं पहिचान सकता। गेरुआ कपड़े रंगने या अन्य कोई वेश धारण करने में आपका विश्वास नहीं है।

वसुन्धरा निर्जीव कभी नहीं होती। आज घोर कलिकाल में भी ऐसे महापुरुषों की कमी नहीं है। यह महान् आत्माऐं आनन्द के अथाह सागर में डुबकी लगाकर अपने प्रियतम के साथ एकाकार होकर नित्य नये-नये रत्न लाकर परहित भावना से सभी को लुटाते हैं। पर अभागे जन इन पर विश्वास न करके मणि को फेंक कर, पारस की उपेक्षा करके काँच के टुकड़ों पर अपने जीवन की निधि को लुटा रहे हैं। रंगे सियारों के समक्ष अपने अमूल्य जीवन की बलि चढ़ा रहे हैं।

"विश्वासं सर्वत्र फल दायकम्" प्रत्येक स्थान पर विश्वास से ही सफलता प्राप्त होती है। विश्वास ही एक मात्र मनुष्य जीवन की आधार शिला है। इस सम्बन्ध में मैं स्वजीवन के कुछ संस्मरण आपके सामने रखती हूँ ताकि आप इस मार्ग में आगे चल सकें। यदि यह सब जानकर भी आप विश्वास न करें तो आपका दुर्भाग्य है।

जब दीपक तैयार होता है तो केवल तीली जलाकर दिखाने भर की आवश्यकता होती है। दीपक प्रज्ज्वलित हो जाता है, प्रकाश चहुँ ओर फैल जाता है, अन्धकार मिट जाता है। साधक बिना किसी विघ्न-बाधा के अपने मार्ग पर बढ़ा चला जाता है और एक दिन आता है कि वह अपने परम धन प्राण प्रियतम के चरणों में लिपट कर सदा-सदा के लिए, जन्म-जन्मांतरों के लिए सुखी हो जाता है।

अभी श्री वृन्दावन धाम आए मुझे पूरा एक वर्ष भी न हुआ था। मन में प्रबल इच्छा रहती थी कहीं अच्छा सत्संग मिले। जगह-जगह आश्रमों में जाना, भाषण सुनना, समय पूरा करना, यह मुझे अच्छा नहीं लगता था। प्रारम्भ से ही परम पूज्य महान् आत्मा बापूजी (महात्मा गांधी) के जीवन साहित्य के अध्ययन का प्रभाव मन पर पड़ा हुआ था। परोक्ष में मैं आत्मसमर्पण

भी उनके श्रीचरणों में कर चुकी थी। दूर से दर्शन लाभ भी प्राप्त हो चुका था अतः हर एक जगह मन जमता न था। बस एक यही धारणा थी कि कहीं अच्छा संग मिले जिससे मन में शान्ति मिले। प्रभु की कृपा कब किस रूप में किस क्षण हो जाती है यह जाँचा नहीं जा सकता। एक दिन किसी प्रकार श्री गुरुदेव के सत्संग में जाने का अवसर मिल गया। मन के अनुकूल सत्संग मिल गया। वह संग था **"सत्य निष्ठा"** का जो मैंने बापू के जीवन से सीखा था। यहाँ पर मेरा मन लग गया और नियमित जाना प्रारम्भ हो गया।

श्री गुरुदेव के सत्संग में अधिक भीड़-भाड़ नहीं होती थी। कुछ चुने हुए व्यक्ति नियमित आते थे। श्री गुरुदेव भक्तमाल से भक्तों की कुछ गाथा सुनाते थे। साथ ही स्व अनुभव की कुछ बातें बताते थे। एक दिन भक्तमाल पर चढ़े हुए फूलों को हाथ में लेकर श्री गुरुदेव इधर-उधर यों ही फेंक रहे थे सभी की ओर। अचानक मेरी ओर भी एक-दो फूल आए। उनके लगते ही एक धक्का सा लगा। औरों के लिए वह फूल क्या थे मैं नहीं जानती पर मेरे लिए वह बाण था। फूल लगते ही कपाट खुल गए। "सद्गुरु ने बाण मेरे मारा है" सत्य का स्वप्न साकार हो गया। हृदय से तत्काल नमन हो गया श्री गुरुदेव के चरणों में और प्रतिज्ञा करली सत्याचरण की। यह परीक्षा थी दि. 17-10-60 की।

"आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा" श्री गुरुदेव की यह आज्ञा थी कि कभी भी विषम परिस्थिति आने पर भी सत्य का त्याग मत करो। प्राणों से भी अधिक सत्य का पालन करो। इसी आज्ञा को लेकर मेरी जीवनचर्या चलने लगी। यद्यपि उपयुक्त वस्तु व स्थान मिल गया था परन्तु अभी भी मन में कुछ प्रश्न उठते थे। अतः समय समय पर कुछ परीक्षणों से विश्वास को दृढ़ बनाने की इच्छा रहती। कुटिया में एकान्त में बैठकर प्रभु से पूछती "क्या मैं सही स्थान पर पहुँची हूँ।" पूछते-पूछते एक दिन उत्तर मिल ही गया। एक गोलाकार प्रकाश पुञ्ज घूम रहा है उसमें कभी सामने श्री श्यामसुन्दर आते हैं तो कभी गुरुदेव। अब निश्चय हो गया प्रभु की ओर से संकेत मिल गया "जो मैं हूँ

वही ये हैं" उस दिन से श्री गुरुदेव मेरे लिए पार्थिव शरीरधारी केवल गुरु ही न रहकर साक्षात् मेरे परम-प्रियतम इष्ट मुरलीधर गोपाल हो गये और इसी रूप से हृदय में विराजमान हो गये।

इतना होने पर भी अभी पूर्ण विश्वास की दृढ़ता के लिए मैं स्वयं से पूछती, प्रभु से पूछती "क्या मेरा मार्ग सही है?" इसी के लिए कुछ परीक्षणार्थ भावनाएँ उठतीं। एक बार यह विचार आया यदि बिना बुलाये श्री गुरुदेव मेरी कुटिया पर आयें तो समझूँ कि मैं सही मार्ग पर हूँ। क्योंकि मैं समझती थी कि बिना बुलाये तो क्या बहुत आग्रह पर भी आप हाँ हूँ ही कर देते। इसी विचार को लेकर एक दिन मैं सत्संग भवन से आकर अपनी कुटिया में लेट रही थी। कुछ सिर में पीड़ा भी थी। थोड़ी देर में देखा, कुटिया का द्वार स्वयं ही धीरे से खुला। मैं देखने लगी, "श्री गुरुदेव"! आश्चर्य से हड़बड़ा कर उठी। विश्वास नहीं हो रहा था क्या सचमुच गुरुदेव हैं या मैं स्वप्न देख रही हूँ? नहीं! वह श्री गुरुदेव ही थे जब उन्होंने कहा, क्यों तू यहाँ? तेरी माँ मेंहदी के हरे पत्ते मँगा रही है?" इतना कहकर आप तुरन्त वापस चले गये। मैं मेंहदी के हरे पत्ते लेकर घर पहुँची तो सचमुच माँ को हरी मेंहदी के पत्तों की अपेक्षा थी। पर यह सन्देश ऐसा था जो किसी के द्वारा भेजा जा सकता था। इससे मेरे विश्वास को बल मिला और आपके प्रति दृढ़ आस्था हो गई।

दूसरी एक घटना यह है। एक बार मुझे पेट की गड़बड़ से बहुत दस्त लग गए। अत: बिस्तर से उठना, घर से बाहर निकलना कठिन हो गया। उस दिन विद्यालय भी न जा सकी थी। बिस्तर पर पड़ी प्रभु से झगड़ रही थी क्या इसी से कहते हो कि **"जिनका कोई नहीं होता उनकी मैं स्वयं देखभाल करता हूँ?"** मेरी सुधि लेने वाला क्या तुम्हारे सिवा कोई और भी है? इत्यादि प्रश्न मन में उठ रहे थे। उसी समय देखा, ठीक दोपहर लगभग बारह बजे का समय होगा, श्री गुरुदेव मेरी खाट से कुछ दूर खड़े हैं। मुझसे कह रहे हैं "क्यों क्या बात है? उठ अपने आपको सँभाल"। विश्वास नहीं हुआ इस समय "श्री गुरुदेव"! मैं आँखें मलती हड़बड़ा कर गिरते-पड़ते उठ खड़ी हुई। सचमुच

सामने श्री गुरुदेव हैं। दूर से नतमस्तक होकर श्री चरणों में मैंने प्रणाम किया। श्री गुरुदेव यह कहते बाहर निकल गये **"उठ अपने आपको सँभाल तुझे कुछ नहीं हुआ है।"** उसी क्षण से मेरे दस्त बन्द हो गये और मैं सायंकाल तक काफी स्वस्थ हो गई।

इसी प्रकार अन्य भी बहुत संस्मरण हैं जिनसे मेरे विश्वास को सदैव बल मिलता रहा और मैं तन-मन से, सच्चे हृदय से, श्री गुरुदेव की आज्ञा का पालन करती रही। आपकी प्रत्येक आज्ञा, प्रत्येक आदेश मेरे लिए प्रभु की आज्ञा, प्रभु के आदेश के रूप में ही मान्य रहा है।

एक बार सायंकाल के समय मैं घर पहुँची तो श्री गुरुदेव ने पूछा "क्या बिहारी जी से आ रही हो?"—जी हाँ! मेरा नित्य बिहारी जी के दर्शन जाने का नियम था। श्री गुरुदेव मेरा स्वीकारात्मक वाक्य सुनकर बोले **"मगर पहले तुझे यहाँ आना चाहिए।"**

उस दिन से अब मेरी नियमित दैनिकचर्या यह हो गई कि श्री गुरुदेव के दर्शन करके तब मन्दिर जाती। मुझे स्मरण नहीं कि इस घटना के पश्चात् मैं कभी श्री गुरुदेव के दर्शन के बिना मन्दिर पहले गई हूँ।

एक बार दि. 19.1.69 की घटना थी कि श्री माँ ने सायंकाल, जब मैं दर्शनार्थ घर गई तो, बताया कल प्रात: काल श्री गुरुदेव कहीं बाहर जा रहे हैं। समय अभी निश्चित नहीं था। मैं नियमित दर्शन न छूट जाय, इस भाव से प्रात: लगभग 6 या साढ़े 6 बजे के लगभग एक फूलहार लेकर घर पहुँची तो माँ ने बताया, गये, अभी अभी गये हैं। सुनकर बड़ा दु:ख हुआ और मैं खिन्न मन से वापस कुटिया पर लौट आई। आकर उस हार को श्री गुरुदेव के दीवाल पर टँगे हुए चित्र को पहिना दिया। नियमित दर्शन न मिल सका इस दु:ख से आँखें भर आईं। अपने दुर्भाग्य को कोसा। थोड़ी देर उस फोटो के समक्ष हाथ जोड़े हृदय में दु:ख का भार लिए सामने खड़ी रही। उसी क्षण देखा, श्री गुरुदेव के गले का फूलहार दो बार हिला। हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्द का उदय हो गया। रामायण की चौपाई स्मरण हो आई।

"खसी माल मूरति मुसकानी"

माला लेकर जप करने बैठ गई तो कुछ देर पश्चात् देखा श्री गुरुदेव सामने खड़े हैं। मैंने पृथ्वी पर माथा टेक कर श्री चरणों में प्रणाम किया तो श्री गुरुदेव दोनों हाथों से आशीर्वाद देते हुए कहने लगे, "उठो! मेरे मिशन को पूरा करो, प्यार को लुटा दो, सबमें मुझे देखो।"

इस अमृतवाणी ने मेरे विषाद को मिटाकर हृदय को हल्का कर दिया और हो गया एक दृढ़ निश्चय। उसी प्रेरणा का फल यह "मंगलीय-सुमन" जो आपके कर कमलों में है। अध्ययन करिये, मनन करिये तत्पश्चात् क्रियान्वित करिये। विश्वास रखिये सच्चे हृदय की माँग एक दिन अवश्य पूर्ण होती है।

॥ हरि ओऽम तत्सत्, हरि ओऽम तत्सत्, हरि ओऽम तत्सत् ॥

जगन्माता से मिलने की विधि

माँ के पाँच बच्चे हैं। उसने किसी को खिलौना, किसी को गुड़िया और किसी को खाना देकर भुला रखा है। उनमें से जो खिलौना फैंककर माँ माँ! कहकर रोने लगता है, माँ झट से उसे गोदी में उठाकर शान्त करने लगती है। हे जीव! तुम कामिनी कंचन में भूले हुए हो। यह सब फैंककर जिस समय तुम जगन्माता के लिए रोने लगोगे, उसी क्षण वह आकर तुम्हें गोदी में ले लेंगी।

ध्यान करो— मन में, वन में और घर के कोने में।

धन आदि मुझे नहीं मिला, मुझे लड़का नहीं हुआ, यह कहकर लोग आँसुओं की धारा बहाया करते हैं, परन्तु मुझे भगवान् नहीं मिले, उनके चरण कमलों में मेरी भक्ति नहीं हुई— यह कहकर क्या कोई अपनी आँखों से एक बूँद भी आँसू गिराता है?"

—श्रीरामकृष्ण परमहंस